



भगवान महावीर दीक्षा ग्रहण करने समय वस्त्राभूषण
उतार रहे हैं ।

॥ १ ॥
एमोथुय समेणस भगवमो महावीरस

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

संग्राहक और अनुवादक

श्री जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित

मुनि श्री चौथमलजी महाराज

प्रकाशक

श्री जेनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति

रतलाम

मुद्रक - श्री जेनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम

श्रीमो. सिदाय

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

भगवाणक श्रीर अनुप दन -

श्री जैन दिवाकर प्रसिद्ध उक्ता पण्डित
मृनि श्री चौधमलजी महागज

प्रकाशक -

श्री जेनाडय पुस्तक प्रकाशक समिति
रतलाम

तृतीयवृत्ति २००० } मूल्य { घी० २२१३
कुन १९५०० } धारणाना { वि० १६११

जेनाडय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम

प्रकारक-

मास्टर मिथ मल

श्री० मश्री

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक मण्डल,
रतलाम



मुद्रक-

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,
रतलाम.

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक म.मि.ति,
रतलाम

क

जन्म दाता

श्रीमान् जैन दिगंबर प्रसिद्ध वक्ता पंडित
मुनि श्री चंदाचलजी महाराज

स्तम्भ

श्रीमान् दानवीर गय महादुर मठ पुदनमलजी

लालचन्दजी सा० व्यास

„ सेठ नेमाचन्दजी सरदारमलजी सा० नागपुर

„ „ सरूपचन्दजी भागचन्दजी सा० कलमसर

„ „ पुनमचन्दजी चुनोलालजी म० न्यायडोंगरी

„ „ यहादूरमलजी सूरजमलजी सा० यादगिरी

„ „ तपतमलजी सौभागमलजी सा० जायरा

सरक्षक

„ „ श्रेमलजी लालचन्दजी सा० गुलदगढ

„ „ लाला रतनलालजी सा० मिचल आगरा

„ „ उदेचन्दजी छोटमलजी सा० उडजैन

„ „ छोटेलालजी जेठमलजी सा० फनरा

„ „ मोतीलालजी सा० जैन वैद मांगेराल

„ „ सूरजमलजी साहेब भवानगिज

„ धकील रतनलालजी सा० सराफ उदयधर

- श्रीमान् मेट कालूगामजी सा० फोटारो (८१) घर
 , ,, खुदनमलजी मरुप र दधी सा० ८५) घर
 , ,, नरगजजी स० सुगना ८५) घर
 , ,, नाथूलालजी छगननालजी सा० महद्वारगड
 ,, ,, नारा उन्दधी दादधी पुनभियो सादेके
 श्री महावीर जन नरेपुषक मडल, चितीडगड
 श्री ३२० स्या० श्री सघ, घडे सादेही (मेराड)
 श्रीमतीः पिम्भायाई, तोहाम डी आगरा
 ,, गण. याई, घराण मी० पी०
 , अनारय. ई, लाहाम डी आगरा
 , चन्द्रपति राट साजी मडी, ददली
 श्रीमान मोहननालजी सा० श्रील डइयपुर
 श्रीमान् मेट मिथालाल जी नाथूलालजा स० फाटा
 , , नगमाच साजी मराकच दध, सा० मुगा
 ,, ,, चम्पालालजी सा० श्रीलाला सायग
 , ,, रामानन्दाजी शाकरच दजी सा० शिवपुरी
 , फलचदजा सा० जन कानपुर
 , पृथ्वीगजजी दुवीडेया धलिया
 ,, इन्दमलजी जन हाधामे

भेङ्ग

- रामान् मधुलालजी सा० मलवा नाल
 ,, घेंडलालजी हगचदजी नमारायाद
 गशुशालालजी चतर गिपनी मालवा

निर्ग्रन्थ प्रवचन-माहात्म्य



किंपाक फल बाहरी रंग रूप से चाहे जितना सुन्दर और मनोमोहक दिखलाई पड़ता हो पर तु उसका सबन परिणाम में दारुण दुःखों का कारण होता है । ससार की भी यही दशा है । ससार के भोगेपभोग, आमोद प्रमोद, हमारे मन को हरण कर लेते हैं । एक दरिद्र, यदि पुण्योदय से कुछ लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है तो मानों वह वृत्तुच्य हो जाता है । सतान की कामना करत बाल को यदि सतान प्रसि हो गई तो, उस वह निहाल हो गया । जो अदूरदर्शी हैं, वहिरत्मा हैं उन्हें यह सब सांसारिक पदार्थ मूठ बना देते हैं । कचन और कामिनी की माया उसक दोनों नेत्रों पर अज्ञान का ऐसा पर्दा डाल देती है कि उसे इनके अतिरिक्त और कुछ सूझना ही नहीं । यह माया मनुष्य के मन पर मदिरा क सा किन्तु मदिरा की अरुचि अधिक स्थायी प्रभाव डालती है । वह बेभान हो जाता है । ऐसी दशा में वह जीवन के लिए मृत्यु का आलिङ्गन करता है अमर बनने के लिए जहर का पान करता है सुखों की प्राप्ति की इच्छा से भयंकर दुःखों के जाल की रचना करता है । मगर उस जन पड़ता है, मानों वह दुःखों से दूर होता जाता है ।

अ त में एक ठोहर लगती है । जिसके लिए मरे पदे-रून का पसीना बनाया, वही लक्ष्मी लात मार कर अलक्ष

जा खड़ी होती है । जिस सतान के साम्राज्य का उपनोग करके पूले न समाले थे, आज वही सतान दृश्य के मग स्थान पर हुआओं चोटें मार कर न जाने किस ओर चल देती है । विद्वान का वम ममता के रौल शिखर को कभी कभी गुण विचूर्य कर डालता है । ऐसे समय में यदि पुण्योप्य हुआ तो आसों का पदा दूर हो जाता है और जगत् का वारताविक स्वरूप एक भीमत्स नाटक की तरह मडर आने लगता है । यह देखता है—आह ! केशी भापण अवस्था है । ससार के प्राणी मृग मरीचिका के पीछे दौड़ रहे हैं, नाप बुद्ध आता नहीं । “अर्था न सति न च मुञ्चति मां दुराशा” मिथ्या आकांक्षाएँ पीछी नहीं छोड़ती और आधी-चाँधों के अनुकूल अर्थ की कभी प्राप्ति नहीं होती । यहाँ दुःखों का क्या ठिकाना है ? प्रातःकाल जो रामचिंहासन पर आसीन थे, दोपहर होते ही वे दर-दर के भिखारी देखे जाते हैं । अहाँ अभी रग गेलियाँ उड़ रहा था वदो छण भर म हाय हाय की धरकर दृश्य को चीर डालता है । ठीक ही कहा है—“काहू घर पु । जायो काहू के वियाग आयो, काहू राग राग काहू रोषा रोइ परा है ।”

गर्मकाय की विकट वेदना, व्याधियों का धमा चौकरी, जरा मरण की व्यथाएँ, नरक और तिर्यञ्च गति के अप-रम्पर दुःख ! सारा ससार मानों एक विशाल भेड़ है और प्रत्येक सदसरी जीव उसमें कोयल की नाईं जल रहा है ।

कार्तव्य में ससार का यही सच्चा स्वरूप है । मनुष्य जक

अपने आन्तरिक नेत्रों से ससार को इस अवस्था में देख पाता है तो उसके अन्तःकरण में एक अशुभ सङ्कल्प उत्पन्न होना है। वह इन दुःखों की परम्परा से छुटकारा चाहने का उपाय खोजता है। इन दारुण आपदाओं से मुक्त होन की उसकी आन्तरिक भावना जागृत हो उठती है। जीव की इसी अवस्था को 'निर्वेद' कहते हैं। जब ससार से जीव विरक्त या विमुख बन जाता है तो वह ससार से परे—किसी और लोक की कामना करता है—मोक्ष चाहता है।

मुक्ति की कामना के वशीभूत हुआ मनुष्य किसी, गुरु' का अन्वेषण करता है। गुरुजी के चरण शरण होकर वह उन्हें आत्मसमर्पण कर देता है। अशोध बालक की भांति उनकी अगुलियों के इशारे पर नाचता है। भाग्य भे यदि सच्चे गुरु मिल गए तब तो ठीक नहीं तो एक बार भट्टी से निकल कर फिर उसी भट्टी में पड़ना पड़ता है।

तब उपाय क्या है? वे कौन से गुरु है जो आत्मा का ससार से निस्तार कर सकने में सक्षम है? यह प्रश्न प्रत्येक आत्महितैषी के समक्ष उपस्थित रहता है। यह निम्न व—प्रवचन इस प्रश्न का सतोष जनक समाधान करता है और ऐसे तापक गुरुओं की स्पष्ट व्यवस्था हमारे सामने उपस्थित कर देता है।

ससार में जो मतमतांतर उत्पन्न होते हैं, उनके मूल कारणों का यदि अन्वेषण किया जाय तो मालूम होगा कि कषाय और अज्ञान ही इनके मुख्य बीज हैं। शिव, राजर्षि

का अग्रविज्ञान, जा कि अग्रव होता है, हुआ । उन्हे साधा
रण मनुष्यों की अग्रवा कुछ अधिक बोध होने लग । उ हों
ने मध्यलाक के अग्रव्यात द्वीप समुद्रों में से साध द्वीप समुद्र
ही ज न पाय । लेकिन उ हें ऐसा भाव होने लगा मानों व
सम्पूर्ण ज्ञान के धना दा मय हें और अग्र कुछ भी जानना
शय नहीं रहा । अग्र, उ-होंने यह घोषणा कर दी कि सात
ही द्वीप समुद्र ह—इन्हे अनेक नहीं । सातव यह है कि
जब कोई व्याक्त बुद्धि या अज्ञान के द्वारा पदार्थ के वस्तु
विक रूप को पूर्ण रूप में नहीं जान पता और साध ही
एक धम प्रवचक के रूप में होने वाली प्रतिष्ठा के लोभ को
अवरण भा नहीं कर पाता तब वह सनातन सत्य स्त के
विन्द एक नया ही मत जनता के सामने रख देता है और
भाला भाला जनता उत धर्मगुरुक मतके ज्ञान में कैश आती है ।

विभिन्न मतों की स्थापना व दूसरा कारण क्य दाइक
है । किसी कल्पित में कभी कथ व की बाढ़ अता है तो वह
शोध के कारण, मान बर्बाद के लिए अथवा दूसरों को ठगने
के लिए या किसी लोभ के कारण, एक नया ही सम्प्रदाय
बना कर खड़ा कर देता है । इस प्रकार अज्ञान और कथाय
की करामात के कारण सुमुनु जनों की सच्चा मोक्ष मार्ग
हूट निकाला अतीव दुष्कर कार्य हा जाता ह । कितन ही
लोग इस भूलभूलैया में पड़कर ही अपने पावन मानव जीवन
को यापन कर देत है और कई कुमला कर इस ओर से
विमुक्त हा जाते ह ।

‘ जिन खोजा तिन पाइया ’ की नीति के अनुसार जो लोग इस बात को भलाभाते जान लेते हैं कि सब प्रकार के अज्ञान से शून्य अर्थात् सर्वज्ञ और कर्मायों को समूल उन्मूलन करने वाले अर्थात् वातराग, की पदवी जिन महानुभावों ने तीव्र तपश्चरण और विशिष्ट अनुष्ठानों द्वारा प्राप्त कर ली है, जिन्होंने कल्याणपथ मातृमाग-का स्पष्ट रूप से देख लिया है जिनकी अपार कष्टों के कारण किसी भी प्राणी का अनेक होना संभव नहीं और जो जगत् को पथ प्रदर्शन करने के लिए अपन इन्द्रवत् स्वर्गीय वैभव को तनके की तरह त्याग कर अकिञ्चन बने हैं, उनका बताया हुआ—अनुभूत—मोक्षमाग कदापि अन्यथा नहीं हो सकता यह मुक्ति के मंगलमय माग में अवश्य प्रवेश करता है और अंत में चरम पुष्ट्यार्थ का साधन करके सिद्ध पदवी का अधिकारी बनता है। इन्हीं पूर्वोक्त सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, धीतराग और द्वितीयादशक महानुभावों को ‘ निगठ ’ निगम, या निर्गन्ध कहते हैं। भौतिक या अधिभौतिक परिग्रह की दुर्मेय भयि को जिन्होंने भद डाला हो, जिनकी आत्मा पर अज्ञान या कर्माय की कालिमा लेशमत्र भा नहीं रही हो, इसी कारण जो स्फटिक मणि से भी अधिक स्वच्छ हो गई हो, वही निभ-व’ पद को प्राप्त करता है।

प्रत्येक काल में, प्रत्येक देश में और प्रत्येक परिस्थिति में निगमों का ही उपदेश सफल और हितकारक हो सकता है। यह उपदेश मुँह की तरह अटल, दिमालय की तरह

धृताय निवारक शक्ति प्रदायक, सूर्य का तरह तजस्वी और अज्ञाना-धकार का हरण करने वाला, चंद्रमा की तरह पीयूष वरण करने वाला और आह्लादक, सुखद को तरह सकल सुखशुभों का पूरक विद्युत् का तरह प्रकाशमान, और आकाश का भाँति अनादि अनांत और असीम है । वह किसी देशविशेष या कालविशेष की सामाग्रियों में आश्रय नहीं है । परिस्थितियों उसके पथ को प्रतिहत नहीं कर सकती । मनुष्य के द्वारा कक्षित कोइ भा भेणो, वर्षे जगति पाति या वगे उषे विमरु नडि कर सकता । पुरुष हो या स्त्री, पशु हो या पक्षी, सभी प्राणियों के लिए वह सदैव समान है, सब अरनी अानी पायता क अनुपार उष उर-देश का अनुपकरण कर सकने २ । अक्षर में कहें तो यह कह सकते हैं कि निर्मैयों का प्रवचन सार्व है । सवमनिक है । सार्वदेशिक है, सार्वकालिक है और सार्व्य साधक है ।

निर्मैयों का प्रवचन आध्यात्मिक विद्यास के रूप और उसके साधनों की सम्पूर्ण अर सूत्र से सूदन व्याख्या हमारे सामने प्रस्तुत करता है । आरमा क्या है ? आरमा में कान कौन थी और कितनी शक्तियाँ हैं ? प्रत्यक्ष दिखलाई देने वाली आरमाओं की विभिन्नता का क्या कारण है ? यह विभिन्नता किस प्रकार दूर की जा सकता है ? नारकी आर देरता, मनुष्य और पशु आदि की आरमाओं में कोई मौलिक विशेषता है या वस्तुतः वे समान शक्ति शाली है ? आरमा की अक्षतम अवस्था क्या है ? आरम विद्यास की चरम

सीमा कहाँ विमान्त होती है ? आत्मा के अतिरिक्त परमात्मा कोई भिन्न है या नहीं ? यदि नहीं तो किन उपायों से किन साधनाओं से आत्मा परमात्म पद पा सकता है ? इत्यादि प्रश्नों का सरल, सुस्पष्ट और सतोषप्रद समाधान हमें निम्न-प्रवचन में मिलता है ? इसी प्रकार जगत् क्या है ? वह अनादि है या साद ? आदि गहन समस्याओं का निराकरण भी हम निर्मूलक प्रवचन में देख पाते हैं ।

हम पहले ही यह चुके हैं कि निर्मूलकों का प्रवचन किसी भी प्रकार की सीमाओं से आवद्ध नहीं है । यही कारण है कि वह ऐसी व्यापक विधियों का विधान करता है जो आध्यात्मिक दृष्टि से अत्युत्तम तो हैं ही साथ ही उन विधानों में से ऐदलौकिक सामाजिक सुव्यवस्था के लिए सर्वोत्तम व्यवहारोपयोगी नियम भी निकलते हैं । समय, त्याग, निष्परिग्रहता (और धावकों के लिए परिग्रहपरिमाण) अनेकान्तवाद और कमादानों का त्याज्यता प्रकृत ऐसी ही कुछ विधियाँ हैं, जिनके न अज्ञान के कारण आज समाज में भाषण विश्वब्रह्मा दृष्टिगोचर हो रही हैं । निम्न यों ने जिस मूल आशय से इन बातों का विधान किया है उस आशय को स मुझ रखकर यदि सामाजिक विधानों की रचना की जाए तो समाज फिर दया-भरा, सम्पन्न, सन्तुष्ट और सुखमय बन सकता है । आध्यात्मिक दृष्टि से तो इन विधानों का महत्व है ही पर सामाजिक दृष्टि से भी इनका उचित महत्व नहीं है । समय, उस मनोवृत्ति के निरोध

करने का अद्वैतीय उपाय है जिससे प्रेरित होकर ममत्व जन आत्मोत्समाद म समाज की उत्थिति को, स्थापना करते हैं । त्याग एक प्रकार के बहवारे का रूपांतर है । परिमद परिमाण और भागेपभाग परिमाण एक प्रकार के आर्थिक साम्यवाद का आदर्श हमारे सामने पेश करते हैं, जिनके लिए आज संसार का बहुत सा भाग पागल हो रहा है । विभिन्न नामों के आचारण में क्षिपा हुआ यह सिद्धान्त ही एक प्रकार का साम्यवाद है । यहाँ पर इस विषय को कुछ अधिक लिखने का अवसर नहीं है,—उपायि निर्मम-प्रवचन समाज को एक बड़ और आदर्श कुटुम्ब की कोटि में रखता है, यह स्पष्ट है । इस प्रकार अनेक तत्वाद मतमता-तयों की मारामारा से मुक्त होने का माग निर्देश करता है और नियमों की अहिंसा के नियम में कृत्र कदना तो पिष्ट प्रेषण ही है । अस्तु ।

निर्मम प्रवचन का तात्पर उल्लत बनाना है । नीच से नाच, पतित से पतित, और पापी से पापी भी यदि निर्मम प्रवचन की शरण में आता है तो उन्ने भी यह अलाकिक आलोक दिखलाता है, उस से मार्ग दिखलाता है और जेष्ठ भाग्य माता गंदे शालक को नदला-धुलाकर साफ सुधरा कर देता है उर्धो प्रहर यह मलान से मलान आत्मन के नेत को

* क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक एक अंग है अतः उसकी स्वविगत कर्ही जाने वाली सम्पत्ति भी वस्तुतः समाज की सम्पत्ति है ।

दृष्टाकर उसे शुद्ध विशुद्ध कर देता है । हिंसा का प्रतिमूर्ति, भयकर हत्यारे अर्जुन माला का उद्धार करने वाला कौन था? अजन जैसे चारों को किसने तारा है ? लोक जिसकी परछाई से भी घृणा करता है ऐसे चण्डाल जातीय हारकशा को परमादरणीय और पूज्य पद पर प्रतिष्ठित करने वाला कौन है ? प्रभव जैसे भयकर चोर की आत्मा का निस्तार करके उसे भगवान् महावीर वा उत्तराधकारा बनाने का सामर्थ्य किसमें था ? इन सब प्रश्नों का उत्तर एक ही है और पाठक उसे समझ गए हैं । वास्तव में निप्रथ प्रवचन पतित-भावन है अशरण शरण है, अनाथों का नाथ है, दीनों का बन्धु है और नारकियों का भी देव बनाने वाला है । वह स्पष्ट कहता है—

अयविश्रयविश्रोधा, दुस्स्थितो सुस्थितोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानम्, स याह्याभ्यन्तरे शुचि ॥

जिन मुमुक्षु महर्षियों ने आत्म-हित के पथ का अन्वेषण किया है उन्हें निप्रथ प्रवचन की प्रशस्त छाया का ही अन्त में आश्रय लेना पड़ा है । ऐसे ही महर्षियों ने निप्रथ-प्रवचन की यथापता, हितकरता और शान्ति-सतोपप्रदायकता का गहरा अनुभव करने के बाद जा उद्गार निकाले हैं वे वास्तव में ठेके ही हैं और यदि हम चाहें तो उनके अनुभवों का लाभ उठाकर अपना पथ प्रशस्त बना सकते हैं । क्या ही ठीक कहा है—

“ इष्टमेव निर्गमे पावयणे सचचे, अणुतरे, केवलए,

समुद्रे, पांडिपुण्ये रोघ्याउए सल्लकतण भिद्धिमणे मुत्त
मग्ग, निम्ब्याणुमग्गे, शिउज्जाणुमग्ग, अविताहमस द्द, सन्ध
दुक्खप्पहीणुमग्ग, इहद्विपानोवा सिउमग्गि बुज्जकत्ते, मुत्तवति
पारणिम्वायाति सम्भुक्खणुमग्गे क्खेति । ”

यह उद्गार उन महर्षियों ने प्रकट किये हैं जिन्होंने
ब्रह्माण्डमाग की खोज करने में अपना धारा जपन करण
कर दिया था और निर्ग्रन्थ प्रवचन के आनन्द में आनन्दित
सोच समान हुए थे । यह उद्गार निर्ग्रन्थ-प्रवचन विषयक
यह स्वशासन हमें दीपक का काम देता है ।

जो ता अनादि काल से ही समय-समय पर परप्रकाश
निर्ग्रन्थ तीर्थकर होने आए हैं परन्तु आम स लगभग अज्ञान
द्वारा बंध पहल चरम निर्ग्रन्थ भ० महाकार हुए थे । उ दाने
जो प्रवचन पीयूष की वषा का थी, उधो में का कुछ अश यही
सम्रात किल गया है ।

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन परम मौलिक है, आधि व्यधि-
उपाधियों को शमन करके वाला, वाश्यान्तर रिपुओं को
दमन करने वाला और समस्त इह परलोक सबंधी भयों को
निवारण करने वाला है । यह एक प्रकार का महात्कक
है । जहाँ इसका प्रचार है वहाँ भूत, पिशाच टाकिनी, राकिनी
आदि का भय फटक भी नहीं सकता । जो इस प्रवचन पात
पर आस्था है ता है वह भाषण विपत्तियों के सागर को सहज
ही पार कर लेता है । यह सुमुत्तु जनों के लिए परम सुख,
परम शिवा, परम सहायक और परम सम्बन्धिका है ।

अकाराद्यनुक्रमणिका

सांकेतिक शब्दों का सुलासा

(List of Abbreviations)

द=शैबकालिक सूत्र, अ=अध्याय, गा=गाथा जी=जीवा
भिगम सूत्र प्रक=प्रकरण, उदे=उद्देशा उ=उत्तराध्ययन सूत्र
स्था=स्थानाङ्ग सूत्र, प्रभ=प्रश्न व्याकरण सूत्र सम=समवा-
याग सूत्र सू=सूत्र कृताङ्ग सूत्र, प्रथ=प्रथम, ज्ञा=ज्ञाता धर्म
कथाङ्ग सूत्र, आ=आचाराङ्ग सूत्र, द्वि=द्वितीय, भ=भगवती
सूत्र, श=शतक ।

अ	पृष्ठांक	उद्गमस्थान
अम पञ्चग सटाण	१३२	(द अ ८ गा २८)
अइसीय अइ उएढ	३१७	(जी प्रक १ उदे ३गा १०)
अश्लेषर से णिमूसि	१८८	(उ अ १० गा ३५)
अङ्गोनेजा परेमिस्वू	२६२	(उ अ. २ गा १७)
अगारिसामा	१६४	(उ अ ५ गा २२)
अच्छीनिमिलियमेत्त	३१६	(जी प्रक १ उदे ३गा ११)
अज्जससण निमित्ते	७२	(एव • ७ या)
अट्टरूहाणि वज्जित्ता	२१८	(उ अ ३४ गा ३०)
अट्ट कम्माइ योच्छीमि	१७	(उ अ ३३ गा १)
अट्टदुहाट्टियचित्ता जह	६२	(औपपातक)
अणसणमु शोरिया	२८०	(उ अ. ३० गा ८)
अणिसस्यो इह तोप	६१	(उ अ १० गा. ६२)

श्र	पृष्ठांक	उद्गमस्थान
अणु सङ्घपि बहुविध	५२	(प्रश्न आध्ववहार)
अणु सासिग्रो न कु-	३४०	(उ अ १ गा ६)
अणुणाय या अलोभे य	६५	(सम ३२ वां)
अतिथ एग धुर ठाय	३५६	(उ अ २३ गा ८१)
अथगय मि आइच्छे	१२१	(द अ ८ गा २८)
अहकप्य दकणवाहिवर	२५५	(सू प्रथ अ १३६ गा ११)
अनिलेण न वीप	१५४	(द अ ६ गा ३)
अ तमुद्गतमिम गव	२२१	(उ अ १४ गा ६०)
अपुच्छिग्रो न भासेज्जा	१६५	(द अ ८ गा, ४८)
अप्यात्ता विकृताय	३	(उ अ २० गा ३७)
अप्या चेभ दमे यवो	४	(उ अ १ गा १५)
अप्यानई येयत्ती	२	(उ अ २० गा ३६)
अप्याण मेघ जुञ्जाहि	८	(उ अ ६ गा ३५)
अप्यिया देघ कामाण	३३२	(उ अ ३ गा १८)
अप्येणायणगहणे	७०	(शा अ ८)
अप्य चाहिकिपवई	३४८	(उ अ ११ गा ११)
अप्यिसु पुरा त्रिभिकसु	२५८	(सू द अ १३६ गा २०)
अभिकसण कोहोदयइ	३४४	(उ अ ११ गा ७)
अयले जइ मारवाहप	१८६	(उ अ १० गा ३३)
अयइ गह विसूया	१८१	(उ अ १० गा १७)
अरहतसिद्धपययण	६८	(शा अ ८)
अरिहतो महदेवो	६३	(आध्वर्यक)

अ	पृष्ठांक	उद्गमस्थान
अरुविणो जीवघणा	३६५ (उ अ ३६ गा ६७)	
अलोप पडिहया सि	३६४ (उ अ ३६ गा ५७)	
अवणवाय च परमु	१६८ (द अ ६ उद् ३ गा ६)	
अवसोद्वियकटगावह	१८५ (उ अ १० गा ३२)	
अधि पावपरिक्लेषी	३४३ (उ अ ११ गा ८)	
अवि से द्वासमासज्ज	३०२ (आ प्रव अ ३ उद् १)	
असत्त्वमोस सञ्चव	१६१ (द अ ७ गा ३)	
असुरा नागसुवण	३२२ (उ अ ३६ गा २१)	
असफ्रय जीविय	२३३ (उ, अ ४ गा १)	
अह अट्टिं ठाणेदिं	२६६ (उ अ ११ गा ४)	
अह परणरसादिं ठाणेदिं	३४७ (उ अ ११ गा १०)	
अह पचदिं ठाणेदिं	२६५ (उ अ, ११ गा ३)	
अह सव्यव्यपरिणा	८१ (१ दी सूत्र)	
अहीणपचिदियत्त	१७७ (उ अ १० गा १८)	
अहे वयइ काहेप	२३१ (उ अ ६ गा ५४)	
आ		
आउकायमइगओ	१६८ (उ अ १० गा ६)	
आण्णिहसकरे	३३६ (उ अ १ गा २)	
आयगुत्त सया दते	२६४ (सू प्रव अ १० उद् ३ गा २१)	
आयरिय कुप्रिय	३५२ (उ अ १ गा ४१)	
आलओ थी जणाइरणे	१२८ (उ अ १६ गा ११)	
आलोयण निवलाधे	६४ (सम ३२ वां)	

आ	पृष्ठांक	उद्गमस्थान
आधरणिज्जाण	दुराह ३४	(उ अ ३१ गा, २०)
आवस्सय अरस्स	३०३	(अनुयोगद्वार सूत्र)
आसणुगघाणुपुच्छेज्जा	३४१	(उ अ १ गा २०)
आदश्च चण्डालिय	कट्टु २००	(उ अ १ गा ११)
इ		
इगाली, घण साङ्गी	१०७	(आश्रयक सूत्र)
इह इत्तरिअम्भिय आ	१६५	(उ अ १० गा १)
इधो विद्धसमाणस्स	१०४	(सू प्रथ, अ १५ गा १८)
इणुमन्न तु अनाणु	२०४	(सू प्रथ उद्दे ३ गा ५)
इम च मे अत्थि इम	२४६	(उ अ १४ गा १५)
इम्हा अमरिस अतथो	२१२	(उ अ ३४ गा २३)
इहमेण उ मण्णत्ति	८६	(उ अ ६ गा ८)
ई		
ईसरेण कडे लोए	२०४	(सू प्रथ उद्दे ३ गा ६)
उ		
उददीसरिसनामाण	३४	(उ अ ३३ गा १६)
उददीसरिसनामाण	३५	(उ अ ३३ गा २१)
उददीसरिसनामाण	३५	(उ अ ३३ गा २३)
उप्फालाग दुहुवाइ य	२१४	(उ अ ३४ गा २६)
उवरिमा उवरिमा चैव	३२८	(उ अ ३६ गा २१४)
उवत्तेयो होइ भोगेसु	१३६	(उ अ २५ गा ४१)
उवसमेण दणे कोइ	२३२	(उ अ ८ गा ३६)

ए पृष्ठांक उद्गमस्थान

एय सगे लमाइकमित्ता	१६८ (उ अ ३२ गा १७)
एगत च पुहत्त	१५ (उ अ २८ गा १३)
एगया अवेत्तए होइ	२६१ (उ अ २ गा २)
एगया दवलाएसु	३६ (उ अ ३ गा ३)
एगे जिय जिगा पच	२६६ (उ अ २३ गा ३६)
एयाणि सोच्चा णागा	३१६ (सू प्रथ अ ५ उ १ गा २४)
एय सु णाणो सार	२६३ (सू ५ थ अ ११ उ (ग १०)
एय च दोल ददुण	१५४ (द अ ६ गा २६)
एय पचधिद णाण	८२ (उ अ ४ व गा ५)
एय सु जतपिल्लण	१०६ (आवश्यक सूत्र)
एय ण से होइ समाहि	११६ (सू प्रथ अ १३ गा १४)
एउ तु सजयस्सावि	२७८ (उ अ १३ गा १६)
एव धम्मस्स विण्णो	५२ (अ अ ६ उ ६ २ गा १)
एव भवससारे	१७३ (उ अ १० गा, १५)
एव सिक्खसमावणणे	११५ (उ अ ५ गा २३)
एव से उदाहु अणुत्तर	३६६ (उ अ ६ गा १८)
एस घम्मे धुये णित्तिए	५७ (उ अ १६ गा १७)

क

कण्डुडग चइत्त ण	२०० (उ अ १ गा ५)
कण्णिया उ जे देवा,	३२७ (उ अ ३६ गा २२१)
कण्णोवगा थारसद्धा	२२६ (उ अ ३६ गा २०६)

क पृष्ठांक - उद्गमस्थान

कम्माण तु पद्माणाप	४६ (उ अ ३ गा ७)
कम्मुणा वभणो होइ	१२६ (उ अ २५ गा ३३)
कलहदमरघज्जप	३४८ (उ अ ११ गा १३)
कलह अम्भकसाधु	७१ (आवश्यक सूत्र)
कसिण पिजो इम लागररर	(उ अ ८ गा १६)
कह धरे कह चिट्ठे कह	७५ (द अ ४ गा ७)
कहि पहिदया सिद्धा	३६३ (उ अ ३६ गा ५)
कामाणुगिद्धिपभघ	१४२ (उ अ ३२ गा १६)
कायसा घयसा मत्त	२४१ (उ अ ५ गा ७)
किएहा नीला काऊ	२१६ (उ अ ३४ गा ५६)
किएहा नीला य काऊ	२०६ (उ अ ३४ गा ३)
कुप्पघयणवासडो	६८ (उ अ २३ गा ६१)
कुसग्गे जह ओसविदुप	१६४ (उ अ १० गा ९)
फूरअ रुइअ गीअ	१२८ (उ अ १६ गा १२)
कोहे माणु माया, लोमे	५०३ (प्रज्ञाना भाषण)
कोहो अमाणो अ आणु	२२४ (द अ ८ गा ४०)
कोहो पीइ पणालेइ	२३१ (द अ ८ गा ३८)

ख

अणमेत्तसुस्सा यद्दु	१३६ (उ अ १४ गा १३)
अामेमि सग्गे जीवा	११३ (आवश्यक सूत्र)
खिच्च यत्थु द्विरण च	३३६ (उ अ ३ गा १७)

ग पृष्ठांक उद्गमस्थान

गघेसु जो गिद्धिमु	२८४ (उ अ २८ गा ५०)
गहलकप्रणो उ	१२ (उ अ ३२ गा ६)
गत्तभूषणमिडु च	१२८ (उ अ १६ गा १३)
गार पि अ आचसे	२२७ (सू प्रथ अ २२६ ३गा १३)
गुणाणम.सञ्चो दञ्च	१५ (उ, अ २८ गा ६)
गोयकम्म तु दुविह	२१ (उ अ ३३ गा १४)

च

चउरिन्दियकायमहगामो १७१	(उ अ. १० गा १२)
चफरुपचफरु श्रीद्विस्व २०	(उ अ ३३ गा ६)
चन्द्रा सूरा यनफलत्ता ३२५	(उ अ ३६ गा २०७)
चरित्तमोदण कम्म	२६ (उ अ ३३ गा १०)
चिन्धा दुपर्य च चउ	४१ (उ अ १३ गा २४)
विद्याणु धणं च भारिय १८३	(उ अ. १० गा २६)
चित्तमतमचित्तं वा	१४७ (द अ ६ गा १४)
चीराजिणु नगिणिणु	१२० (उ अ ५ गा २१)

छ

छिदति नालस्स सुरेण ३११ (सू प्रथ अ ५उदे १गा ०२)

ज

जजारिस पूवमकामि ३२७	(सू प्रथ अ ५उदे २गा २३)
जं पि यत्थ ध पाय धा १४६	(द अ ६ गा २०)
ज मे बुद्धाणुमासति ३३३	(उ अ १ गा २७)

ज	पृष्ठांक	उद्गमस्थान
जलध्वंससम्मयठपणा	२०२	(प्रज्ञापना भाषा १६)
जणेषु सार्द्धं होषयामि २३८	(उ अ ५ गा ७)	
जामिणु जगती पुढो	२४१	(सू प्रथ अ १३६ १गा ४)
जय चरे जय चिह्न	७५	(द अ ४ गा ८)
जरा जाय न पीडेह	५३	(द अ ८ गा ३६)
जरामरणधेगेण	५६	(उ अ २३ गा ६८)
जह जीवा यज्भति	६१	(श्रौतपतिक सूत्र)
जह एरगा गम्भति	५६	(, ")
जह मिडलघालित्त	७३	(शा अ ६)
जह रागेण बडाण	६३	(श्रौतपतिक सूत्र)
जहा क्रियागफलाणु	१३७	(उ अ १६ गा १८)
जहा कुक्कुडपोअस्स	१३०	(द अ ८ गा ५४)
जहा कुम्भे सअगाह	२६१	(सू प्रथ, अ ८३६ १गा १६)
जहा कुसगे उदम	३३४	(उ अ ७ गा २१)
जहा दग्धाण धीयाण	३६२	(दशाधुतस्क अ ५ गा १३)
जहा पोम जल जाय	१२३	(उ अ २५ गा २७)
जहा विरालावसहस्स	१३१	(उ अ १ गा १३)
जहा महातलागस्स	२७७	(उ अ ३० गा ५)
जहा य अट्ठप्प मवा मला ४२	(उ अ ३२ गा ६)	
जहा सुणी पूरुण्ण	१६६	(उ अ १ गा ४)
जहा सुइ ससुत्ता	८४	(उ अ २६, बाल ५६वां)
जहा द्विअग्गी जलण	३५०	(द अ ६३६ १गा ११)

ज पृष्ठाक उद्गमस्थान

- जहेह सीहो व मिअ २४५ (उ अ १३ गा २२)
जाए सद्दाए निरुप्रतो १६१ (द अ ८ गा ६१)
जा जा बच्चइ रयणी ५४ (उ, अ १४ गा २४)
जा जा बच्चइ रयणी ५५ (उ अ १४ गा २५)
जानि च बुद्धि च इहज्ज १०३ (आ अ ३ उहे १)
जावतऽविज्जापुरिसा ८५ (उ अ ६ गा १)
जाय रूध जहामहु १२२ (उ अ २५ गा २१)
जा य सच्चया अवत्तव्या १६० (द अ ७ गा २)
जिणययणे अणुत्ता १०२ (उ अ ३६ गा २५८)
जीवाऽनीया य बधो य १० (उ अ २८ गा १४)
जे आवि अण य सुमति २२६ (सू प्रथ अ १३ उहे १ गा ८)
जे इह सायाणु गनरा २५४ (सू प्रथ अ १ उहे ३ गा ४)
जे इयाला इह जा रिय ३०६ (सू द्वि अ ५ उहे १ गा ३)
जे केइ सरीरे सत्ता ८६ (उ अ ६ गा ११)
जे कोइण होइ जगय २२५ (सू प्रथ अ १३ उहे १ गा ५)
जे गिइे काम भोएसु २३७ (उ अ ५ गा ५)
जे न वदे न से कुप्प १४६ (द अ ५ उहे २ गा ३०)
जे पारिभवई पर जण २४३ (सू प्रथ अ २ उहे १ गा २)
जे पापकम्मोहि धण ३१८ (उ अ ४ गा २)
जे य कते पिण भोए २७४ (द अ २ गा ३)
जे लक्खण सुविण पड २६७ (उ अ २० गा ४५)
जेसि तु विडला सि ३३० (उ अ ७ गा २१)

ज

पृष्ठांक

उद्गमस्थान

जो समो सवनभूरसु ३०६ (अनुगोणहार सुन)

जो सहस्म सहस्साण ७ (उ अ ६ गा, ३४)

ड

डहरा बुह्ढाय पासह २४६ (सु मथ अ २उदे१गा २)

डहरे य पाणे बुह्ढय २६७ (सु, मथ अ १३गा १८)

ण

णुचना एमइ मेहाधी ३८३ (उ अ १ गा ४५)

ण चित्ता तायए भासा ८८ (उ अ ६ गा १०)

णरग तिरिक्खजोणे ६० (औपशातक सूच)

णो रक्खसिसु गिज्झि १३३ (उ अ १ गा १८)

त

त चेव ताविमुक्क ७४ (ङा अ ६)

तआ पुटो आयकेण ०४२ (उ अ ५ गा ११)

तओ से दड समारभइर ३६ (उ अ ५ गा ८)

तत्य टिष्ठा जहाठाण ३३८ (उ अ ३ गा १६)

तत्य पचविह नाण ८० (उ अ २८ गा ४)

तम्हा पयासि लेसाण २२२ (उ अ ३४ गा ६१)

तवस्सिय किस दत्त १२२ (उ अ २५ गा १२)

तघो जोई जाघो जोइठाण ७७ (उ अ १२ गा ४४)

तहा पयणुवाई य २१६ (उ अ ३४ गा ३०)

तहिआण तु भाषाण ६५ (उ अ २८ गा १५)

तहेघ काण काण ति १६० (द अ ७ गा १२)

त पृष्ठाङ्क उद्गमस्थान

तेद्वेव फलसा भामा	१६२	(द अ ७ गा ११)
तेद्वेव सायज्जुमोयथी	१६४	(ऋ अ ७ गा २४)
ताणि ठाणाणि गच्छति	११७	(उ अ ५ गा १८)
तिरणो ह्यु सि अए ष म	१८७	(उ अ १० गा ३४)
तिरण्य सद्दत्ता सत्तस	३०६	(म य ६ उद्ग ७)
तिविद्वेष्य विपाण्य	२५६	(सू प्रथ अ २ उ ३ गा २१)
तिव्य तसे पाणिणा या	३१०	(सू प्रथ अ १ उद्ग १ गा ४)
तेददियकायमद्गओ	१७१	(उ अ १० गा ११)
तेउकायमद्गओ	१६८	(उ अ १० गा ७)
तेउ पम्हा सुक्का	२४०	(उ अ ३४ गा ५७)
तथे जहा सधिमुदे	३७	(उ अ १ गा १)
ते तिप्पमाणा तत्तस	३१२	(सू प्रथ अ १ उद्ग १ गा २३)
तेत्तीस सामरोवम	३५	(उ अ ३३ गा २२)

द

दमणवयसामादय पोस	१११	(आवरयक सूत्र)
दसणविणप आवस्सप	६६	(शा अ ८)
दसहा उ भरण्यासी	३२१	(उ अ ३६ गा २०४)
दाणे लाभे य भागे य	३२	(उ अ ३३ गा ५)
दीहाउ या इद्धि मता	११६	(उ अ ५ गा २७)
दुपस्र हय जस्स न होइ	४४	(उ अ ३२ गा ८)
दुपरिचया इमे कामा	१३८	(उ अ ८ गा ६)
दुमपत्तप पहप जहा	१६३	(उ अ १० गा १)

द	पृष्ठांक	उद्गमस्थान
दुल्लटा उ मुहादाई	११८	(द अ ५ उद्गरेगा १००)
दुल्लडे यलु माणुसे मणे	१६६	(उ अ १० गा ४)
देवदाणुधगधरा	१७०	(उ अ १६ गा १६)
देवा चउदियहा युत्ता	२२०	(उ अ ३६गा २०३)
देवाण मणुयाण च	१६३	(द अ ७ गा ५)
देवे नेरहप अइगसो	१७३	(उ अ १० गा १४)
ध		
धम्मे हरण धमे	७८	(उ अ १० गा ४६)
धम्मो अहम्मो आगान	११	(उ अ २८ गा ७)
धम्मा अहम्मो आगान	१२	(उ अ २८ गा ८)
धम्मा मगलमुक्किट्ट	५०	(द अ १ गा १)
धम्म पि दु सहदनया	१७६	(उ अ १० गा २०)
धिईमई य सवगे	६६	(सग ३१ वां)
न		
न कम्मणा कम्म रायेति	२६५	(सू प्रथ अ १२ गा १५)
न तस्स जाई ध कुल व	१४	(सू प्रथ अ १३गा १६)
न तस्स दुक्ख धिमेयति	४०	(उ अ १३ गा २३)
नत्थि चरिस सम्मत्तधि	६७	(उ अ २५ गा २६)
न त अरी कट्ठेत्ता केरेइ	४	(उ अ २० गा ४८)
न पूयण खेव तिलोय	१६०	(सू प्रथ अ १३गा २२)
न य पावपरिक्खेगी	३४८	(उ अ ११ गा १२)
न पि मुडिणण समणो	१२४	(उ अ २५ गा ११)

न पृष्ठाग उद्गमस्त्रान

न मो परिगद्दो वुत्तो	१५०	(उ अ ६ गा २१)
न हु जिणे अज्ज दिमई	१८४	(उ अ १० गा ३१)
नाणस्स सब्बस्स पगा	३५६	(उ अ ३२ गा २)
नाणस्सावगणित्तज्ज	१८	(उ अ ३३ गा २)
माणेण जाणइ भावे	३५८	(उ अ २८ गा ३५)
माण च दमण चेव	३५७	(उ अ २८ गा ३)
माण च दसण चेव	१०	(उ अ २८ गा ११)
नादसाणस्स नाण	६८	(उ अ २८ गा ३०)
नामकम्म च गोय च	१८	(उ अ २३ गा ३)
नामकम्म तु दुप्पिड	२०	(उ अ ३३ गा १३)
नमीले न विसीले अ	२६६	(उ अ १० गा ५)
नाणावरण पच पिड	१६	(उ अ ३१ गा ४)
निहा तद्देव पयला	२०	(उ अ ३३ गा ५)
निद्धे घसपरिणामा	२१०	(उ अ ३४ गा ५)
निम्ममो निरदकारो	८६	(उ अ १० गा ८७)
नित्राण ति आधाद ति	३५६	(उ अ २३ गा ८३)
निस्सगुघपलरुई	६६	(उ अ २८ गा ६६)
निस्सक्रिय निक्कप्पिय	६६	(उ अ २८ गा ३९)
नीयापित्ता अचपले	२२५	(उ अ २४ गा २७)
नेरइयतिरिक्काउ	२८	(उ अ ३३ गा १२)
नेरइया सत्तविहा	३०८	(उ अ ३६ गा १५६)
नो इदियगोउक्क अमुत्त	१	(उ अ १४ गा १६)

न	पृष्ठांक	उद्गमस्थान
नो चेद्य ते तद्य मसी ३१५ (सू प्रथ अ, ४३६ १ ग १६)		
प		
पका भा ध्मा भा	३०८ (उ अ ३६ गा १५७)	
पचासवप्पवत्तो	२१० (उ अ १४ गा २१)	
पचिदि कायमइगओ	१७२ (उ अ १० गा १३)	
पचिदियाणि कीह	८ (उ अ ६ गा ३६)	
पशण्वारि दुहिले	३४४ (उ अ ११ गा ६)	
पचउकळाणे विउस्सगो ६७ (सम ३२ वां)		
पचुत्ता धि त पयाया	७८ (द अ ४ गा २८)	
पडिणीय च बुद्धाय	२०१ (उ अ १ गा १७)	
पड्ढति नरप घोरे	२६८ (उ अ १८ गा २५)	
पढम नाण तथ्या दया	८३ (द अ ४ गा ६०)	
पणसमत्त सया जप	१५७ (सू प्रथ अ २ उट्टरगा २)	
पयणुक्काहमाणे य	२१६ (उ अ ३४ गा २६)	
पर मत्थसधयो घा	६४ (उ अ २८ गा ३८)	
परिजूरइ ते सरोरथ	१८० (उ अ १० गा २१)	
पाणाइवायमलिय	७१ (धाव११क सूत्र)	
प णिउहमुसावाया	२७६ (उ अ २० गा २)	
पायच्चिउत्त विणुओ	२८१ (उ अ ३० गा ३०)	
पियधम्म ददु धम्मे	२१५ (उ अ ३३ गा २८)	
पिसाय भूय जफळा य ३२३ (उ अ ३६ गा २०६)		
पुढविकायमइगओ	१६७ (उ अ १० गा ५)	

प पृष्ठाग उद्गमस्थान

पुढर्वि न खणेन यणावप १५३ (द अ १० गा २)

पुढर्वा साली जया चैव २३० (उ अ ६ गा ४६)

पूयण्टा जसोकामी २२७ (ण अ ४ उहे ७ गा ३५)

फ

फालस्स जो गिद्धिमुवेई २२६ (उ अ ३२ गा ७६)

ग

घटिया उद्धमादाय ११८ (उ अ ६ गा २३)

वहुआगमप्रिणारा २६६ (उ अ ३६ गा २६१)

गला दिहु य मदा य ३७ (स्या० १० वां)

घेददिअफायमद्गयो १७० (उ अ १० गा १०)

भ

भणना अकरिता य ८७ (उ अ ६ गा ६)

भावणाजोग सुद्धपा ३०० (सू प्रथ अ १५ गा ५)

भोगामिसुदोमविसधे १३४ (उ अ ८ गा ५)

म

मदिक्कमा मज्झिक्कमाचे ३३०८ (उ अ ३६ गा २१३)

मणो साहासिधो भीमो २७० (उ अ २३ गा ५८)

महत्पपच अणुवपय ६६ (सू द्वि अ ६ गा ६)

महासुजा सहस्मारा ३२६ (उ अ ३६ गा २१०)

महुकारसमा घुद्धा १५५ (द अ १ गा ५)

माणुस्स च अणिस ६० (औपवातिह सूत्र)

म पृष्ठाकं उद्गमस्थान

माणुस्स विग्गह लदधु	४६ (उ अ ३ गा ८)
मायाहिं पियाहिं लुण्णइ	२५० (सू प्रथ अ ३ उद् १ गा १)
माइणा समणा एगे	२०५ (सू प्रथ उद् ३ गा ८)
मिन्हावनणरत्ता	१०१ (उ अ ३६ गा २५५)
मित्तय गइय होई	३३७ (उ अ ३ गा १२)
मुसायाओ य लोमम्मि	१५६ (द अ ६ गा १३)
मुद्धत्त दुक्खा उ हवति	१६७ (२ अ ६ उद् १ गा ९)
मूलमेयमद्धम्मस्स	१३८ (द अ ६ गा १७)
मूलाउ खघणभवो दुमस्स	५१ (द अ ६ उद् १ गा २)
मोक्खमिक्खिस्स य माण	१४० (उ अ ३२ गा १७)
मोहणिज्ज पि दुग्घिह	२४ (उ अ ३१ गा ८)

र

रसेसु जो गिद्धिसुवेइ तिव्व	२८२ (उ अ ३२ गा ६३)
रागो य दोमो वि य कम्म	४३ (उ अ ३२ गा ७)
रुयेसु जो गिद्धिसुवेइ ति	२८२ (उ अ ३२ गा २३)
रुद्धिरे पुणो वच्चसमुस्सि	३१५ (सू प्रथ अ ५ उद् १ गा ७६)

ल

लद्धणपि आरियत्तण	१७६ (उ अ १० गा १७)
लद्धणपि उत्तम सू	१७८ (उ अ १० गा १६)
लद्धण वि माणुमत्तण	१७५ (उ अ १० गा १६)
लाभालाभे सुडे दुक्खे	६० (उ अ १६ गा ६०)
लोमस्से समणुफासो	१४८ (द अ ६ गा १६)

य

पृष्ठांक

उद्गमस्थान

यके यकसमायरे	२१३ (उ अ ५ गा १५)
यणुस्सइ कायमइगओ	१६७ (उ अ १० गा ६)
यत्तणालकछणो कालो	१३ (उ अ २ गा १०)
यत्थमघमहाकार	२७३ (द अ २ गा २)
यर मे अप्प. दतो	६ (उ अ १ गा १६)
याउक्काय महगथो	१६८ (उ अ १० गा ८)
यिस्सेण नाण न लभे पमत्ते	२३४ (उ अ ४ गा २)
विरया धीरा समट्टिया	२५२ (सू प्रथ अ २ उहे १ गा १२)
विसालिसेहिं सालेहिं	३३२ (उ अ ३ गा १४)
वेमाणिया उ जे देवा	३२५ (उ अ ३६ गा २०८)
वेमायाहिं सिक्खाहिं	४६ (उ अ ७ गा २०)
वयणिय पि दुविह	१६ (द अ ३३ गा ७)
वोच्छिद सिण्णेमप्पणो	१८२ (उ अ १० गा २८)

स

सगाण य परिणयाया	६७ (सेम ३२ वा)
सति पगाहिं भिक्खुहिं	११६ (उ अ ५ गा २०)
सवुज्झमाणे उ ण्णे	२६३ (सू प्रथ अ १० उहे १ गा २१)
सधुज्झइ किं न वुज्झइ	२४८ (सू प्रथ अ १ उहे १ गा १)
सवुज्झइ जतवा माणु	२६० (सू प्रथ अ ७ उहे १ गा ११)
सरमसमारम्भे आरभ	२७२ (उ अ १४ गा २९)
सस रमारण परस्स	३६ (उ अ ४ गा ४)
सपहिं परिव्यापहिं	२०७ (सू प्रथ उहे ३ गा ६)

म	पृष्ठांक	उद्गमस्थान
सक्य लोके उ आसाह	१६६	(द अ ६ उद् १ गा ६)
सचचा तद्देव मोसाय	२७१	(उ अ २४ गा २०)
सद्यगाहण विसभस्यण	२६४	(उ अ ३६ गा २६६)
स देवम घव्य मणुस्सपु	३५८	(उ अ १ गा ४८)
सद्देसु जा गिद्धिमुपे	२८३	(उ अ ३२ गा ३७)
सद्दघयार उज्जोआ	१४	(उ अ ८ गा १२)
समण सजय दत्त	२६२	(उ अ २ गा २७)
समरपु आगारपु	२८६	(उ अ १ गा २६)
समयाए समणो होइ	१२५	(उ अ २५ गा ३२)
समाए पहाए परिव्ययतो	२७५	(द अ ४ गा ५)
सम्मत्त चेव मिकुदुत्त	२५	(उ अ ३३ गा ६)
सम्मद्दसणरत्ता अनियाणा ०१		(उ अ ३६ गा २५६)
सयभुणा कडे लोए	२०५	(सु प्रथ उद् ३ गा ७)
सरागा वायरागो घा	२१८	(उ अ ३४ गा ३२)
सरीरमाहु नाघ त्ति	६	(उ अ २३ गा ५३)
सल्ल कामा विस कामा	१३५	(उ अ ६ गा ५३)
सवखे गण्णे विण्णाये	३०८	(म रा १ उ १)
सव्यः १ सिद्धगा चेव	३२८	(उ अ ३६ गा २१५)
सथ्व तम्मो जाणइ पासए	३६४	(उ अ ३२ गा १०६)
सथ्व वि लीवथ गोअ	२४४	(उ अ १३ गा १६)
सव्ये जीवा वि इच्छति	१४५	(द अ ६ गा ११)
साण सुइअ गाधिं	२२१	(द अ ५ उद् १ गा १२)

स	पृष्ठांक	उद्गमस्थान
।यगधेसव य आरभा	२१२	(उ अ १४ गा २४)
।वज्ज जोगविरह	३८४	(अतुयोगदान सूत्र)
।हरे हस्तपाद य	२६२	(मू प्रथ अ ८४ उद्ग १ गा १७)
।आ मे नरप ठाण	२४३	(उ अ २ गा १२)
।क मूले जहा रुक्मे	३६१	(दशा श्रुत स्तम्भश्च ५ गा १४)
।ससु यावी पडिबुद्ध	२३५	(उ अ ४ गा ६)
।वणरुप्प न उ प यया	२२६	(उ अ ६ गा ४८)
।च्चा जाणह वल्लाथ	८४	(द अ ४ गा ११)
।ो तवो दुविहो बुत्तो	२७६	(उ अ ३० गा ७)
।लसविह मेपण	२७	(उ अ ३३ गा ११)
।ोही उज्जुअभूयस्स ५५		(उ अ ३ गा १५)

ह

।से घाले मुसावाई	२४०	(उ अ ५ गा ६)
।थ पायपडिछिन्न	१३१	(उ अ ८ गा ५६)
।थागया इमे कामा	२३७	(उ अ ५ गा ६)
।य विगयापया बुद्धा	३०३	(उ अ १ गा २६)
।ट्टिमा हेट्टिमा चेव	३२०	(उ अ ११ गा २१२)



भूमिका

जिन-देशना

आर्यावर्षे अज्ञात अतीत काल से ऐसे महापुरुषों को उत्पन्न करता रहा है कि जिन इन अधि व्याधि उपायिक जाल में जकड़ हुए मानव समुह का सत्पथ प्रदर्शित किया है। नीचे तपस्वी श्रमण भगवान् महावीर एष ही महार् आत्माओं में से एक थे। आश्रम से लगभग ३६०० वर्ष पूर्व, जब भारतवर्ष अपनी पुरातन आध्यात्मिकता मार्ग से विमुख हो गया था बह्व्य कर्मकाण्ड की उपासना के भार से लद रहा था और भेष, दया, महानुभूति समभाव, क्षमा आदि सात्त्विक वृत्तियाँ जब जीवन में से किनासा काट रही थी। भगवान् महावीर ने आगे अक्षर भारताय जीवन में एक नई मार्ग की थी। भगवान् महावीर ने कठोर उपदेशों से यह क्रांति की हो सो बात नहीं है। उपदेश मात्र से कभी कोई महान् क्रांति हाती भी नहीं है। भगवान् महावीर राजपुत्र थे। उन्हीं संसार में प्राप्त हो सकने वाली सुख सामग्री सब प्राप्त थी। मगर उन्हींने विद्व के उद्धार के हेतु समस्त भाग्यभागों को तिनके की तरफ त्याग कर अरण्य की शरणाग्र ग्रहण की। तान तप धारण के पश्चात् उन्हीं जो दिव्य ज्योति मिली उसमें बराबर विद्व अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिभासित होने लगा। तब उन्हींने इस भूले भटके संसार को कर्वाण का प्रशस्त मार्ग प्रदर्शित किया। भगवान् महावीर के जीवन से हमें इस

महत्वपूर्ण बात का पता चलता है कि उन्होंने अपने उपदेश में आ कुछ प्रतिपादन किया है वह दीर्घ अनुभव और अभ्यास ज्ञान का कर्मैटी पर कस कर, खूब जाब पड़ताल कर कहा है। अतएव उनके उपदेशों में स्पष्टता है, असाधारणता है वास्तविकता है।

देशना की सार्वजनिकता अमण सस्कृत महा से मनुष्य जाति की एक रूपता पर जोर देती आ रह है। उमका दृष्टि म मानव समाज को टुकड़ों में विभङ्ग कर डालना, किसी भी प्रकार से कृत्रिम साधनों से उसमें अदभाव की सृष्टि करना, न केवल अवास्तविक है वरन् मानव समाज के विकास के लिए भी अताव हानिकारक है। ब्रह्मण, क्षत्रिय आदि का भेद इस अपना सामाजिक सुविधाओं के लिए करें, यह एक बात है और उनके प्रकृत भेद का कल्पना करके उनकी आध्यात्मिकता पर उसका प्रभाव डालना दूसरी बात है। इसे अमण-सस्कृति सहन नहीं करता। वही कारण है कि भगवान् महा वर के उपदेश नीच जन्, ब्रह्मण अत्रह्मण, सब के लिए समान हैं। उका उपदेश धरण करने के लिए सब प्रेणियों के मनुष्य बिना किसी भेदभाव के उनका सेवा में उपस्थित होते थे और आज नीच से नीच समझे जात वाले चाण्डालों को भी महावार के शासन में वह गौरवपूर्ण पद प्राप्त हो सकता था जो किसी ब्रह्मण को। जैन शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण अब भी मौजूद हैं गिनने हमारे कान की अक्षरशः

पुष्टि होती है। भगवान् महावीर का अनुगायावग आज
 अपने दोष से अपने आराध्यैव का इन मौलिक कल्पना का
 भूलगा रहा है, पर युग उसे जगा रहा है। हमारा उत्सव्य है
 कि हम भगवान् का दिव्य सदश प्रणु गान के कानों तक
 पहुँचाने।

सार्वकालिकता भगवान् नमस्तु ये। उनके उपदेश
 हमें वाग, आदि का सामाज्यो से
 घिरे हुए गरी है। ये सवकालान है, मार्ग शिकटै छात्र है।
 ससार ने जितने अशा में उ है भुलान का प्रमाण किया उसने
 ही अशो में उष अतिप्रदत्त प्राम्थित करना पडा है।
 अधिक विवेचन का आवश्यकता नहीं हम दस्त सकते है कि
 आज क युग में जा विद्वट् समस्वाएँ हमारे सामने उपस्थित
 है, हम अजब भौतिकता के विषयसमाग पर बन जा रह है
 उनके प्रति विज्ञाओं को असहाय पैदा हा रहा है। आसिर ने
 फिर उमान को महावीर के युग में माक ल जाना चाहत है।
 सारा ससार रहपाट स भयभात होकर अद्विस दधी के
 प्रवादमय अक में विज्ञान लन का उरुक हा रहा है। जीवन
 को समयशास और आडम्बर हीन बनाने का एक कर रहा
 है। नीच ऊँच का कालभक्ति साधारो का ताकन के लिए
 उताह हो गया है। यही महावीर प्ररक्षित माग है, जिस पर
 चले बिना मानव समूह का कस्याण नहीं।

महावीर क भाग से विमुक्त होकर ससार ने बहुत कुछ
 सीखा है। पर यह प्रसन्नता की बात है कि वह फिर उसी

मार्ग पर चलने की तैयारी में है। ऐसा अवस्था में हमें यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि इस मार्ग के अधिकों के सुभाते के लिए उनके हाथ में एक ऐसा प्रदीप दे दिया जाय जिससे वे अन्ध्राति पूर्वक अपने लक्ष्य पर जा पहुँचे। बस, वही प्रदीप यह 'निर्गन्ध प्रवचन' है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भगवान् महावीर के इस समय उरलच्च विशाल बाडमय से इनका चुनाव किया गया है, पर सक्षिप्तता की ओर भी इसमें पर्याप्त ध्यान रखा है।

अध्यात्म प्रधानता यह ठीक है कि भगवान् महावीर

न आध्यात्मिकता में ही जगत् क्षयाणु को देखा है और उनके उपदेशों को पढ़ने से स्पष्ट ही ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उनमें कूट-कूट कर अध्यात्मिकता भरी हुई है। उनका उपदेशों का एक-एक शब्द हमारे कानों में आध्यात्मिकता की भावना उत्पन्न करता है। हमारे के भोगोपभोगों को वहाँ कोई स्थान प्राप्त नहीं है। आत्मा एव स्वतंत्र ही वस्तु है और इपीलेए उसके वास्तविक सुख और संवेदन आदि धर्म भा स्वतंत्र ही-परानगेच्छ हैं। अतएव जो सुख किसी वस्तु पर अवलम्बित नहीं है जिस ज्ञान के लिए पौष्पानिक इंद्रिय आदि साधनों की आवश्यकता नहीं है, वही आत्मा का सच्चा सुख है, वही सच्चा स्वाभाविकज्ञान है, वह सुख संवेदन, किस प्रकार, किन-किन उपायों से, किसे और कब प्राप्त हो सकता है ? यही भगवान् महावीर के ध्यात्म्य का मुख्य प्रतिपाद है।

अतएव इनकी व्याख्या करने में हमारे जीवन के उभा छेड़ों का व्याख्या हो जाता है और उनके आधार पर नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, आदि समस्त विषयों पर प्रकाश पड़ता है। इस स्पष्ट फरके उदाहरण पुरक समझने के लिए विस्तृत विवचन की आवश्यकता है, और हमें यही प्रस्तावन की सीमा से आगे नहीं बढना ही पाठक 'निर्ग्रह प्रवचन' में यत्र-तत्र इन विषयों की साधारण भन्क भा दल सकेंगे।

निर्ग्रह-प्रवचन और निर्ग्रह प्रवचन 'प्रकारद
विषय-दिग्दर्शन अध्यायों में समाप्त हुआ है।
 इन अध्यायों में विभिन्न विषयों पर मनोहर, आ तराहलाद्जनक और शक्ति प्र ियिता सृष्टियां समूहोत्त हैं। सुगमता से समझने के लिए यहा इन अध्यायों में वर्णित वस्तु का साम य पारचय करा दना आवश्यक है, और वह इस प्रकार है —

(१) समस्त आस्तक दर्शनों की नाव आत्मा पर अवलम्बित है। ससार रमा इस अद्भुत नटक का प्रधान अभिनेता आत्मा ही है, जिसकी वगैरित भीने भाजन के हरय दृष्टगोचर नात है। अतएव प्रथम अध्याय में प्रारभ में आत्मा सव गी सृष्टियां है। आत्मा अजर अमर है रूप रस, गंध, रस रहित होन के कारण वह अमृत है इन्द्रियों द्वारा उसका बाध नहीं हो सकता। मगर वह मूर्त कर्मों से बद्ध होने के कारण मूर्त सा हा रहा है। आत्मा के सुख दुख आत्मा पर ही आधित है। आत्मा स्वय ही अपन दुख सुखों

की सृष्टि करता है। वही स्वयं अपना मित्र है और स्वयं शत्रु है। आत्मा जब दुरात्मा बन जाता है तो वह प्राणदारी शत्रु से भी भयकर होता है। अतएव ससार में यदि काइ सर्वोत्कृष्ट विजय है ता वह है—अपने आप पर विजय प्राप्त करना। जो अपने आप पर विजय नहीं पाता किन्तु संसार में लाखों मनुष्यों को जीत लेता है उसकी विजय का कोई मूल्य नहीं। आत्मा का स्वस्वर ज्ञान दर्शनमय है। ज्ञान के जगत् के द्रव्यों को उनके वास्तविक रूप में देखना जानना चाहिए। अनन्त आत्मा के विवेचन के बाद नव तत्त्वों और द्रव्यों का परिचय कराया गया है।

(२) जगत् के इस अभिनय में दूसरा भाग कर्मों का है। कर्मों के चक्कर में पड़कर ही आत्मा ससार परिभ्रमण करता है। कर्मों का ऋतु है—(१) ज्ञानावरण (२) दशनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) अन्तराय। कर्मों के नितने भेद हैं, कितने समय तक एक बार बँधे हुए कर्म का आत्मा के साथ सम्पर्क रहता है, यह इस अभ्ययन में स्पष्ट किया गया है। कर्मों का करना हमारे अधीन है पर भोगना हमारे हाथ की बात नहीं। जो कर्म किए है उन्हें भोगे बिना छुटकारा नहीं मिल सकता। ध धु वा पव, मित्र, पुत्र, कलात्र आदि कोई इसमें हाथ नहीं बँटा सकता। मोहनीय कर्म इन सब का सरदार है। यह कर्म सैन्य का सैन्यपति है। जिसने इसे परास्त किया उसे अनन्त आत्मिक साम्राज्य प्राप्त हो गया। राग और द्वेष

दुःख ठ मूल है । अतएव सुमुक्तु जीवों को सर्वप्रथम मे इनीय कर्म से ही मोर्चा लेना चाहिए ।

(१) मनुष्यभवं बद्धा कठिनाद् से मिलता है । यदि बद्ध मिल भी जाय तो । पर सद्गर्भ की प्राप्ति आदि अनुकूल निमित्तों का वा सकना सुरेकल है । जिसे यह दुर्लभ निमित्त मिल है उ हे प्रमाद न कर धर्माराधन करना चाहिए । कौन जाने कब क्या हो जायगा, अत रूढ़ावस्था आने से पूर्व, व्याधि होने से पहले और इन्द्रियों की शक्ति क्षीण होने से प्रथम, ही धर्म का आचरण कर लेना उचित है । जो समय गया सो गया, वह वापस लौटकर आने वाला नहीं । समा-त्मा का समय ही सपन होता है । धर्म बड़ी सत्य समझना चाहिए जिसको पीताम्ब मुनियों ने प्रतिपादन किया है । धर्म ध्रुव है, निर्य है ।

(४) आत्मा विभिन्न योनियों में परिभ्रमण करता है । नरक गति में उभे महान् पशु भागन पडत है । तिर्यंच गति के दुःख प्रलय ही हैं । मनुष्य गति में भा विधान्ति नहीं इस में व्याधि आता, मरण आदि की प्रचुर बदनारें विद्य-मान हैं । देव गति भी अल्पकालान है । इन समस्त दुःखों का अत बद्धा पुरुष पुरुष कर सकते हैं जो धर्माराधना करके सिद्धि प्राप्त करते हैं । सिद्धि प्राप्त करने के लिए कृण पापों का प्राथमिक करना चाहिए । तपस्या, निरामिता परिषद्-सहिष्णुता, श्रुतता, धैर्य सवेग, निष्कामता, आदि धार्मिक गुणों की वृद्धि करनी चाहिए । प्राणातिपात, अशुभ, अदत्ता

दान, मैथुन, मृत्पा, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, क्लेश, परपरिवार, आदि आदि पापों का परिहास करना चाहिए। अष्टावक्र से मुक्त और सदावरण में प्रवृत्त होने से मनुष्य का कर्म लय दृढ़ जाता है और वह ऊँच गति करके लोक के अग्रभाग में स्थित हो जाता है। उठना बैठना, सोना आदि प्रत्येक क्रिया विवेक के साथ करना चाहिए। इसी प्रकार में लोक प्रचलित बाल्य क्रिया कण्ड के विषय में भगवान् कहते हैं—

क्षयस्था को अग्नि बनाओ, अत्मा को अग्नि स्थान बनाओ, योग को कुङ्कुम करो शरीर को ईंधन बनाओ, समस-
द्व्यापार रूप शान्ति पाठ करो, तब प्रशान्त होम होता है।

हम सदा सन्न करते हैं, परन्तु वह हमारे अन्तःकरण को निर्मल नहीं बनाता। बाल्य शुद्धि से आन्तर शुद्धि नहीं हो सकती। भगवान् कहते हैं—

अत्मा में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, शान्ति लोभ धर्म रूपी सरावर में जो स्नान करता है वही निर्मल, विशुद्ध और ताप हीन होता है।

(२) ज्ञान पाच प्रकार का है—(१) मति ज्ञान (०) श्रुत ज्ञान (३) अवधि ज्ञान (४) मन पर्याय ज्ञान और (५) केवल ज्ञान। अतुष्टन करने से पहले सम्यग्ज्ञान अवेक्षण है—जिस तरह ज्ञान नहीं बढ़ भ्रम अत्रेय को क्या समझेंगे ? श्रुत से ही पाप पुण्य का भले सुरे का बोध होता है। जैसे समुद्र (डोरा सहित) सुई गिर जाने के बाद फिर

मिल जाता है उसी प्रकार ससून (धुन गान युक्त) चमक सगर में भा कष्ट नहीं पता। अज्ञानी जब दुःख के पात्र होते हैं। वे गूढ़ पुरुष अन्तः सगर में भटकते फिरते हैं। मगर अपना चारित्र्य के भी निस्तार नहीं। अनुष्ठान को जानने मात्र से दुःख का क्लृप्त नभव नहीं है। जा क्लृप्त परायण नहीं व वाचनिक शक्ति से अपनी आत्मा को आत्मान मात्र दे सकते हैं। परित्यक्तमय बाल जा विप्रथ विद्याओं का स्वामी बन जाय, अध्यानुशासन सासल, पर इमने उच्चता प्राण नहीं हो सकता। ज्ञान प्राप्त कर लिया किन्तु शरार या इन्द्रियों के लक्ष्यों का आसक्ति दूर न हूद तो दुःख ही होता है। अतएव सिद्धि सम्पादन करने के लिए सम्पत्तः ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य दोनों ही अनिवार्य हैं। मनुष्य का निर्मम निरदकार, अपरिभही टपक का त्यागी, समस्त प्राणियों पर समभावों बनना चाहिए। लाभालाभ में सुख दुःख में, जीवन मरण में, निदा प्रशंसा में, मानायमान में, जो समान रहता है वही सिद्धि प्राप्त करता है।

(६) धीतराग देव दे, मवथा निभरिप्रदी गुरु ह वीत राग द्वारा प्रतिपादित मम ही सचवा है, इस प्रकार की भ्रष्टा (व्यवहार) सम्पत्त्व है। परम धर्म का वित्तन करना, परमाप दर्शियों की शुद्धता करना, मिथ्यादृष्टियों की भगति त्यागना, यह सम्पत्त्व के लिए अनिवार्य है। मिथ्यावादी पापण्य, उन्माद्यगामी होते हैं। रागादि देवों को नष्ट करने वाले धीतराग का मार्ग ही उत्तम मार्ग है। ऐसी भ्रष्टा

सम्यग्दृष्टि में होनी चाहिए। सम्यक्त्व अनेक प्रकार में उत्पन्न होता है। सम्यक्त्व के बिना सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र्य नहीं हो सकता। सम्यक्त्व होते ही ज्ञान तारेत्र सम्यक् हो जाते हैं। सम्यग्दृष्टि को शका, आकांक्षा आदि दोषों में रहित होना चाहिए। मिथ्यादृष्टियों को आगामी भव में भी बोधि की प्राप्ति दुर्लभ जाती है सम्यग्दृष्टियों को सुलभ होती है। सम्यग् बोधि का लाभ करने के लिए जिन वचनों में अनुश्रवण करना चाहिए, ऊपर बताए हुए दोषों में दूर रहना चाहिए।

(७) पाप महाजन, कम का नाश करने वाला है। पादह कमादाओं * का परित्याग करना चाहिए। दरिद्र जन आदि पदेमाएँ पाननीय हैं। प्राणी मात्र पर क्षमा भाव रखना और अपने अपराधों का उनसे क्षमा प्राधना करना आवश्यक है। इन प्रकार का आचार परायण शूद्रों में देव गति प्राप्त करता है। छाल और रम के बह्य धारण कागवाना, नम्र रहने वाला, मुँह मुँहान वाला, अर्थात् विषाभा वप में धारण करने से ही कोई गुरु नहीं या सक्ता और न उमरो प्राण्य हो सकता है। सूर्यास्त के बाद आर्यसूर्यादय के पहले भोग आदि की इच्छा भा नहीं करनी चाहिए। अमला ब्रह्मण काय है ? इनका उत्तर * ७ अध्याय में (देखो पाया १५ से) बड़ा सुन्दरता से दिया है ।

* कमादाओं का विवरण सामाजिक-साम्यवाद की दृष्टि से भी पढ़िए। समाज की सुत्रगती हुई समस्याओं का यह पुराना समाधान है।

यह प्रकार का पशुधुंधों की आँसू खालने के लिए बहुत उपयोगी है।

(८) इस अध्याय में विषयों का विषमता का विवेचन है। प्रसवारी पुरुष का स्त्रियों एवं नपुंसकों के समीर नहीं रहता चाहिए। स्त्रियों मन्धी बातचीत, स्त्रियों का अशास्त्रों को देखना, परिमाण से अधिक भोजन करना, दाँतों की छिगारना, आदि बातें विषयक समान हैं। महिलाओं के बीच जैसे गूँडा कुशल नहीं रह सकता उसी प्रकार स्त्रियों के बीच प्रसवारी नहीं रह सकता। और की ता बात ही क्या, जिसके हाथ पर बटे हुए हों, नाक कान बडाल हो, ऐसी सा वय का सुदया का सम्पर्क भी नहीं रहना चाहिए। जमे मन्त्रा वक्र में कम आती है उसी प्रकार विषयों की भाव भावों में फैलता है। परन्तु यह विषय शरीर के समान हैं, दृष्टिविषय शरीर के समान है। ये कल्पनाल सुप्त दम्भ अत्यंत दुःखान्द ह अनर्था की सन हैं। बड़ा कठिनाई से भीरवीर पुरुष इनका अपना भिन्न छुटा पत है। इस प्रकार इस अध्याय में प्रज्ञाचय धनधा और भी अनेक-अनेक और प्रभावशाली वर्णन प्रदाना के पढ़ने योग्य हैं।

(९) इस अध्याय में भाग निशिष्ट चरित्र का वर्णन है। सभा प्राणी जीवित रहना चाहते हैं, अतः किसी की द्विष्ट करना और पाप है। असत्य भाषण से विश्वास प्राप्तता नष्ट हो जाती है। बिना आशा लिए छोटी वस्तु भी नहीं लेनी चाहिए। मैथुन अधम का मूल है, अनेक दावों का प्रतिक

ह, अतः निम्रै-यो मा इसस मरथा बनना चाहिए । लोभ-
मूर्त्त का त्याग करना चाहिए । यदि सधु अथ स मया
को रात्रि में रक्त सता है तो वह साधुत्व स पतित होकर
गुरुत्व का कोट ग आ जाता है । साधु यद्यपि निर्ममभाव में
वस्त्र पात्र आदि रखते हैं फिर भी वह पारम्रद नहीं है, यशों
कि उसमें गूना नहीं है । शतपुत्रों में मूर्त्त क ही पारम्रद
कहा है । पृथ्वारुय आदि का अरभ साधु को सवथा ही
न करना चाहिए । सच्चा साधु, आदर सत्कार स अपना
गौरव नहीं समझता और अनादर स मुद्र नहीं हाता ।
वह समभावी हाता है । जाति कुल, ज्ञान या चारित्र्य मा उम
अभिमान नहीं होना चाहिए । उन्नत जाति या उच्च कुल से
ही श्राण नहीं होता, यह बात साधु सदा ध्यान में रक्त ह ।
वह अपना प्रशंसा का अभिलाषा नहीं करता । किसी के
प्रति राग द्वेष नहीं करता, । भय और निष्कपय होकर
विवरता है ।

(१०) जन्मी क्या है ? अज नहीं कल कर डानग
एसा विचार करने वाले, प्रमदा जावों की अखि खोलने के
लिए यह अध्याय बड़े काम की बीज है । भगवान्, गौतम
स्वामी को सवोधन करके, बड़े ही मर्मिक शब्दा में क्षण मात्र
का प्रमाद न करने के लिए उपदेश करत है — गातम । पेद
पर लगा हुआ, पका पत्ता अत्रानक गिर जाता है, एमे ही
यह मानव जावन अवानक समाप्त हो जाता है, इसलिए पल
भर भी प्रमाद न कर । कुश की नोक पर लटकता हुआ

श्लेष्म का बूद उगादा नहीं ठहरता, इसी प्रकार यह मानव जीवन विरसपायी नहीं है। अतः पल भर प्रमाद न कर। गौतम। जीवन अन्याकालान है और वह भी नाना विघ्नो से परिपूर्ण है। इसलिए पूर्ववृत्त रज कर्मों को धो डालने में पल भर भा विलम्ब न कर। मानव जीवन, बहुत लम्बे समय में बड़ी ही कठिनाई से प्राप्त होता है। अतः एक भी पल प्रमाद न कर। पृथ्वीकाय, अग्निकाय, तेजस्काय, वायुकाय में गया हुआ जब असाध्यता काल तक और वनस्पति काय गत जीव अनन्त काल तक बड़ी रह सकता है, इसलिए तू प्रमाद न कर। हृदिदय प्रादिदय और चतुर्भिः दय जीव इस अवस्था में उत्कृष्ट अवस्था में रह जाता है इसलिए प्रमाद न कर। पक्षेदय अवस्था में लगतार सात घण्टा भव रह सकता है अतः प्रमाद न कर। इसी प्रकार दश द्वार नरक गति में भी पर्याप्त समय रह जाता है। जब इन समस्त पदार्थों से ध्वंस कर किसी प्रकार अजीम पुण्योदय से मनुष्य भव मिल जाय तो आर्यत्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है क्योंकि बहुत से मनुष्य दुःखनाय भी होते हैं। फिर पूण पक्षेदयों, उत्तम धर्म की धृति अद्धा धर्म की स्पर्शना, आदि उत्तरेत्तर दुर्लभ हैं। शरीर जीण होता जा रहा है बाल लफेर हो रह है हृदयों की शक्ति क्षीण होती जाता है अतः पल भर भी प्रमाद न कर। तिरों का उत्वेग, विश्रुविका विविध प्रकार के आकस्मिक उत्पात आदि जीवन को घरे हुए हैं, शरीर समय समय नष्ट हो रहा है, अतः गौतम। प्रमाद न कर। गौतम। अल में

कमल को नाईं निलेप बन जा, हरे वृत्ति को छोड़ । धन-
 धा य, स्त्री पुत्र, आदि का अत्याग करके तू ने अनगारिता
 धारण की है उनकी पुन कामना न करना । इस प्रकार का
 प्रभावशाली वगुन पढ़कर कौन क्षण भर क लिए भी । अर्ग्त
 न हो जायगा । यह सम्पूर्ण अध्याय निम्न प्रात काट पठन
 करने की आज है ।

(१०) इस अध्याय में भाषण के नियम प्रतिपादन
 किये गए हैं । (१) मल्य हाने पर भा जो बोलने के अयारय
 हो (२) जिसमें कुछ भाग सत्य और कुछ असत्य हो ऐसा
 मिथ भाषा । (३) जो सयथा असत्य हो, ऐसी तीन प्रकार की
 भाषा बुद्धिमानों को नहीं बोलनी चाहिए । व्यवहार भाषा,
 अनवयभाषा, कशता तथा अदेह रहित भाषा बोलना
 चाहिए । काने को काना कहना, आदि दिल दुखाने वाली
 भाषा भी नहीं बोलनी चाहिए । प्राध, मान, माया, लोभ,
 मय आदि से भी नहीं बोलना चाहिए । बिना पूछे, दूसरे
 बोलने वाले के बीच में न बोले, चुगला न करे ।

मनुष्य कांटों को सह सहता है पर वाक् कण्ठका का सहन
 काना कठिन है पर उत्तम मनुष्य वही है जो इ हें सहले ।
 कांटे थोड़ी देर तक दु ख देत हैं, पर वाक्कण्ठक वैर को बडाने
 वाले, महान् भय जनक होने हैं । इनका निकालना कठिन
 हाता है । इसी प्रकार प्रत्यक्ष परोक्ष में अवणवाद करने वाली
 भविष्य की निश्चयात्मक, अत्रिप्रकारिणा भाषा भी न बोलनी
 चाहिए । बुरा अर्गति का त्याग कर अद्वैती प्रशस्ति में लीः

रहना चाहिए। जनाद आदि सम्बन्धिता भया सत्य है। गोधाणि पूरक कोण। हुदे भया अमर्य है। यह लाक देव निर्मित ह मन्त्र प्रयुक्त है रघ्याग्न है, प्रकृति द्वारा बनाया गया है, स्वयम्भू न रचा है, अत अशाश्वत है, ऐसा कहना असत्य है—अर्थात् लाक अनादिनिधन है किभी का बनाया हुआ नहीं है।

(१२) इस अध्याय में वैश्य सिद्धांत का निरूपण किया गया है। कथय से अनुसन्धित मन बचन, दाय की प्रकृति लक्षणा ठडलाती है। वम धन में यह कारण है। इस के छ भद्र हैं—पृष्ठा नील कापोत, पति, पद्म, शुक्ल। कथ के परिष्ठाप वा न को कौनकी लेरया सममनी चाहिए इत्यादि अर्थात् निरूपण इन अध्याय में है। सुषुप्तु जीवों को हम बणन क आधार पर सदा अपने व्यापारों की जीव करते रहना चाहिए और अप्रशस्त मेरागों से बचना चाहिए।

(१३) इस अध्याय में वषाय कावणन है। प्राध आदि चार वषाय पुनर्भ म की अइ की हरा भरा कात है। क्रोधी, मानी और मायावी आव का कही शान्ति नहीं मिलती। लोभ पाप का षय है। कैलाश पवत के समान असह्य पवन सोन चांदी क खड़े कर दिय आवे तो भी लाभ का सहाय न हागा। क्योंकि तृष्णा आकाश की तरह अन न है। तीन लोक की सारी पृष्ठी, धनधान्य, आदि तमाम वंभूति यदि एक ही अदमी को प्रदान करी जाय तो भी लोभी को वह

पयत्न न होगी। अतएव कामनामा का त्याग करना ही ध्येयस्वरूप है। क्रोध, मान, माया और लोभ, मे सत्कार में भ्रमण करना पड़ता है। काम, प्रीति को मात्र विनय को, माया मित्रता को और लोभ सब सत्गुणों को नारा करता है। अतएव लोभ आदि सत्गुणों में इन्हें दूर करना चाहिए। कौन जाने परलोक है भी या नहीं? परलोक कितने देखा है? विषय सुख प्राप्त हो गया है तो आश्रय के लिए प्राप्त को क्यों त्याग जाय? ऐसा विचार करने वाले बाल जाय अत में दुःखों के गड्ढे में गिरते हैं। गैंग सिद्ध, मृग को पकड़ लेता है वेवे ही मृत्यु मनुष्य को धर दबाती है। यह मेरा है, यह तेरा है, यह करना है, यह नहीं करना है, ऐसा विचारते। बचरते ही मौत अचानक आ जाती है और यह जीवन समाप्त हो जाता है।

(१४ जागो, जागो जागते क्यों नहीं हो ? परलोक में धर्म प्राप्ति होता कठिन है। क्या बूढ़, क्या बलक, नभा को काल हर ले जाता है। कुटुम्ब जनों की ममता में फसे हुए लोगों को सत्कार में भ्रमण करना पड़ता है। कृत कर्मों से भागे बिना पिंड नहीं छूटता। जो क्राधादि पर विजय प्राप्त करते हैं, किधी प्राणी का हनन नहीं करते वही वीर है। गृहस्थी में रहकर भी यदि मनुष्य समय में प्रवृत्त होता है तो उसे देवगते मिलता है। अतएव बोध को प्राप्त करो। कर्तुए की भांति सहस्रेन्द्रिय बन्ना। मन का अपने अधीन करो। भया सबधी दोषों का परिश्याग करो। समस्त ज्ञान का सार और

सारा विज्ञान अहिंसा में ही समाप्त हो जाता है । अन्तः
ज्ञानी जन हिंसा से सदा बचन रहते हैं । कम से कम का
नाश नहीं होता किन्तु प्रथम अहिंसा आदि से ही कर्मों
का क्षय होता है । गेधावो निष्कपाय पुरुष पापों से दूर ही
रहत है । इन्द्रभूति । तत्त्वज्ञाना वद है जा क्या बालक और
क्या वृद्ध—समा को अत्मवत् दृष्टि से देखता है और प्रमाद
रहित हा समय को स्वीकार करता है ।

(१२) मन अत्यन्त दुःख है । मन ही बंध और मालु
का प्रधान कारण है । त्रिषु महात्मना ने मन का ज्ञान लिया,
समस्त लभिए उसने इन्द्रियों और बंधों को भी जीत
लिया । मन, साहसी, भयकर दुष्ट अथवा का गति चारों
तुल्य दौड़ता रहता है । हमें धर्म शिक्षा से अर्धन करना
चाहिए । समय का वर्तमान है कि वह मन को असत्य
विषयों से दूर रखे, समस्त समास में इसकी प्रवृत्ति न
होने दें ।

पराधीनता के कारण जो लोग वस्त्र गंध या अलंकार
आदि का नहीं भोगते वे त्यागी का परमोत्तम पथ पर
प्रतिष्ठित नहीं हो सकते । बाह्य स्वाधानता से प्राप्त का त
थीन त्रिषु भोगों को जा सात मार देता है वही त्यागी कह
साता है । समभाव से विवरने पर भी यदि चरल मन
कदाचित् समय-माग से बाहर निकल जाय तो धार्मिक
भावनाओं से उसे पुनः असाधारण लाना चाहिए ।

हिंसा, अस्पृश्य, चोरी, मैथुन, परिभ्रम एव रात्रिभोजन
से विरत अथवा ही आश्रय से बच सकता है । किसी तालाब

में गया पाना प्रवेश न करे और पुराना पानी उभाच कर या सूर्य की धूर में सुखा डाला जाय तो तालाब निर्मल हो जाता है, इसी भाँति नदीन कर्मों का आश्रय को रोक दन च तथा पूर्ववद् कर्मों का निवारा करने में जाय निष्कम हो जाता है । निर्मला प्रधानता तपस्या से होती है । तपस्या का प्रकार दो है — (१) वृत्त और (२) आ-पन्तर । इनका विवेचन प्रसिद्ध है । दर गृह जाय पतंग का भाँति, शब्द गृह जाय सर्प की तरह, गधगृह जीव हिरन की भाँति रम-लोलुप मत्स्य का नाई, और स्पर्श-सुखाभिलाषी प्रादु प्रसव भेष का तरह अज्ञान मगण दुःख का प्राप्त होता है ।

(१६) एक-त में स्या क पास नहीं सड़ा हाना चाहिए और न उमसे बातचीत करना चाहिए । कभा वस्य मिले या न मिले, पर दु खी नदी हाना चाहिए । यदि कोई नि-दा करे तो मुनि कोप न करे, काय करने से वह उ-दी बाल जावों जैसा हो जायगा । धमण का कोई ताकना करे तो विचारना चाहिए कि आत्मा का नाश कदापि नहीं हो सकता । अपने जीवन को समाप्त करने के लिए शस्त्र का उपयोग करना, विष भक्षण करना वन या अग्नि में प्रवेश करना, जन्म मरण का सञ्चार का उद्दि करता है ।

पाव कारणों से जाय को शिक्षा नहीं मिलती क्रोध, मान, आलस्य, रोग और प्रमाद से । आठ गुणों से शिक्षा का प्राप्ति होती है — ह्योद न होना, समय होना, ममभेदा ध्वन न करना, विशील न होना निर्दोष शाल युक्त होना,

अनोलुपता, क्रोध हीनता, अहंता ।

मुने को तत्र मत्र करना, स्वप्न के फल बताना हाथ की रेखाएँ देखकर शुभ अशुभ कहना, इत्यादि पद्यों में नहीं पढ़ना चाहिए । पानी घेर नरक में पड़त है आर आध घेष्ट धर्मो । अथ गति प्रसन्न अत है ।

इस प्रकार १४ अध्याय में मुनि जीवन के साक्ष्य विविध शिष्याएँ श्रुति तथा गद् हैं जिनका उल्लेख विस्तार भय से नहीं किया जाता ।

(१७) ऊपर अनेक स्थलों पर राक्षसों का फल देव गति और अमदागर का फल नरकगति बड़ा गया है । इस अध्याय में इन दोनों गान्यों का स्वरूप बताया गया है । नरक गति क्या है, उसका स्वरूप क्या है, कौन कौन बड़ा जात है कभी कभी भीषण व नाएँ नारकी आगों को छद्मी पकता है, आदि-आदि बातें जानने के लिए इस अध्याय को अवश्य पढ़ना चाहिए इस प्रकार देवगति का भा इसमें सुन्दर बखन है और अत में कहा गया है कि समुद्र और पानी की एक घूर में जितना अंतर है उतना ही अंतर देव गति और मनुष्य गति के सुखों में है ।

(१८) शिष्य को गुरु के प्रति, पुत्र का पिता के प्रति वैसा व्यवहार करना चाहिए, तथा मुक्ति क्या है, यही विषय मुख्य रूप से इस अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है ।

विनित शिष्य वह है जो अपने गुरु की आज्ञा पाले, उनके समाग रहे, उनके इशारों में मनोभावों को ताककर

वतें। गुरुजी कभी शिष्टा दें तो छुपत न हो, शक्ति से
 स्वीकार करे। अज्ञानियों से संसर्ग न रखे। अपने आसन
 पर बैठकर गुरुजी से कोई प्रश्न न पूछे बल्कि सामन आकर
 हाथ जोड़कर विनय के साथ पूछे। गुरुजी कदाचित् गर्म
 गर्म बात कह तो अपना लाभ समझकर उसे स्वीकार करे।
 इसके विपरीत जो नौधी होता है, बल त्यागकर बातें करता
 है, शस्त्र पकड़कर अभिमान करता है, मित्रों पर भी क्रुपित
 हाता है अस्वच्छ भाषी एवं घमण्डा हाता है तब अज्ञान
 ऐश ही दोषों से दूषित होता है वह अविनीति शिष्य कह-
 लाता है। विनीत शिष्य में पात्रद गुणों का होना आवश्यक
 है। (गाथा ६-१२) अनन्त ज्ञान प्राप्त करके भी अपने
 गुरु की सेवा अवश्य करनी चाहिए। कदाचित् आचार्य क्रुपित
 हो जाएँ तो उन्हें मना लेना चाहिए।

समस्त दुःखों का शत मुक्ति में होता है। सम्यग्ज्ञान
 सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र एवं सम्यक्कृत्य, मोक्ष का मार्ग
 है। इन चारों में से किसी एक का कमा होने से मोक्ष प्राप्त
 नहीं होता। मुफतात्मा जब समस्त लोकालोक को जानते-
 देखते हैं। वे पुन संसार में नहीं आते क्योंकि कर्म सबथा
 नष्ट होने पर पुन उत्पन्न नहीं होते, जैसे सुखा हुआ पेड़।
 दरभ बीज से जैसे अमुर नहीं होते उसी प्रकार कर्म बीज के
 जल जाने से भव अमुर नहीं उत्पन्न होता। मुक्त जीव लोका
 काश के अप्रभाग में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। मुक्त जीव अमूर्-
 तिक है, अनन्तज्ञान दर्शनधारी है, अनुपम सुखसम्पन्न

हात हैं।

द्वितीय संस्करण निम्न प्रवचन का मूलभाग अर्द्ध
की विशेषताएँ मागधी भाषा में है। भगवान महा
 वीर ने सरकारीन व्यवसाधारण
 जनता को समतत्त्व समझाने के लिए उसमें प्रचलित भाषा
 को ही अपने उपदेश के लिए चूना था। वे सबज्ञ थे और
 उन्हें अपने पारिडला के प्रदर्शित करने की पूर्ण अपेक्षा नहीं
 थी, इसीलिए लाकभाषा को उन्होंने अपनाया। सम्भवत
 यही पहला समय था जब किसी महापुरुष ने भाषा संबंधी
 एनी उदात्ता दिसलाई। अस्तु भगवान् के अपनाने से
 अर्द्धमागधी भाषा सनाथ हो गई। उसमें आ बहु मूल्य रान
 भरे हुए हैं उन्हें प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु लोग आज तक
 उसका अभ्यास करत चले आते हैं। ऐसे अभ्यासियों की
 सुविधा का लक्ष्य रखकर, संस्कृत भाषा के साथ तुलनात्मक
 पद्धत से अर्द्धमागधी का अभ्यास सुगम बनाने के अर्थ
 प्रायः से, अब की बार गाथाओं के नीचे संस्कृत छाया भी
 दे दी गई है। आशा है पाठकों को यह वृद्धि अधिक लाभ
 प्रद सिद्ध होगी।

प्रथम वृत्ति में हिन्दी अक्षरों के साथ साथ वहीं वहीं
 अक्षरों में अक्षरों में भाषा के शब्द रख दिए गए थे, इसलिए
 कि अक्षरों की पाठक जनों के पारिभाषिक शब्दों को ठीक ठीक
 हृदयगत कर सकें। पर अब की बार उन्हें पुस्तक में रख
 दिए गये हैं।

शास्त्र अगाध समुद्र है । इसमें अधिक से अधिक सावधानी रखने पर भी कभी कुछ भ्रम रह ही सकता है इस समुद्र में भी अनेक घुटिया रह गई होंगी । उनके लिए हम पठकों से यही निवेदन करना चाहते हैं कि हमें उन घुटियों से सूचित करें और स्वयं अशोधन नरके पड़ ।

अक्षर पात्र पदस्वर हीन, व्यञ्जनसिद्धि विवर्जितरफम् ।
साधुभिरत्र सम चन्तव्यम्, को न विमुह्यते शास्त्रसमुद्रे ।



निवेदन



पाठकों । निम्न भगवान् महावीर के प्रवचनों से, आप सभी कौमों तथा सभी व्यवस्थाओं के जैन अज्ञान नर नारी, सबत्र एवधा और सुगमता पूर्वक लाभ उठा सकें, एत गात्र ही परम पवित्र उद्देश्य को लेकर, बम्बई, पूना, अहमदनगर आदि-आदि कई प्रसिद्ध शहरों के तथा गाँवों के बड़े मठपठ उद्गृहस्थों ने प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्रीदुर्वावदजा महाराज के पाटानुवाट शास्त्र विचारद बाल मद्गवारी पूज्यार श्री महालालजी महाराज के वृत्तिधारी धैरवान् शास्त्रत रूज्य श्री स्वयंभूजी महाराज की सम्प्रदाय के कविवर सरल स्वभावी मुनिश्री हीरालालजी महाराज के सुशिष्य अपद्रुप्रभ जैन दिन कर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनिश्री चौबमलजी महाराज से कई बार प्रार्थना की कि यदि आप जेनागमों में से चुन कर कुछ गाथाओं को एक स्थल पर समझ करके, उनका सुधार तथा सरलातिसरल भाषा में एक हिन्दी अनुवाद भी कर दें तो जैन जगत् ही पर नहीं, बरन् जैनेतर जनता के साथ भी आपका बड़ा भारी उपकार होगा । यदि इस प्रकार का रस्य पूरा सुबोध युक्त एक प्रथम प्रकाशित होकर जगत् को मिल जाय तो जन जनता उससे यथोचित लाभ उठावेगी ही, पर तु साथ ही इसके, यह जनतर जनता भी जो जो आशादिच की मानगी इ इ वक्ष कर, जेनागमों के महासागर में गेगा ।

सगना चाहती है, या गोता लगाने के लिए दीर्घ काल से यशो ही लालायित है, उससे किसी कदर कम लाभ नहीं उठावेगी इस प्रकार से, उन सन्सूहियों के द्वारा समय समय के अखिलमह तथा निवेदन के किए जाने पर, उन्हा जगद्गुरुम जैन निवाकर प्रसिद्धवक्ता परिदित मुनिश्री चौधमलजी महाराज ने, जैनगुप्तों का मन्थन कर कुछ ऐसी गाथाओं का समग्र यहाँ किया, जो जगत् के दैनिक जीवन में प्रतिफल दितकारी भद्र ह। तदनन्तर उन्ही समग्रित गाथाओं का हिन्दी भाषा में अनुवाद भी उनने किया। और मुनिश्री के उन्ही अनुवादित खरों पर से जिसे उनके शिष्य मनोहर श्यामयानी युवा चार्ण परिदित मुनिश्री छगनलालजी महाराज और साहित्य प्रेमी गणिवर्ये परिदित मुनि श्री ध्यारचन्द्री महाराज ने इन ढल में ढाला। उन खरों पर से निखने में, या किसी प्रकार क दृष्टि दोष से, अथवा अथ किसी भी प्रकार की रोई भी भूल इन अनुवाद में साठहों से कभी जान पड़े, तो कृपया प्रकाशक की उसकी सूचना वे श्वरय दे दें। इस प्रकार की सुसूचना का प्रकाशक के हृदय में सधमुव में बड़ा ही ऊँचा स्थान हागा। और, यदि बहु सख्यक विद्वानों की राय में वह सूचना आवश्यक और, उपादेय जान पड़ी तो तृतीयावृत्ति में उसके या उनके अनुसार उचित सशोधन भी करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया जायगा।

प्रस्तुत अनुवाद की भाषा की सरल से भी सरल बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। हम पूरी पूरी आशा

विश्रास है कि पाठकगण इस से यथोचित लाभ उठा कर हमारे उत्साह को बढ़ाने का प्रयत्न करने की कृपा दिखायेंगे । फलक सा० ६ ३ ३५ इ० ।

भवदीय

कान्तराम कोठारी

मास्टर मिथीमल

प्रेसिडेन्ट

सत्री

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतनाम



विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	पट्ट द्रव्य निरूपण	१
२	कर्म निरूपण	१७
३	धर्म स्वरूप वर्णन	४६
४	आत्म शुद्धि के उपाय	५६
५	ज्ञान प्रकरण	८०
६	सम्यक्त्व निरूपण	६३
७	धर्म निरूपण	१०५
८	ब्रह्मचर्य निरूपण	१२८
९	साधु धर्म निरूपण	१४५
१०	प्रमाद परिहार	१६३
११	भाषा स्वरूप	१८०
१२	लक्षणा स्वरूप	२०६
१३	कृपाय स्वरूप	२२४
१४	वैराग्य सम्बोधन	२४८
१५	मनो निग्रह	२६६
१६	आवश्यक कृत्य	२८६
१७	नर्तक समे निरूपण	३०८
१८	भोक्तृ स्वरूप	३३६



॥ एनो सिद्धाण ॥

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(प्रथम अध्याय)

पट् द्रव्य निरूपण

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः-नो इन्द्रियगोचरु अमुत्तभावा ।

अमुत्तभावा वि अ होइ निचो ॥

अजभूत्थहेउ निययत्स वधो ।

ससारहेउ च वयति वध ॥ १ ॥

छाया -नो इन्द्रियग्राह्योऽमूर्तभावात्,

अमूर्तभावादापि च भवति नित्य ।

अध्यात्महेतुर्वियतस्य च घ ,

ससारहेतु च वदति बन्धम् ॥१॥

अन्वयार्थ -हे इन्द्रभूति ! यह आत्मा (अमुत्तभावा)
अमूर्त होने से (इन्द्रियगोचरु) इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने
योग्य (नो) नहीं है । (अ) और (वि) निश्चय हो
(अमुत्तभावा) अमूर्त होने से आत्मा (निचो) हमेशा

(दाह) रहती है (अरुण) इगका (यथा) बध जा है, यह (अगमरुषद्वय) आत्मा क आधित रह हुए मिथ्यात्व बध या। हनु (य) चार (बध) बधन के (नियन्त्रण) निश्चय हा (सत्तारदेव) सत्तार पा हेतु (व्यक्ति) कहा है ।

आघाथ - हे गौतम ! यह आत्मा अमूर्ति अथात् बल गम रस और स्पर्श-रहित हो मे इन्द्रियों द्वारा महण नहीं हो सकता है । और अकृती होने से न कोई इस पक्ष ही सकता है । जो अमूर्त अथात् अकृती है, यह हमेशा अवि-नाशी है, सदा के नियम कायम रहन वाला है । जो शरीरदि न इगका बधन दाता है, वह प्रसाह से आत्मा में हमेशा च रहे हुए मिथ्यात्व अमन आदि बधयो का ही कारण है । जैसे अकार अमूर्त है पर घटादि के कारण से आकार घटाकार के रूप में दिख सकता है । एसे ही आत्मा को भा अनादि काल के प्रसाह से मिथ्यत्वादि के कारण शरीर के बधन रूप में समझना चाहिए । यही बधन सत्तार में परि-भ्रमण करने का साधन है ।

मूल - अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामनी ।

अप्पा कामदुहा धेणु, अप्पा मे नदण वणारा ।

दाया आत्मा नही चैतरणी, आत्मा मे कूटशास्त्रमली ।

आत्मा कामदुहा धेणु, आत्मा मे न दन धनमूत्रा ।

अ-घयाथः दे इन्द्रभूति ' (अप्पा) यह आत्मा ही

(वेतरणी) वैतरणी (नद , नदी के समान है । (मे) मेरी
 (अर्था) आत्मा (वृद्धसामली) कूटशास्त्रमी के पृच्छा है
 और यहा (अर्था) आत्मा (कामदुःख) कामदुःख ह्य
 (पेषु) गाय है । और यहा मेरी (अर्था) आत्मा
 (नदण) नदन (वण) वन क समान है ।

भावार्थ - हे गौतम । यही आत्मा वैतरणी नदी के
 समान है । अर्थात् इधी आत्मा का अपन दृश्य कार्यो से वैत
 रणी नदी में गोता खान का मोटा मिनता है । वैतरणी नदी
 का कारण भूत यह आत्मा ही है । इमी तरह यह आत्मा
 नरक में रह हुए कूटशास्त्रमी पृच्छ के द्वारा होने वाले दुःखो
 का कारण भूत है और यही आत्मा अपने गुण क द्वारा
 कामदुःख गाय के समान है, अर्थात् इच्छित गुणों की प्राप्ति
 कराने में यही आत्मा कारण भूत है । और यही आत्मा
 नदनवन क समान है अर्थात् स्वय और मुक्ति के पुरा धर्म
 कराने में अपने आप ही स्वाधान है ।

मूलः अर्था कर्त्ता विकर्त्ता य, दुःखाण य सुखाण य ।
 अर्था मित्रममित्र च, दुःप्रस्थितः सुप्रस्थितो ॥३॥

अर्था आत्मा कर्त्ता विकर्त्ता च, दुःखाना च सुखाना च ।
 आत्मा मित्रममित्र च, दुःप्रस्थितः सुप्रस्थितः ॥३॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूते, (अर्था) यह आत्मा ही
 (दुःखाण) दुःखों का (य) और (सुखाण) सुखों का

(कृता) उत्पन्न करने वाला (य) और (विद्वत्ता) नारा
करने वाला है । (अण्डा) यह आत्मा ही (मित्त) मित्र है
(च) और (अमित्त) शत्रु है । और यही आत्मा (दुष्पाण्डुय)
दुराचारी आर (सुपाण्डुओ) सदाचारी है ।

भाषाण्य - हे मातम ! यह आत्मा दु स्तो एव सुखों के
साधनों का कृता रूप है और उद्द न श करने वाला भी यही
आत्मा है । यहा गुण काय करने से मित्र के समान है और
अशुभ काय करने से शत्रु क सदृश हो जाता है सदाचार का
सेवन करने वाला आर दुष्ट आचार म प्रवृत्त होने वाला भा
यहा आत्मा है ।

मूल.-न त अरी कठछेत्ता करेद् ।

ज से करे अप्पणिया दुस्पया ॥

से नाहिई मच्चुमुद्द तु पत्ते ।

पच्छाणुतावेण दयाविहणो ॥४॥

छाया -न तदरि कठछेत्ता करोति,

यत्तस्य करोत्प्यात्मीया दुरात्मता ।

स सास्यति मृत्युमुर्धं तु प्राप्त ,

पश्चादनुत्तापेण दयाविहीन ॥ ४ ॥

अन्वयार्थं हे इ दभूति ! (से) वह (अप्पणिया)

अपना (दुस्पया) दुराचरणशाल आत्मा ही है जो (च)

उस अनध को (करे) करता है । (त) जिसे (कठछेत्ता) कठ

का छदन करने वाला (शत्रु भी (न) नहीं (करे) करता है (तु) पर-तु (से) वह (दयाविह्वला) दयाहीन दुष्टात्मा (मन्चुमुह) मृत्यु के मुह में (पत्ते) प्राप्त होने पर (पचद्वाणुतावेण) पश्चात्ताप करके (नहिह) अपने आप को जानगा ।

भाचार्य - हे गातम ! यह दुष्टात्मा जब जैसे अनर्थों का कर बैठता है जैसे अनर्थ एक शत्रु भी नहीं कर सकता है । क्योंकि शत्रु तो एक ही बार अपने शस्त्र से दूसरों के प्राण हरण करता है पर-तु यह दुष्टात्मा तो एसा अनर्थ कर बैठता है कि उसके द्वारा अनेक जन्म ज-मातियों तक मृत्यु का सामना करना पड़ता है । फिर दयाहीन उम दुष्टात्मा को मृत्यु के समय पश्चात्ताप करने पर अपने दृश्य कार्यों का मान होगा है कि थरे हा ! इस आत्मा ने कैसे कैसे अनर्थ कर डाले हैं ।

मूलः अप्ना चैव दमेयव्यो, अप्ना हु खलु दुर्दमो ।

अप्या दती सुही होइ, अस्मिँल्लोके परत्र च ॥५॥

छाया - आत्मा चैव दमितव्य आत्मा हि खलु दुर्दम ।

आत्मादान्त सुपी भवति, अस्मिँल्लोके परत्र च ॥५॥

अ-चयार्थ - हे इ द्रभूति । (अप्ना) आत्मा (चैव) ही (दमेय वो) दमन करने योग्य है । (हु) क्योंकि (अप्ना) आत्मा (खलु) निश्चय (दुर्दमो) दमन करने में

कठिन है । तभी तो (अणा) आत्मा को (दत्ता , दत्ता) परता हुआ (अस्मि) इस (लोए) लोक में (थ) और (परत्य) परलोक में (धृष्ट) सुखी (दाइ) हाता है ।

भाषा - हे गौतम ! काधादि के घराभूत होकर आत्मा उन्मार्ग गामी होता है । उसे दत्ता करके अपने कावू में करना योग्य है । क्योंकि निजा आत्मा को दमन करना अथात् विषय वासनाआस उसे पृथक् करना महान कठिन है और अब तक आत्मा को दमन न किया जाय तब तक उस सुख नहीं मिलता है । इसलिए हे गौतम ! आत्मा को दमन कर, जिस से इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त हो ।

मूल वर मे अणा दतो, सजमेण तवेण य ।

माह परेहिं दम्मतो, वधणेहिं वरेहिं य ॥ ६ ॥

दायाः घर मे आत्मा दा त, अयमेन तपसा च ।

माऽह परैर्दमित्त , य धनैर्धधैश्च ॥ ६ ॥

अचयार्थ - हे इन्द्रभूति ! आत्माआ को विचार करना चाहिए कि (मे) मेरे द्वारा (सजमेण) समय (य) और (तवेण) तपस्या करके (अणा) आत्मा का (दतो) दमन करना (वर) प्रधान कृत्य है । नहीं तो (ह) मैं (परेहिं) दूसरे से (वधणेहिं) बधनों द्वारा (य) और (वधेहिं) ताड़ना द्वारा (दम्मतो) दमन (मा) कही न हो जाऊँ ।

भावार्थ हे गौतम ! प्रत्येक आत्मा को विचार करना चाहिए कि अपने ही आत्मा द्वारा समय और तप से आत्मा को बश में करना श्रेष्ठ है । अथात् स्वयंश करके आत्मा को दमन करना श्रेष्ठ है । नहीं तो फिर विषय वामना-सेवन के बाद कहीं ऐसा न हो कि उसके कन उदय होने पर इस आत्मा को दमरों के द्वारा बधन आदि ये श्रावा बरका, चातुक, भाला बरछी आदि के घाव सहन पड़े ।

मूलः—जो महस्स सहस्साण, संगामे दुज्जप जिणे ।

एग जिण्णिज्ज अप्पाण, एस से परमो जञ्चो ॥७॥

छायाः य सहस्र सहस्राणाम्, सप्रामे दुजये जयेत् ।

एक जयेदात्मान एपस्तस्य परमो जय ॥७॥

अन्ययार्थ हे इ द्रमूनि ! (जो कोई मनुष्य (दुज्जा) सातने में कठिन एष (संगाम) सप्राम में (सहस्साण) हजारका (सहस्र) हजार गुणा अथात् दश लक्ष सुभटों का जीत ले उससे भी बलवान (एग) एक (अप्पाण) अपनी आत्मा को (जिण्णिज्ज) जीत (एम) यह (से) उसका (जञ्चो) विजय (परमो) उत्कृष्ट है ।

भावार्थ हे गौतम ! जो मनुष्य युद्ध में दश लक्ष सुभटों को जीत ले उस से भी कहीं अधिक विजय का पात्र यह है जो अपनी आत्मा में स्थित काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आर माया आदि विषयों के साथ युद्ध करके आर इन

समा को पराजित कर अपना अत्मा को कायू म कर ल ।

मूल, अप्पाणमेव जुज्झादि, किंते जुज्झेण वज्झमो ।

अप्पाणमेवमप्पाण, जहत्ता सुदमेदए ॥ ८ ॥

छाया - आत्मनश्च युध्यस्व किंते युद्धा वाह्यत ।

आत्मनैवात्मानं जित्वा सुखमेधत ॥ ८ ॥

अथार्थ - दृ इ द्रभूते । (अप्पाणमेव) अत्मा के साथ ही (जुज्झादि) युद्ध कर (ते) तुम्ह (वज्झमा) दूसरों के साथ (जुज्झेण) युद्ध करने से (किं) क्या पडा है । (अप्पाणमेव) अपने अत्मा का क द्वारा (अप्पाण) अत्मा का (जहत्ता) जीत कर (सुद) सुख का (एदए) प्राप्त करता है ।

भावार्थ - हे गौतम । अपनी अत्मा के साथ युद्ध कर के क्रोध, मद मोहादि पर विजय प्राप्त कर । दूसरों के साथ युद्ध करने से कम बंध के विनाय आत्मिक लाभ कुछ भी नहीं होता है । अतः जो अपनी अत्मा द्वारा अपने ही मन को जीत लेता है उससे सुख प्राप्त होता है ।

मूल - परिदिमाणी कोइ, माण माय तद्देव लोभ च ।

दुज्जय चैव अप्पाण, सब्बमप्ये जिए जिय ॥ ९ ॥

छाया पञ्चेन्द्रियाणि प्राघ मान माया तथैव लोभश्च ।

दुज्जय चैवात्मानं सधमात्मनि जिते जितम् ॥ ९ ॥

अ चयार्थ हे इन्द्रभूति । (हुज्जय) जीतने में कठिन
 ऐसे (पचिदियाणि) पाँचों इंद्रियों के विषय (मोह) क्रोध
 (माण्ड) मान (माय) अपट (तद्देव) वैशे ही (नाभ)
 तृष्णा (चेष) आर भी विद्यगात्व अत्रतादि (च) और
 (अण्पाण) मन य (सध्व) सब (अण्पे) आत्मा का
 (जिए) जातने पर (जिय) जीत जात है ।

भावार्थ - हे मातम ! जो भा पाँचों इंद्रियों के विषय
 आर मोह, मान, माया लोभ तथा मन य सब के सब दुर्जया
 है । तथापि अरना आत्मा पर विजय प्राप्त कर लेने से इन पर
 अनायाम ही विजय प्राप्त की जा सकता है ।

मूल शरीरमाहु नाव चि; जीवो बुच्चइ गविथो ।

रुसारो अण्णो वुत्तो, ज तरति महसिणो ॥१०॥

अथ शरीरमाहुर्नावति जीव उच्यते गविक ।

भसारोऽण्य उक्त्त, यतरन्ति महर्पथय ॥२०॥

अचयार्थ हे इन्द्रभूति । यह (अणारो) सघार
 (अण्णो) समुद्र के समान (वुत्तो) कहा गया है । इस
 में (शरीर) सार (नाव , नाव के सदृश है । (आहुति)
 ऐसा शानी अनो ने कहा है । और उसमें (जीवो) आत्मा
 (गविथो) गविक के तुल्य बैठ कर तिरनेवाला है ।
 (उद्वद) ऐसा कहा गया है । अता (ज) हम एसा
 समुद्र को (महसिणो) शानी अन (तरति , तिरते हैं ।

भाषार्थः ह गौतम ! इत् सत्तार रूप समुद्र क परले पार जाने के लिए यह शरीर नौका के सम न है त्रिष में बैठ कर आरमा नाविक रूप हो कर सत्तार समुद्र को पार करता है ।

मूलाः ताण च दसण चेष, चरित्त च तवो तहा ।

वीरिय उवभोगो य, एय जीवस्स लक्खण ॥११॥

छाया ज्ञानञ्च दर्शनञ्चैष चाग्निश्च तपस्तथा ।

घायमुपयोगश्च एतज्जीवस्य लक्षणम् ॥ ११ ॥

अ यथाथ ह इद्रभूत ! (नाण) ज्ञान (च) आर (दसण) दर्शन (चेष) आर (चरित्त) चारित्र (च) और (तवो) तप (तहा) तथा प्रकार का (वीरिय) सामर्थ्य (य) और (उवभोगा) उपमान (एय) यही (जीवस्स) आरमा का (लक्खण) लक्षण है ।

भाषार्थः ह गौतम ! ज्ञान, दर्शन, तप, क्रिया और सावधानीवन, उपयोग ये सब जीव [आरमा] के लक्षण हैं ।

मूल जीवाऽजीवा य भभो य पुण्य पापासवो तहा ।

सवरो निर्जरा मोक्षो, सतेए तद्विया नव ॥१२॥

छाया जीवा अजीवाश्च य चक्ष्य पुण्य पापासवौ तथा ।

सवरो निर्जरा मोक्ष सत्येते तथ्या नव ॥१२॥

अ-यथाथः हे इद्रभूते ! (जीवाऽजीवाय) चतन और अह (य) आर (भभो) कम (पुण्य) पुण्य (पापासवा)

पाप और आध्रव (तद्वा) तथा (सधरो) सधर (निज्जरा)
निज्जरा (मोच्छो) मोक्ष (एए) ये (नव) नौ पशुप
(तद्विया) तद्व्य (सति) कहलाते हैं ।

भावार्थ हे गौतम ! जीव जिसमें चेतना हो । जड़
चेतना रहित । धध जीव और कर्म का मिलना । पुण्य शुभ
कार्यों द्वारा संचित शुभ कर्म । पाप दुष्टज-न्य कर्म धध
आध्रव कर्म अने का द्वार । सधर आते हुए कर्मों का
रचना । निज्जरा एक देश कर्मों का क्षय हाना । मोक्ष
सम्पूर्ण पाप पुण्यो से छूट जाना । एरान्त सुख के भागी
होना मोक्ष है ।

मूल धम्मो अहम्मो आगास कालो योगलजतवो ।

एस लोगुत्ति परणत्तो जियोहिं वरदसिहिं ॥१३॥

छाया धर्मोऽधर्मं आकाश काल पुद्गलज-तव ।

एषो लोक इति प्रथतो जिनैर्धरदशिभि ॥१३॥

अ-प्रयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (धम्मो) धर्मास्तिकाय
(अहम्मो) अधर्मास्तिकाय (आगास) आकाशास्तिकाय
(कालो) समय (योगलजतवो) पुद्गल और जीव (एत)
ये छ ही द्रव्य वाला (लोगुत्ति) लोक है । ऐसा (वरद-
सिहिं) केवल ज्ञानी (जियोहिं) जिनेश्वरों ने (परणत्तो) कहा है ।

भावार्थ हे गौतम ! धर्मास्तिकाय जो जीव और जड़
पदार्थों को गमन करने में सहायक हो । अधर्मास्तिकाय

जाव और अजाव पदार्थों का गति को अवरोध करने में वायु भूत एक द्रव्य है । आर आकाश, समय, जड़ और चेतन इन छ द्रव्यों को ज्ञानियों ७ लाख बह कर पुकारा है ।

मूल धम्मो अहम्मो आगास, दब्ब इक्किम्माहिय ।

अणुताणिय दब्बाणिय य, कालो पुगलजतयो ॥१४॥

छाया धर्मोऽधम आकाश द्रव्य एकैकमाख्यातम् ।

अन ताणि च द्रव्याणि च काल पुद्गलज तय ॥१४॥

अ वयार्थः हे इन्द्रभूत । (धम्मो) धमास्तिकाय (अहम्मा) अधमास्तिकाय (आगास) आकाशास्तिकाय (दब्ब) इन द्रव्यों का (इक्कि) एक एक द्रव्य (आहिय) कहा है (य) और (कालो) समय (पुगलजतयो) पुद्गल एव जाव इन द्रव्यों को (अणुताणिय) अनत कहे है ।

भाषायाः-हे शिष्य । धमास्तिकाय अधमास्तिकाय और आकाशास्तिकाय ये तीनों एक एक द्रव्य हैं । जिस प्रकार आकाश के टुकड़ नहीं होते, वह एक अक्षरद्वय द्रव्य है, ऐसे ही धमास्तिकाय तथा अधमास्तिकाय भी एक एक ही अक्षरद्वय द्रव्य हैं और पुद्गल अणु, कण, गण, रस, स्पर्श वाला एक मूला द्रव्य तथा जीव और [अतीत व अनागत की अपेक्षा] समय, ये तीनों अनत द्रव्य माने गये हैं ।

मूल* गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो ।

भायण सवदवण, न्ह ओगाइलक्खण ॥१५॥

द्वया गतिलक्षणस्तु धर्म अधम स्थागलक्षण ।

भाजन सद्यद्रव्याणाम् नभाऽयगाहरक्षणम् ॥१५॥

अध्याय - हे इन्द्रभूति ! (गङ्गालक्षणो) गमन करने में सहायता देने का लक्षण है । जिसका, उसको (धर्मो) धर्मोस्ति काय कहते हैं । (टाणलक्षणो) ठहरने में मदद देने का लक्षण है जिसका उसका (अधर्मो) अधर्मोस्ति काय कहते हैं । और (सद्यद्रव्याणाम्) भव द्रव्यों को (भायण) आध्य रूप (योगालक्षणम्) अवकाश देने का लक्षण है जिसका, उसको (नह) आकाशास्ति काय कहते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! जो जीव और जब द्रव्यों को गमन करने में सहाय्य भूत हो उसे धर्मोस्तिकाय कहते हैं । और जो ठहरने में सहाय्य भूत हो उसे अधर्मोस्तिकाय कहते हैं । और पाँचों द्रव्यों को जो आघार भूत हो कर अवकाश द उसे आकाशास्तिकाय कहते हैं ।

मूलः वर्तणालक्षणो कालो, जीवोऽवयथेऽगलक्षणो ।

नाणेण दसणेण च, सुहेण च दुहेण च ॥१६॥

द्वया वर्तनालक्षण कालो जीव उपयोगलक्षण ।

शानेन दशनेन च सुखेन च दुःखेन च ॥ १६॥

अन्यार्थः हे इन्द्रभूति ! (वर्तणालक्षणो) वर्तना है लक्षण जिसका उस को (कालो) समय कहते हैं (अवथे गलक्षणो) उपयोग लक्षण है जिसका उसको (जीवो)

आत्मा कहत है । उच की पहचान है (गणेष) शान (व)
और (दसणण) दशन (य) और (घुदेष) गुल (य)
और (दुदेष) दुघ के द्वारा ।

भाषार्थ हे शिष्य ! जीव और पुद्गल मात्र के पयाय
बदलने में आ सहायक होता है उच काल कहत है । शानदि
या एकाश या विशवाश जिस में हा बही जीवास्तिकाय
है । जिन में उचरेग अकार इनदि न सम्भूत ही
है और न अश मात्र भी है यह जइ पश्य है । क्योंकि जो
आत्मा है, वह सुग, दुल इन, दशन का अनुभव करता
है इहा से इम आत्मा कहा गया है और इन कारणों से हा
आत्मा की पहचान मा ॥ गइ ह ।

मूल.—सदधवारउजोओ, पहा छायाऽऽतवे इ वा ।

वरणरसगधफासा, पुग्गलाण तु लक्षणम् ॥१७॥

छाया शब्दोऽधकारउच्चात प्रभाःछायाऽऽनप इति या ।

वरणरसग धस्पर्शा पुद्गलानाञ्च लक्षणम् ॥१७॥

अन्वयार्थ हे इन्द्रभूति ! शब्द (सदधवार) शब्द अकार
(उजोओ) प्रकाश (पहा) प्रभा (छायाऽऽतवे,) छाया
धूप आदि से (वा) अथवा (वरणरसगधफासा) वरण, रस,
गंध, स्पर्शादिकका (पुग्गलाण) पुद्गलों का (लक्षणम्)
लक्षण कहा है । (तु) पाद पूर्ति ।

भाषार्थ हे गौतम ! शब्द, अकार, रसादिक का

प्रकाश च द्रादिक की कान्ति, शीतलता, छाया, घृण आदि ये सब और पाँचों वर्णान्त्रिक, सुगन्ध, पाँचा रसादिक और अठों स्पर्शादि से पुद्गल जाने जाते हैं ।

मूलः गुणाणामासश्चा द्रव्य, एगदव्यस्त्रिसया गुणा ।

लक्षणा पञ्जवाण तु उभयो अस्त्रिसया भवे ॥१८॥

छाया गुणानामाश्रयो द्रव्य, एकद्र-याधिता गुणा ।

लक्षण पर्यवाना तु उभयोराधिता भवन्ति ॥१८॥

अ-वयार्थ - हे इन्द्रभूति । (गुणाण) रूपादि गुणों का (आसन्नो) आश्रय जा है वद (द्रव्य) द्र य है । और जो (एगद-वसिया) एक द्र य आश्रित रहने आये द्र वे (गुणा) गुण ह (तु) और (उभयो) दोनों ने (अस्त्रिसया) आश्रित (भवे) हो, वह (पञ्जवाण) पर्यायों का (लक्षण) लक्षण है ।

भावार्थ - हे गौतम । रूपादि गुणा का जा आश्रय हो, उसको द्र-य कहते ह । और द्रव्य के आश्रित रहनेवाले रूप, रस आदि ये सब गुण कहलाने हैं । और द्र-य तथा गुण इन दोनों के आश्रित जा होता है, अर्थात् द्रव्य के अ-दर तथा गुणों के अ-दर जा पाया जाय वह पर्याय कहलाता है । अर्थात् गुण द्रव्य में ही रहता है किन्तु पर्याय द्रव्य और गुण दोनों में रहती है । यही गुण और पर्याय में अ-तर है ।

मूलः-एगत्त च पुद्गत च, सखा सठाणमेव य ।

सजोगा य विभागा य, पञ्जवाण तु लक्षणम् ॥ १५

दाया एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च सयथा सन्धानमथ च ।

सयोगाश्च विभागाश्च पयव एतु लक्षणम् ॥ १६ ॥

अथयथाय - हे इदमृते । (पञ्जवाण) पञ्चों का (लक्षण) लक्षण यह ह, कि (एता) एक पदाय के ज्ञान का (व) और (पुद्गी) तब य भिन्न पदाय के ज्ञान का (च) और (सदा) सदा का (य) और (मयाण मेव) आकार सकार का (सजागा) एक से दा गिन हुआ का (य) और (विभागाय) यह एत से अलग ह । ऐसा ज्ञान जो करोवे वही पयाय है ।

भाषायाः-ह गौतम । पयाय उसे कहते हैं कि यह अमुक पदाय है, यह तब से अलग है, यह अमुक सख्या वाला है इत आकार प्रकार का है, यह इतन समूह का है, आदि ऐसा जो ज्ञान करोवे वह पयाय है । अथात् जब यह मिथी थी पर अब घट का है । यह घट, उब घट से पृथक् रूप में है । यह घट सत्ता बद्ध है । पहले नम्बर का है या दूसरे नम्बर का है । यह गोल आकार या चौरस आकार है । यह दो घट का समूह है । यह घट उब घट से भिन्न है । अदि ऐसा ज्ञान जिस के द्वारा हो वही पयाय है ।

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(द्वितीय अध्याय)

कर्म निरूपण

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः श्रद्ध कर्माद् वोच्छामि, आणुपूर्व्यं जहकम ।

जेहिं उद्धो अय जीवो, ससारे परियत्तइ ॥ १ ॥

छाया श्रष्ट कमाणि वन्त्यामि, आणुपूर्व्यां यथाक्रमम् ।

यैवद्धोऽय जीव ससारे परिवर्त्तते ॥ १ ॥

शब्दार्थ - हे इन्द्रभूति ! (श्रद्ध) आठ , कर्माद्)
 कर्मों को (आणुपूर्व्यं) अनुपूर्वीं स (जहकम) कमवार
 (वोच्छामि) कहता हूँ, सो सुनो । क्योंकि (जेहिं) उ हीं
 कर्मों से (उद्धो) बधा हुआ (अय) यह (जाणे) जान
 (ससारे) ससार में (परियत्तइ) परिभ्रमण करता है ।

भाषा - हे गौतम ! निज कर्मों को करके यह अत्मा
 ससार में परिभ्रमण करता है, जिनके द्वारा ससार का अन्त
 नहीं होता है वे कम आठ प्रकार क हाते हैं । मैं उद्धे कम
 पूर्वक और उ के स्वल्प क पाप कहता हूँ ।

मूलः नाणुसावरणिज्ज, दसणावरण तदा ।

वेयणिज्ज तदा मोह, आउकम्म तदेव य ॥२॥

नामकम्म च गाय च, अतराय तदेव य ।

एवमेयाइ कम्माइ, अट्टर उ समासओ ॥ ३ ॥

छाया छानस्यावरणाय, दशनावरण तथा ।

वेदनीय तथा मोह, आयु कम तथैव च ॥२॥

नामकम च गोत्र च, अतराय तथैव च ।

एवमेतानि वमाणि अणै तु समासतः ॥ ३ ॥

अ यथाथ हे इन्द्रभूति । (नाणुसावरणिज्ज) ज्ञानावरणीय (तदा) तथा (दसणावरण) दर्शनावरणोव (तदा) तथा (वेयणिज्ज) वेदनाय (मा०) माहनाय (तथैव) और (अउकम्म) आयुष्यम (च) और (नामकम्म) नाम कर्म (च) और (गोत्र) गोत्र कर्म (य) और (तदेव) यथे ही (अतराय) अतराय कर्म (एवमेयाइ) इस प्रकार ये (कम्माइ) कर्म (अट्टेव) आठ ही (समासओ) संक्षेप से शनी जनोंने कहे है । (उ) पादपूर्ति अर्थ म ।

भाषार्थ - हे शैतम ! जिसके द्वारा बुद्धि एवं ज्ञान का न्यूनता हो, अर्थात् ज्ञान वृद्धि में बाधा रूप जो हो उसे ज्ञानावरणाय अर्थात् ज्ञान शक्ति को दबानेवाला कर्म कहते हैं । पदार्थ को साक्षात्कार करने में जो बाधा डाले, उसे

दर्शनावरणय कर्म कहा गया है । सम्यक्त्व और चारित्र्य को जो विगाड़े, उसे माहनीय कर्म कहते हैं । जन्म मरण में जो सहाय्यभूत हो वह आयुर्कर्म माना गया है । जो शरीर आदि के निर्माण का कारण हो वह नाम कर्म है । जीव को जो लोकरुप्रतिष्ठित या लोकनिन्द्य कुलों में उत्पन्न करने का कारण हो वह गोत्र कर्म कहलाता है । जीव की अनन्त शक्ति प्रकट होने में जो बाधक रूप हो वह अंतराय कर्म कहलाता है । इस प्रकार ये आठों ही इस जीव को चौरापी के चकर में डाल रहे हैं ।

मूलः—नाणावरण पचविद्, सुय आभिषिषोद्दिय ।

श्रोहिनाण च तद्वय, मणनाण च केवल ॥४॥

छाया ज्ञानावरण पञ्चविध, धुनमाभिनिरोधिहम् ।

अवधिज्ञान च तृतीय, मनोज्ञान च केवलम् ॥४॥

अन्ययार्थ हे इ इभृति । (नाणावरण) ज्ञानावरणीय कर्म (पचविद्) पांच प्रकार का है । (सुय) धुनज्ञानावरणीय (आभिषिषोद्दिय) मतिज्ञानावरणीय (तद्वय) तीसरा (श्रोहिनाण) अवधिज्ञानावरणीय (च) और (मणनाण) मन पथव ज्ञानावरणीय(च)और(केवल)केवल ज्ञानावरणीय

भाषाथ -हे गौतम । अथ ज्ञानावरणीय कर्म के पांच भेद कहते हैं । सो सुनो । (१) धुनज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान के द्वारा अथवा शक्ति आदि में न्यूनता हो । (२)मति

साक्षात्काराय तिमिरं दूरात् समसने की शक्ति कम हो (३) अयच्छिदानायरक्षीय-मित के द्वारा परोक्ष की बातें जानने में न आवें (४) मन पर ईष्य ज्ञानायरक्षीय-दूरी के मन की बात जानने में शक्ति हीन होना (५) कथल साक्षात्काराय-गण्य पदार्थों के जानने में अक्षम होना । ये सब इन वरक्षीय कर्म के फल हैं ।

हे भक्तियोग्य अथ ज्ञानावरणाय कम बधन के कारण बताते हैं जो सुनो (१) ज्ञान के द्वारा बताये हुए तन्मों का अग्रतः बताना, तथा तू दे अग्रतः निद्रा बरन का चेष्टा करना (२) जिन ज्ञानी के द्वारा ज्ञान प्रप दूभा है उसका नाम तो दिया देना और म स्वयं मनसा पना हूँ ए॥ वत वरण फताना (३) ज्ञान की अकारता दिखाना कि मम में पदा ही क्या है ? आदि कह कर ज्ञान एवं ज्ञानी की अरणा करना । (४) ज्ञानी के रूप भाव रखते हुए कहना कि वह पदा ही क्या है ? कुछ नहीं । केवल डोगी होकर ज्ञानी होने का दम भरता है, आदि कहन (५) जो कुछ साध पड़ रहा हो उसके काम में बाधा डालने में हर तरह से प्रयत्न करना (६) ज्ञानी के साथ अशुभ कृत्य बोल कर व्यवहार का मगहा करना । आदि आदि कारणों से ज्ञानावरणाय कम बधना है ।

मूल. निदा तद्वैव पयना, निदानिदा य पयलपयना य ।

तस्यै च आणुगिद्धौ उ, पचमा होइ गायन्वा॥५॥

चकलुमचरखु ओदिस्स, वसये केवले अ आवरखे

एव तु नवविगप्य, नायव्व दसणावरण ॥ ६ ॥

छाया निद्रा तथैव प्रचला निद्रानिद्रा च प्रचलाप्रचलाच
ततश्च स्त्यानगृद्धिस्तु, पञ्चमा मयति ह्यातव्या ॥५॥

सत्तुान्छुरवध , दशने केउले चावरणे ।

एव तु नवविगप्य, ह्यातय दर्शनावरणम् ॥६॥

अवयवार्थ - हे इन्द्रभूति ! (निद्रा) सुप्त पूर्वक सोना
(तद्वत्) से ही (पयला) बड़े बड़े ऊँघना (य) और
(निद्रानिद्रा) रूख गहरा नींद (य) थार (पयलपयला)
चलते चलते ऊँघना (ततो अ) और इसके बाद (पचमा)
पाचवीं (धाणगिद्धा उ) स्त्यानगृद्धि (होई) है, एसा
(नायव्वा) जागा चाहिए (चक्रुमचक्वत् ओद्धिस्तु)
चत्तु, अनत्तु, अवधि क (दसण) दर्शन में (य , और
(केवले) केवल म (आवरण) आवरण (एव तु) इस प्रकार
(नवविगप्य ना भेदवाला (दसणावरण) दशावरणाय
वम (नायव्व) जानना चाहिए ।

भावार्थ हे गौतम ! अब दर्शनावरणीय कर्म के भेद
बतलाते ह, सो सुने। (१) अपने आप ही नियत समय पर
निद्रा च युक्त होता (२) बड़े बड़े, ऊँघना अर्थात् नींद लेना
(३) नियत समय पर भा कठिनता से जागना (४)
चलते फिरत ऊँघना और (५) पाचवीं भेद वह है कि
सोते सोते छ मास नीत जाना । य सब दर्शनावरणीय कर्म
के पत्र हैं । इनके सिवाय चत्तु में दृष्टिमाद्य या अन्वेषण

और असाता वेदनीय कर्म को दिन दिन कारणों से बाध
लता है, तो अथ सुनो, धन सम्पत्ति यदि एहिक सुख प्रति
होने का कारण सातावेदनीय का बंधन है । यह साता वेद
नीय बंधन इस प्रकार बंधता है -दा इन्द्रियबाल लट
। गण्डारे आदि, तीन इन्द्रियबाल मन्थर, चीटियाँ जू
आदि चार इन्द्रियबाले मन्थरी मन्थर, भोरे आदि, पाँच
इन्द्रियबाले हृषी घोरे बैन, ऊँट गाय बकरी आदि तथा
बनस्पति स्थित जव और पृथ्वी, पानी, आग, वायु इन आका
श किसी प्रकार स कष्ट आर शाक नदी पहुँचाने से एव इत
को सुरागे तथा अधुपात कराने से लात घूमा आदि से
न पीटने से परितारना न देने से, इनका विनाश न करो से,
सातावेदनाय का बंध होता है ।

शारीरिक और मानसिक जो दुःख होता है, वह असाता
वेदनीय कर्म के उदय के कारणों से होता है । ये कारण या
हैं । प्रण, भूत, जीव, और सत्त्व इन चारों ही प्रकार के
जावों को दुःख देने से विप्र उत्पन्न कराने से सुराग से
अधुपात कराने से, पीटने से, परितारण व कष्ट उत्पन्न कराने
से असाता वेदनीय का बंध होता है ।

मूल - मोहयिज्ज पि दुविह, दसणे चरणे तथा ।

दसणे तिबिड वुत्त, चरणे दुविह भवे ॥८॥

छाया - मोहनीयमपि द्विविध, दशा चरण तथा ।

दशा द्विविधसुत, चरण द्विविध भवत् ॥८॥

अचयार्थ - हे इन्द्रभूत ! (मोहनिज्ज पि) मोहनाय
कम भा (दुविह) दो प्रकार का है । (मण) मशन मोह
नीय (तहा) तथा (चरण) चारित्र मोहनाय । अब (दक्षणे)
दर्शन मोहनाय कम (निविह) तीन प्रकार का (युत) कहा
गया है । और (चरण) चारित्र मोहनाय (दुविह) दो प्रकार
का (मणे) जाता है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! मोहनाय कर्म जो जव बाध लता
है उसको अपने आत्मीय गुणा का भान नहीं रहता है ।
जैस मदिना पान करत बाल को कुछ भान नहीं रहता ।
उसा तरह मोहनाय कर्म के उदय रूप में आव को शुद्ध
भेदा और क्रिया का तरफ भान नहा रहता है । यह कम
दो प्रकार का कहा गया है । एक दर्शन मोहनाय दूसरा
चारित्र मोहनाय । दर्शन मोहनीय ३ तान प्रकार और चारित्र
मोहनीय के दो प्रकार होत हैं ।

मूलः सम्भत्त चैव मिच्छत्त, सम्मामिच्छत्तमेव य ।

एयाओ तिएण पयडीओ, मोहणिज्जस्स दसणे ॥ ६ ॥

छायाः सम्यक्त्व चैव मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्वमेव च ।

एतास्तिस्त्र प्रकृतय मोहनीयस्य दर्शने ॥ ६ ॥

अचयार्थ - हे इन्द्रभूते, (मोहणिज्जस्स) मोहनाय
सबध क (दक्षणे) दर्शन म अर्थात् दर्शन मोहनीय में
(एयाओ) ये (तिएणी) तीन प्रकार की (पयडीओ)
प्रकृतियाँ हैं (सम्भत्त) सम्यक्त्व मोहनीय (मिच्छत्त)

परके (घालषवेद) मोलह प्रकार का है । (घ) और (नौकषायज) इत्यादि से उत्पन्न होने वाला जो (कर्म) कम है वह (अलषवेद) सात प्रकार का (वा) अथवा (त्रिवेद) भी प्रकार का माना गया है ।

भाषार्थ हे गौतम ! ऋषादि से उत्पन्न होनेवाले कर्म के मोलह भेद है । अज्ञानापूर्वक श्राद्ध, मान, माया, लाभ, जो अज्ञानापूर्वक, प्रत्यात्पानो और अज्ञान के चार भेदों के साथ इसके मोलह भेद हो जाते हैं । और नौकषाय के उत्पन्न होने वाले कम के साथ अथवा ना भेद कहे गये हैं । वे शौह । तस्य रति, अरति, भय शाक, तुगुणा, प्रार, षड्यो सात भेद होते हैं अथवा षड्यो उत्तर भेद (छांदि, पुरुषवेद, नपुंसकषड्य) होने से मोभेद हो जाते हैं । अत्यन्त श्रेष्ठ मान, माया और लाभ करने से तथा मिथ्या धर्मों में रत रहने से और अज्ञानी रहने से मोहनीय कर्म का षड्य होता है ।

हे गौतम ! अथ हम आयुष्यकर्म का इच्छा से तलावगे ।

मूल-नेरइयतिरिक्खाठ, मगुस्ताठ तहेव य ।

देवाठअ चठत्थ तु, आउकम्म चठत्विइ ॥१२

छाया-नेरयिकतियंगायु मनुप्यायुस्तथैव च ।

देवायुधतुर्थे तु आयु कम चतुर्थिधम् ॥१२॥

अथवा-हे इन्द्रभूति ! (आउकम्म) आयुष्य कर्म (चठत्विइ) चार प्रकार का है (नेरइयतिरिक्खाठ) नर

कायुष्य तिर्यचायुष्य (तद्देव) उस त्री (मणुस्साठ) मनुष्यायुष्य (य) और (चउत्थ तु) गैथा (दवाउअ) देवायुष्य है ।

भावाथ - हे गौतम ! आत्मी के नियत समय तत्र एक ही शरीर में रोक रखने वाले कर्म का आयुष्य कर्म कहते हैं । यह आयुष्य कम चार प्रकार का है । (१) नरक योनिमें रखने वाला नरकायुष्य (२) तिर्यच योनि में रखने वाला तिर्यचायुष्य (३) मनुष्य योनि में रखने वाला मनुष्यायुष्य और (४) देव योनि में रखने वाला देवायुष्य कहलाता है ।

हे गौतम ! अब हम इन चारों जगह का आयुष्य किन किन कारणों से बँधता है उसे कहते हैं । महारम्भ करना, अत्यन्त लाजसा रखना, पचेन्द्रिय जीवों का बध करना तथा माँव खाना, आदि ऐसे कार्यों से नरकायुष्य का बध होता है । कपट करना, कपट पूर्ण फिर कपट करना, असत्य भाषण करना, तौलने की वस्तुओं में और नापने का वस्तुओं में कमावेश लेना देना आदि ऐसे कार्यों के करने से तिर्यचायुष्य का बध होता है । निष्कपट व्यवहार करना, नम्रभावा होना, सब जावों पर दया भाव रखना, तथा ईर्ष्या नहीं करना आदि कार्यों से मनुष्यायुष्य का बध होता है । सराग समय व महारथ धर्म के पालने, अज्ञानयुक्त तपस्या करने, बिना इच्छा से भ्रूष, प्यास आदि सहन करने तथा शीघ्र व्रत पालने से देवायुष्य का बध होता है ।

हे गौतम ! अब हम आगे नाम कर्म का स्वरूप कहते हैं, सो सुनो —

गूलाः नामकम्भ तु द्विविद्, सुह असुह च आहिय ।

सुदस्त तु बहु भेदा, एमेव असुदस्त वि ॥१३॥

छाया नामकमे तु द्विविध शुभमशुभ चाख्यातम् ।

शुभस्य तु षट्षो भेदा एषमेवाशुभस ॥५५॥ ॥१३॥

अन्वयार्थ - दे दृग्भूति । (नामकम्भ तु) नाम कम
हो (द्विविद्) दो प्रकार का (आहिय) कहा गया है ।
(सुह) शुभ नाम कर्म (च) और (असुह) अशुभ नाम
कर्म जिसमें (सुदस्त) शुभ नाम कर्म के (तु) ता (बहु)
बहुत (भेदा) भेद हैं । (असुदस्त एव) अशुभ नाम कम
क भा (एमेव) इसी प्रकार अत्र भेद माने गये हैं ।

आयाधा-दे गौतम । जिस के द्वारा शरीर सुन्दरकार
हो अथवा का असुन्दरकार होने में कारण भूल हो वहा नाम
कर्म है । यह नाम कम दो प्रकार का माना गया है । उन में
से एक शुभ नाम कर्म और दूसरा अशुभ नाम कम है ।
मनुष्य शरीर देव शरीर सुन्दर अथवा अशुभ गार वणादि,
वचन में मधुरता का होना, लाक्षप्रिय, यशस्वा तीर्षकर आदि
आदि का होना, ये सब शुभ नाम कम के फल हैं । नारकाय,
तिर्थच का शरार धरन करना, कृष्णी, पानी, वनस्पति आदि
में जन्म लेना बहान अगपाणों का पाना, बुरूप और अय
शस्त्री होना । ये सब अशुभ नाम कम के फल हैं ।

दे गौतम । शुभ अशुभ नाम कम कैसे वैभता है सो
सुनो मानसिक वाचिक और कायिक कृत्य की सरलता रखने

से और क्रिया के साथ किसी भी प्रकार का वेग विरोध न करने व न रखने से शुभनाम कर्म बँधता है । शुभनाम कर्म क बधन से विपरीत बर्ताव के करने से अशुभ नाम कर्म बँधता है । हे गौतम ! अब हम आगे गोत्र कर्म का स्वरूप उतलावेंगे ।

मूल* गोयकम्म तु दुविह, उच्च नीश्र च आहिश्र ।
उच्च अट्टविह होइ, एव नीश्र वि आहिश्र ॥१४॥

छाया गोत्रकर्म तु द्विविध उच्च नीच चारयातम् ।
उच्चमष्टविध भवति, एव नीचमष्टयातम् ॥१४॥

अ चयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (गोयकम्म) गोत्र कर्म (दुविह) दो प्रकार का (अहिश्र) कहा गया है । (उच्च) उच्च गोत्र कर्म (च) और (नीश्र) नीच गोत्र कर्म (उच्च) उच्च गोत्र कर्म (अट्टविह) अठ प्रकार का (हो) है (नीश्र वि) नीच गोत्र कर्म भी (एव) इसी तरह अठ प्रकार का होता है ऐसा (आहिश्र) कहा गया है ।

भावार्थ -हे गौतम ! उच्च तथा नीच जाति आदि मिलने में जा कारण भूत है उसे गोत्र कर्म कहते हैं । यह गोत्र कर्म ऊँच नाच में बिभक्त होकर अठ प्रकार का होता है । ऊँच जाति और ऊँचे कुल में जन्म लेना, बलवान् होना, सु दरकार होना, तपवान् होना प्रत्येक व्यवहार में अर्थ प्राप्ति का होना, विद्वान् होना, ऐश्वर्यवान् होना ये सब ऊँचे गोत्र के फल हैं । और इन सब बातों के विपरीत जो कुछ है

उसे नाम मात्र उर्म का पलादेश समझो ।

हे गौतम ! यह ऊँच नीच गोत्र कम इष्ट प्रकार बधता है । स्वयं माता व धरा का भिता क वरा का ताका का, रूप का तप का विद्वत्ता का अर गुदभन्ता छे लाभ होन का, धमए १ करने छ ऊँच मात्र कष का सब हाता ह १ और इधके विरराते अभिमान करन रा नाम मात्र का बध होला है । हे गौतम ! अथ अ तराय कम का स्वरूप बताने ह ।

मूल* - दाणे लाभे य भोगे य, उपभोगे वीरिए त्वा ।

पचविद्मतराय, समासेण विद्यादिय ॥१५॥

दायाः दाने लाभ च भागे च उपभोगे धार्ये तथा ।

पञ्चविधम तराय, समासेण व्याख्यातम् ॥१५॥

अर्थार्थः - हे इन्द्रभूते ! (अन्तराय) अ तराय कम (समासेण) सङ्घन य (पचावह) पाँच प्रकार का (विद्या दिय) कहा गया है । (दाणे) दान-तराय (य) और (लाभे) लाभ-तराय (भोगे) भोग-तराय (य) और (उपभोगे) उपभोग-तराय-तहा वैशि ही (वीरिए) वीर-तराय ।

भावार्थ - हे गौतम ! जिस के उदय स इच्छन वस्तु की प्रप्ति में बाधा आवे वह प्रतलय कम है । इस क पाच भद है । दान देने की वस्तु के अद्यमान हात हुए भी, दान दन का अच्छा फन जानते हुए भी, जिसक कारण दान नहीं दिया जा सक वह दाना-तराय है । व्यवहार में वा

भोगने में सब प्रकार का सुविधा होते हुए भी जिसके कारण प्रसन्न हो गये वह स्नाभान्तराय है । खान पान आदि की सामग्री क व्यवस्थित रूप से होने पर भा जिसके कारण खा पी न सके, खा और पी भा लिया तो हजम न किया जा सके, वह भोगांतराय कम है । भोग पर्य्य वे ह, जो एक बार काम में आते हैं । जैसे भोजन, पाना आदि । और जो बार बार काम में आते ह उन्हें उपभोग माना गया है जैसे वस्त्र, आभूषण आदि । अत जिसके उदय से उपभोग का सामग्री सघटित रूप से स्वाधीन होते हुए भा अपने काम म न ली जा सके उसे उपभोगान्तराय कम कहते हैं । और जिसके उदय से युवान और बलवान् होते हुए भी कोई पर्य्य न किया जा सके, वह प्रीर्यांतराय कम का फलादेश है ।

हे गौतम । यह अंतराय कम निम्न प्रकार से बँधता है । दान दते हुए के बीच बाधा डालने से जिसे लाभ होता हो उसे धरुा लगाने से, जा खा पी रहा हो या खाने, पीने का जा समय हुआ हो उस टालनेसे, जा उपभोग का सामग्री को अपने काम में ला रहा हो उसे अंतराय देने से तथा जो सेवा धर्म का पालन कर रहा हो उसके बीच रोड़ा घटकाने से आदि आदि कारणों से वह जाव अंतराय कम बांध जाता है ।

हे गौतम । अब हम आठों कर्मों की पृथक् पृथक् स्थिति कहेंगे सो सुनो ।

मूलः उददीसरिसनामाण, तीसई कोटिकोटीशो ।

उकाशिया ठिई होइ, अतोमुहुत्त जहयिणया ॥१६॥

आवरखिजाण दृष्ट पि, वेयखिजे तदेव य ।

अतराय य कम्ममि, ठिई पेसा विआदिया ॥१७॥

प्रायाः उदधिबटहनासा, प्रशः कोटाकोटय ।

उत्तृष्टा स्थितिभवति, अतमुहुत्ता जघ यका ॥१६॥

आवरखयोह्यारपि वेदनीये तथैष च ।

अ तराये च कर्मणि स्थितिरेया न्याख्याता ॥१७॥

अ यथार्थ -हे इन्द्रभूनि । (दुग्ध पि) दोनों ही

(आवरखिजाण) इनावरणीय व दशनावरणीय कम
 वी (तीसई) तीस (कोटिकोटीशो) कोटाकोटि (उद
 होउरिसनामाण) उजुद के समान हे नाम मिथका ऐसा
 सामरोपम (उकाशिया) ज्यादा से ज्यादा (ठिई) स्थिति
 (हाइ) दे (तदेव) वसे ही (वेयखिजे) वेदनाय (य)
 और (अ तराय) अतराय (कम्ममि) काम के नियम
 में भी (एसा) इतनी ही उत्तृष्टी स्थिति है और (जह
 ाणया) कम से कम चारों कमों का (अ तोमुहुत्त)
 अ तरमुहुत्त (ठिई) स्थिति (विआदिया) कहा है ।

भाषाथ -हे मातम । इनावरणीय दशनावरणीय
 वेदनीय और अतराय से चारों कम अधिक से अधिक
 रहे तो तीस कोटाकोटी (तीस प्राय को तीस कोट से गुणा

करने पर जो गुणनफल आव उतने) सागरोपम की इनकी स्थिति मानी गयी है । और कम मे कम रहें तो अ तर मुहुत्त का इन का स्थिति होती है ।

मूलः उदहीसरिसनामाण, सत्तरिं कोडिकोडीश्रो ।

मोहणिज्जस्स उक्कोसा,अ तोमुहुत्त जहरिणया ॥१८॥

तेषीस सागरोपम, उक्कोसेण विआहिया ।

ठिई उ आउकम्मस्स, अन्तोमुहुत्त जहरिणया ॥१९॥

उदहीसरिसनामाण, वीसई कोडिकोडीश्रो ।

नामगोत्ताण उक्कोसा,अट्ट मुहुत्ता जहरिणया ॥२०॥

छाया उदधिसट्ठनाम्ना सप्तति कोटाकोटय ।

मोहनीयस्योत्कृष्टा, अन्तमुहुत्ता जघन्यका ॥२१॥

अयस्सिंशत् सागरोपमा, उत्कर्षेण व्याख्याता ।

स्थितिस्तु आयु कमण, अन्तमुहुत्ता जघन्यका १९

उदधिसट्ठनाम्ना, पिंशतिः कोटाकोटय ।

नामगोत्रयोत्कृष्टा अष्टमुहुत्ता जघन्यका ॥२०॥

अवयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (मोहणिज्जस्स) मोहनाय कम

की (उक्कोसा) उत्कृष्ट अथात् अधिक से अधिक स्थिति

(सत्तरिं) सत्तर (कोडिकोडीश्रो) कोटा कोटि (उदहीस

रिसनामाण) सागरोपम है । और (जहरिणया) जघन्य

(अन्तोमुहुत्त) अन्तमुहुत्त और (आउकम्मस्स) आयुर्ध्वं

धम की (उक्तात्प) उत्कृष्ट स्थिति (तृतीय सागरोपम)
 तृतीय सागरोपम की है । और (जहतिणया) जघन्य
 (अन्तमुद्गता) अन्तरमुद्गता की और इसी प्रकार (नामगो-
 नाण) नाम धम और मात्र धर्म की (उक्तात्प) उत्कृष्ट
 स्थिति (वीसई) वीथ (कोटिवोदीथो) काटाकोटि (उद-
 हीधरिषामाण) सागरापम की है । और (जहतिणया)
 जघन्य (अठ) अठ (मुद्गता) मुद्गता की (ठिई) स्थिति
 (विश्वद्विया) कही है ।

भाषार्थः—हे गौतम । माहनाय धम की उपाग से
 उपाग स्थित शशर जोडाफास सागरापम की है । और
 जघन्य (धम स धम) स्थिति अन्तर मुद्गता की है । आयुध
 धम की उत्कृष्ट स्थिति तृतीय सागरापम की और जघन्य
 अन्तर मुद्गता की है । नाम धम एवं गोत्र धम की उत्कृष्ट
 स्थिति अठ जोडाफोस सागरोपम की है और जघन्य अठ
 मुद्गता की कही है ।

मूल.—एगया देवलोएमु, नरपसु वि एगया ।

एगया आसु काय, अहाकम्मोई गच्छइ ॥२१॥

अया एकदा देवलोनेपु नरकेप्यप्येकदा ।

एकदा आसुर काय, यथा कमाभिर्गच्छति ॥२२॥

भाषार्थ हे इन्द्रमूर्ति । (अहाकम्महि) जैध धम
 किय है, उन के अनुसार आत्म (एगया) कमी तो (देव

लाएषु) देवलोक में (एगया) कभी (नरएषु वि) नरक में (एगया) कभी (आसुर) भवनपति आदि असुर की (काय) काय में (गच्छइ) जाता है ।

भावार्थ हे गाँतम ! आत्मा जब शुभ कर्म उत्पन्न करता है तो वह देवलोक में जाकर उत्पन्न होता है । यदि वह आत्मा अशुभ कर्म उत्पन्न करता है तो नरक में जाकर घोर यतना सहता है । और कभी अज्ञान पूर्वक बिना इच्छा से क्रिया कारण करता है तो वह भवनपात आदि देवों में जाकर उत्पन्न होता है । इस से सिद्ध हुआ कि यह आत्मा जैसा कर्म करता है वैसा स्थान पाता है ।

मूल -तेणे जहा सधिमुहे गहीर,

सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ।

एव पया पेच्च इह च लोए;

कडाण कम्माण न मुख अत्थि ॥ २२ ॥

छ या-स्तेनो यथा सधिमुखे गृहीत

स्वकमणा क्रियते पापकारी ।

एव प्रजा प्रेत्य इह च लोके,

वृत्ताना कर्मणा न मोक्षोऽस्ति ॥ २२ ॥

अ-धयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (जहा) जैसे (पावकारी) पाप करने वाला (तणे) चोर (सधिमुहे) खात के मुँह पर (गहाए) पकड़ा जा कर (सकम्मुणा) अपने किये हुए

कर्मों के द्वारा ही (विघट्ट) छूटा जाता है, दुःख उठता है, (एव) इसी प्रकार (यथा) प्रथा अर्थात् लोक (पेशा) परलोक (च) और (इहलोके) इस लोक में किये हुए कर्मों के द्वारा दुःख उठता है । क्योंकि (कदाचि) किये हुए (कर्माणा) कर्मों को भोगे बिना (मुक्ता) मुक्तकारा (न) नहीं (अस्ति) होता ।

भाषाया - ह गौतम ! कर्म कैसे हैं ? पैर काई अर्थात् चारों चार खाल के मुँह पर पकड़ा जाता है, और अपने पृष्ठों के द्वारा फट उठता है अर्थात् प्रच्छात कर बैठता है । वैसे ही यह आत्मा अपने किये हुए कर्मों के द्वारा इस लोक और परलोक में महान् दुःख उठाना है । क्योंकि किये हुए कर्मों को भोगे बिना मुक्तकारा नहीं मिलता है । १

(१) किसी समय वह एक चोर चोरी करने नारहे धे । उन में एक सुतार भी शामिल हो गया । वे चोर एक नगर में एक धनान्ध सेठ के यहाँ पहुँच । यहाँ उन्होंने सैध लगाई । सैध लगाते लगाते दीवाल में काठ का एक पटिया लिये पक्षा तब वे चोर साथ के उस सुतार से बोले कि अब तुम्हारी चोरी है पटिया काटना तुम्हारा काम है । अब सुतार अपने शस्त्रों द्वारा काठ के पटिये को काटन लगा । अपनी कारीगरी दिवाने के लिए सैध के छेदों में चारों ओर लीये लीये कगुरे उसने बना दिये । फिर वह सुर चोरी करने के लिए अन्त हुआ । ज्योंही उसने अदर पैर रखा ल्योंही महान् मालिक ने उसका पैर पकड़ लिया । सुतार चिन्नाया, दौड़ो दौड़ो और बोला मफा न मा लि-क-मकान मा-

मूलः ससारमावरणं परस्मि श्रुत्वा,
साधारणं ज च करेइ कम्म ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले,
न वधवा वधयय उर्विति ॥ २३ ॥

छाया -ससारमापन्न परस्यार्थाय
साधारणं यश्च कराति कम्म ।
कर्माणस्ते तस्य तु यत्रकाले,
न चाग्धवा जाघयत्तमुपयान्ति ॥२३॥

अ-वयाध हे इ-इभूति । (ससारमावरण) ससार
के प्रपञ्च में फसा हुआ आत्मा (परस्मि) दूसरों के (श्रुत्वा)
लिए (च) तथा (साधारण) हर और पर के लिए (ज)
जो (कम्म) कर्म (करेइ) करता है । (तस्स उ) उम
(कम्मस्स) कर्म के (वेयकाले) भोगत समय (ते) वे

लि—इ ! मेरे पाँच पुत्राग्रो ! यह सुनते ही चोर भाग्ये, और
लगे मर पड़ने कर खाचने । सुतार बेचारा यह ही कमेले
में पड़ गया । भीतर और बाहर दोनों तरफ में चोरों की
सींचातानी होने लगी । बस फिर क्या था ? जैसे धीन
उसने घोये फसल भी वैसी ही उसे काटना पड़ी । उसके
निपू बनाये हुए सैध के पैसे पैसे कगुरों ही ने उसके पाणों
का घन्त कर दिया । आत्मा के लिए भी यही बात लागू
होती है । यह भी अपने ही अशुभ कर्मों के द्वारा लोक और
परलोक में महान् बर्षों के कष्टकारों में पड़ता है ।

(बधवा) कौटुम्बिक जन (बधवय) बन्धुवयन को (न) नहीं (उचिति) प्राप्त होते हैं ।

मायाध - हे गौतम ! समारी आत्मा ने दूगरो के तथा अपने लिए जो दुष्ट कर्म उपार्जन किये हैं वे कर्म जब उनके फल स्वर्ग में आयेगे उस समय जिन बन्धु वा धर्मों और मित्रों के लिए तथा स्वतः के लिए वे दुष्कर्म किये थे वे क ई भी आकर पाप के फल भोगने में सम्मिलित नहीं होंगे ।

मूल - न तस्य दुष्कर्म विभयति नाइश्रो,

न मित्रवगान सुया न बन्धवा ।

इवके सय पञ्चगुहोइ दुक्ख,

कत्तारमेव ऋणुजाइ कम्म ॥ २४ ॥

छाया - न तस्य दुःख विभयते घातया,

न मित्रवगा न सुता न वा धवा ।

एव सय प्रत्युभवति दुःख,

कत्तारमेयातुयाति कम्म ॥ २४ ॥

अ घयार्थः हे इन्द्रभूते ! (तस्य) उस पाप कर्म करन वाले के (दुक्ख) दुःख की (नाइश्रो) स्वजन वगैरह भी (न , नहीं (विभयति) विभाजित कर सकते हैं आर (न) न (मित्रवग) मित्रवग (न) न (सुया) पुत्र वग (न) न (बधवा) बन्धुजन, कर्म के फल में भाग ले सकते हैं । (इव) वही अकेला (दुक्ख) दुःख को (पञ्चगुह) भोगता

है। क्योंकि (कम्म) कर्म (कर्तारमेव) करने वाले ही के साथ (अणुजाइ) जाता है।

भाषाध - हे गौतम ! किये हुए कर्मों का जब उदय होता है उस समय ज्ञाति जन, मित्र लोग, पुत्रवर्ग, बन्धु जन आदि कोई भी उस में हिस्सा नहीं बैठ सकते हैं। जिस आत्माने कर्म किये हैं वही आत्मा अकेला उसका फल भोगता है। यही से मरने पर किये हुए कर्म करने वाले के साथ ही जाते हैं।

मूल - विच्चा दुपय च चउप्पय च,

खिच गिह धणुधत्त च सव्व ।

सकम्मवीथो अवसो पयाइ,

पर भव सुन्दर पापक वा ॥ २५ ॥

छाया - त्यक्त्वा द्विपद चतुष्पद च,

क्षेत्र गृह धनघा य च सर्वम् ।

सकर्मद्वितीयोऽप्यश प्रयाति,

पर भव सुन्दर पापक वा ॥ २५ ॥

अ प्रयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (सकम्मवीथो) आत्मा का दूसरा साथी उसका अपना भिया हुआ कर्म ही है। इसी से (अवसो) परवश होता हुआ यह जीव (सव्व) सब (दुपय) स्त्री, पुत्र दास, दासी आदि (च) और (चउप्पय) हाथी घोड़े आदि (च) और (खिच) खेत नहर

(गिट) घा (धण) ह्यमा, पमा, तिष्ठा वगैरह (घन)
 अन्न वगैरह को (विडवा) छोड़ कर (सुन्दर) स्वगदि
 उत्तम (वा) अववा (पदग) नरकादि अघम एते (पर
 भव) परमद को (पयाइ) जाता है ।

भाषायाः-इ गौतम ! स्वर्गत कर्मों के आर्धन होकर
 यह अरमा छा, पुत्र हाथा, पाद क्षेत्र पर, खाया, पैसा,
 धान्य, चॉन सुवर्ण आदि सभी वा मृत्यु की गाद में छोड़
 कर जब भी शुभाशुभ कर्म इस के द्वारा किये होते हैं उन के
 अनुसार, स्वर्ग तथा नरक में जाकर उत्पन्न होता है ।

मूल -जहा य अहंप्रभवो यलाका,

अह वागपप्रभव जहा य ।

एमेव मोहाययण सु तरहा,

मोह च लगडाययण ययति ॥२६॥

छाया यथा चाण्डप्रभवो यलाका,

अण्डे यलाकाप्रभव यथा च ।

एयमेव मोहायतन अलु लृणा,

मोह च लृणायतन ययति ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ -इ इ इभूति ! (जहा य) जैश (अन्प
 भवा) अण्डा से बयुली उत्पन्न हुद (य) यार (जहा) पैश
 (यलागपप्रभव) बूनी स अडा उत्पन्न हुआ (एमेव)इया
 तरह (ए) निधय कर के (मोहाययण) मोहका रवा

(मोह) मोह है, ऐसा (वयति) ज्ञानी जन कहते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! जैसे अण्डे से बगुनी (मादा-बगुला) उत्पन्न होती है और बगुली से अण्डा पैदा होता है । इसी तरह से मोह कम से तृष्णा उत्पन्न होती है और तृष्णा से मोह उत्पन्न होता है । हे गौतम ! ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं ।

मूलः-रागो य दोषो वि य कम्मधीय,

कम्म च मोहप्पभव वयति ।

कम्म ज जाईमरणस्स मूल,

दुक्ख च जाईमरण वयति ॥ २७ ॥

छाया रागश्च द्वेषोऽपि च कर्मधीज,

कर्म च मोहप्रभव उदन्ति ।

कर्म च जातिमरणयोर्मूल,

दु ख च जातिमरण उदन्ति ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ हे इन्द्रभूति ! (रागो) राग (य) और (दोषो वि य) दोष ये दोनों (कम्म धीय) कर्म उत्पन्न करने में कारण भूत है (च) और (कम्म) कम (मोहप्प भव) मोह से उत्पन्न होते हैं । ऐसा (वयति) ज्ञानी जन कहते हैं । (च) और (जाईमरणस्स) जन्म मरण का (मूल) मूल कारण (कम्म) कर्म है (च) और (जाईमरण) जन्म मरण ही (दुक्ख , दु ख है, ऐसा (वयति) ज्ञानी जन कहते हैं ।

माध्याह्निक - इ गौतम । व राग और द्वेष कम से उत्पन्न होते हैं और कम मोह भ वैदा होते हैं । यही कम जन्म मरण का मूल कारण है और जन्म मरण ही दुःख है, एषा शान्ति जन कर्तव्य है । साधारण यह है कि राग द्वेष और कम में परस्पर द्विमुख काय कारण भव है । जैसे भोजन, वृक्ष का कारण और काय दानों है तथा वृक्ष भी भोजन का कार्य कारण है, उन्नी प्रकार कम राग द्वेष का काय भी है और कारण भी तथा राग द्वेष कम का काय भी है और कारण भी है ।

मूलः दुःखस्य ह्य जस्य न होइ मोहो,

मोहो ह्यो जस्य न होइ तदहा ।

तदहा ह्यो जस्य न होइ लोहो,

लोहो ह्यो जस्य न किंचिदाह ॥२८॥

साया दुःख इत यस्य न भवति मोह ,

मोहो इतो यस्य न भवति तृष्णा ।

तृष्णा इता यस्य न भवति लोभ ,

लोभो इतो यस्य न किंचित् ॥ २८ ॥

अथयार्थ (जस्य) जिसे (दुःख) दुःख को (ह्य) नाश कर दिया है उसे (मोहो) मोह (न) नहीं (होइ) होता है और (जस्य) जिसे (मोहो) मोह (ह्यो) नष्ट कर दिया है उसे (तदहा) तृष्णा (न) नहीं (होइ) होती । (जस्य) जिसे (तदहा) तृष्णा (ह्यो)

नष्ट करदी उसे (लोहो) लोभ (१) नहीं (होइ) होता,
और (जसस) जिगने (लोदो) लोभ (हथो) नष्ट कर
दिया उमरे (किंचणाइ) ममत्व (न) नहीं, रहता ।

भावाय - हे गौतम । जिगने दु रा रूपा भयकर
सागर का पार पा लिया है वह मोह के बंधन में नहीं
पड़ता । जिगने मोह का समूल उन्मूलन कर दिया है उसे
तृष्णा नहीं सता सकती । जिसने तृष्णा का त्याग कर दिया
है उसमें लोभ का वासना वायग नहीं रह सकता । जो
पाप के बाप लोभ से मुक्त हो गया, उसके सभा कुछ मानों
नष्ट हो गया । निर्लोभता के कारण वह अपने को अर्चिन
समझने लगता है ।

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥



निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(तृतीय अध्याय)

धर्म-स्वरूप वर्णन

॥ श्रीमद्भागवतपुराण ॥

मूल - १३ भाग्यं तु पदाणाम्' आणुपुत्री कयाऽऽह ।

जीवा सोहिमणुपत्ता, आययति मणुस्सय ॥१॥

छाया कमणा तु प्रदाय्या, आनुपूर्व्या रदापितु ।

जीवा शुद्धिमनुप्राप्ता, आददते मनुष्यताम् ॥२॥

अ यथाथ - हे इन्द्रभूमि ! (आणुपुत्री) अनुक्रम से (कर्माणु) कर्मों की (पदाणाम्)-यूनता होने पर (कया इ उ) कभी (जीवा) जीव (सोहिमणुपत्ता) शुद्धता प्राप्त कर (मणुस्सय) मनुष्यत्व को (आययति) प्राप्त प्राप्त है ।

भावार्थ - हे गौतम ! जब यह जीव अनेक जन्मों में दुःख सहन करता हुआ धीरे धीरे मनुष्य जन्म के बाधक कर्मों को मट्ट कर लेता है । तब वही कर्मों के भार उ हलका होकर मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है ।

मूल - वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे नरा गिदिसुब्बया ।

उर्विति माणुस जोरिण, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥२॥

छायाः विमात्राभि शिज्ञाभिः, ये नरा गृहि सुवृता ।

उपयाति मानुष्य योनि, कर्मसत्या हि प्राणिन ॥२॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूत ! (जे) जो (१रा) मनुष्य (वेमायाहिं) विविध प्रकार की (मियगाहिं) शिक्तियों के साथ (गिहि सुव्यया) गृहस्थाश्रम में गुप्तता अणुप्रता का आचरण करने वाले हों वे मनुष्य फिर (माणुष) मनुष्य (जोरिण) यानि का (उर्विति) प्राप्त होते हैं । (हु) क्योंकि (पाणिणो) प्राणी (कम्मसच्चा) सत्य कर्म करने वाले हैं, अर्थात् जैसे कर्म बढ़ करता है वगैरे ही उसका गति होती है ।

भावार्थ - हे मातम ! जो नाना प्रकार कल्याण धर्म के धारण करता है प्रत्येक के साथ निष्पट व्यवहार करता है, वही मनुष्य पुन मनुष्य भव को प्राप्त हो सकता है । क्योंकि जैसे कर्म बढ़ करता है, उसी के अनुसार गति मिलती है ।

मूलः - बाला किड्डा य मदा य बला पत्ता य हायणी ।

पवच्चा पभारा य, मुम्भुदी सायणी तथा ॥३॥

छाया बाला कीडा च मदा च, बला प्रज्ञा च हायणी ।

प्रपञ्च। पारभारा च मुम्भुदी शायिता तथा ॥३॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! मनुष्य का दश अवस्थाएँ हैं । प्रथम (बाला) बाल्यावस्था (य) और दूसरी

(त्रिंशत्) व ब्रह्मवस्था (भद्र) तीर्थी म-रावस्था (बला)
 धार्मी व-रावस्था (य) आर (पञ्चा) पौंचमी प्रशावस्था
 छट्ठी (द्वायणी) द्वायनी अवस्था तथा सप्तमी (पंचमा)
 प्रभावावस्था (य) और आठवीं (प-भारा) जामाणावस्था ।
 नौवीं (मुमुक्षी) मुमुक्षी अवस्था (तदा , तथा मनुष्य की
 दशवीं अवस्था (सायणी) शायनी अवस्था होती है ।

भावार्थ -इ भीतम । जिस समय मनुष्य की जितना
 आयु हो उतना आयु का दश भागों में बाँटने से दश अव-
 स्थाएँ होती हैं । जैसे सौ वर्ष का आयु हो तो दश वर्षों की
 एक अवस्था, यों दश दश वर्षों का दश अवस्थाएँ हैं । प्रथम
 बाल्यावस्था है कि जिस में छाया, पना, कमाना रूप अदि
 कुछ कुछ का प्रायः भान नहीं रहता है । दश वर्ष से बीस
 वर्ष तक चलने वृद्धने की प्रयः भुन रहता है इसलिये
 दूसरी अवस्था का नाम क्रीडावस्था है । बीस वर्ष से तीस
 वर्ष तक अपने गृह म जा काम भागों की सामग्री जुटा हुआ
 है उसी को भोगत रहना और नवान प्रथ सम्पादन
 परन में प्रायः बुद्धि की म दता रहती है, इसी व तीर्थी
 म-रावस्था है । तीस से चालीस वर्ष पयत यदि यह स्वस्थ रहे
 तो उस हासत में वह कुछ बली दिखलाई देता है, इसी से
 चौथा बलावस्था कहा गया है । च तीर्थ से पचास वर्ष तक
 इच्छित अथ का सम्पादन करने के लिये तथा कुटुम्ब वृद्धि
 के लिए गृह बुद्धि का प्रयोग करता है, इससे पौंचवीं प्रज्ञा-
 वस्था है । ५ से ६ वर्ष तक जिरामें हा द्रय अन्य विषय

प्रदण करने में कुछ हीनता आ जाती है इसी लिए छठी हायना
 अवस्था है । साठ से सत्तर वय तक बार बार कफ निवृत्तन,
 धूसने और खांसने का प्रवच बढ़ जाता है । इसी से सातवीं
 प्रपंचावस्था है । शरीर पर सखवट पड़ जत है और शरीर
 भी कुछ झुक जाता है इसी से अस्ती वय तक की
 अवस्था को प्रथम अवस्था कहते हैं । नौवीं अस्ती से
 नव वर्ष तक मुम्मुखी अवस्था में जाक जरा रूप राक्षसी से
 पूर्ण रूप से घिर जाता है । या तो इस अवस्था में परलोक
 वाधी घन बैठता है और यदि जावित रहा तो एक मृतक के
 समान ही है । नव से सो वय तक प्रायः दिन रात सोते रहता
 ही अच्छे लगता है । इसलिए दशवीं शायता अवस्था कही
 जाता है ।

मूलः माणुस्स विग्गह लद्घु, सुई घम्मस्स दुल्लहा ।

ज सोच्चा पड्विज्जति, तव सतिमहिंसय ॥४॥

छायः मानुष्य विग्रह लब्ध्या श्रुति धर्मस्य दुर्लभा ।

य श्रुत्या प्रतिपद्यते, तप क्षान्तिमहिंस्रताम् ॥४॥

अथयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (माणुस्स) मनुष्य क
 (विग्रह) शरीर को (लद्घु) प्राप्त कर (घम्मस्स) धर्म
 का (सुई) श्रवण करना (दुल्लहा) दुर्लभ है । (ज)
 जिसको (सोच्चा) सुनने से (तव) तप करने की (सति
 महिसय) तथा क्षमा और अहिंसा के पालन करने की
 इच्छा उत्पन्न होती है ।

भाषार्थ -दे गौतम । दुर्लभ म त्व दद को वा भा लिया
ता भा धर्मिक त्व वा धरण करना मदान् दुर्लभ ह । त्रिष
के गुण व त्त स्र सुभा, अहिता आदि करने की प्रवृत्त
इच्छा जाग उठती ह ।

मूलः धर्मो मगलमुद्दिष्ट, अहिंसा सत्रमो तमो ।

दधा धि त नमसति, जस्त धम्मे सया मणो ॥५॥

छाया धर्मो मद्रतमुत्पृष्ट अहिंसा सयमस्तप ।

देवा अपि त नमस्यति त, यस्य धर्मे सदा मन ॥५॥

अ यथार्थ -द इन्द्रभूति । (अहिंसा) जीव दया
(सयम) दाना और (तत्रा) तत्र ह्य (धर्मो) धर्म
(उन्नेवद्) सबसे अधिक (मगल) मगल मय है । इन
प्रकार के (धम्मे) धर्म में (जस्त) त्रिगुण (सया) हमेशा
(मणो) मन ह, (त) उद्यत् (दधा नि) देवता भा (नमसति)
नमस्कर करत है ।

भाषार्थ -दे गौतम । धिनि-मात्र भा त्रिष ने हिता
नही है, ऐसी अहिंसा, सयम और मन यथा काया के अनुभ
योगों का प तर्क तथा पूर्वकृत पापों का नाश करने में अत्र
एर ऐसा त्व, ये ही जगत में प्रधान और मगल मय धर्म के
अंग हैं । इस एक मात्र इसा धर्म की इक्षयगम करने वाला
मानव देवों से भी उदैव पूजेत होता है नो फिर मनुष्यों
द्वारा यह पूज्य दृष्टे से देखा जाय इतने का अब ही क्या है ?

मूलः-मूलात् खघप्पभवो दुमस्स,
 खघाट पच्छा समुर्विति साहा ।
 साहप्पसाहा विरुहति पत्ता,
 तथो से पुप्फ च फल रसो अ ॥६॥

छाया -मूलात्स्कन्धप्रभवो दुमस्य,
 स्कन्धात् पश्चात् समुपयान्ति शाखा ।
 शाखाप्रशाखाभ्यो विरोहति पत्राणि,
 ततस्तस्य पुष्प च फल रसश्च ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ -हे इन्द्रभूति । (दुमस्स) वृक्ष के (मूलात्) मूल से (खघप्पभवो) स्कन्ध अर्थात् "पीठ" पैदा होता है (पच्छा) पश्चात् (खघाट) स्कन्धसे (साहा) शाखा (समुर्विति) उत्पन्न होती है । और (साहप्पसाहा) शाखा प्रतिशाखा से (पत्ता) पत्ते (विरुहति) पैदा होते हैं । (तथो) उसके बाद (से) वह वृक्ष (पुप्फ) फूलदार (च) और (फल) फलदार (अ) और (रसो) रस वाला बनता है ।

भावार्थ:-हे गौतम । वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है । तदन्तर स्कन्ध से शाखा, टहनियाँ और उसके बाद पत्ते उत्पन्न होते हैं । अतः मैं वह वृक्ष फूलदार फलदार व रस वाला होता है ।

मूलः एव धम्मस्स विण्णओ, मूल परमो से मुक्खो ।

जेण किञ्चि सुअ सिग्घ, नीसेस चाभिगच्छहा ॥७॥

दाया एव धर्मस्य विद्यो मूल परमस्तस्य मोक्ष ।

येन कीर्ति श्रुत शीघ्र निश्शेष चाभिगच्छति॥७॥

अचयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (एव) इसी प्रकार (धर्मस्य) धर्म का (परमो) मुख्य (मूल) अर्थ (विणशो) विनय है । फिर उक्त स क्रमश आगे (से) यह (मुक्तो) मुक्ति है । इसलिय पहले विद्य आदरणीय है । (जेण) जिससे यह (किति) कानि को । (च) और (विषय) सम्पूर्ण (शुभ) श्रुत ज्ञान को (सिन्ध) शीघ्र (अभिगच्छद्) प्राप्त करता है ।

भावार्थ - हे गौतम ! जिस प्रकार वृद्ध अपना जब के द्वारा कमबूबक रसवाला होता है । उसी प्रकार धर्म का सब विनय है । विनय के पथात् ही स्वयं शुद्धध्यान, ध्यान तथा आदि उत्तरोत्तर गुणों के साथ रसवान वृद्ध के समान आत्मा मुक्ति स्वी रस को प्राप्त कर लेती है । जब मूल ही नहीं है तो शान्ता पते फूल फल रस वहाँ से हाने । एमे ही जब विनय धर्म रूप मूल ही नहीं हो तो मुक्ति का मिलना महान् कठिन है । हे गौतम ! सबों के लिए विद्य आदरणीय है । विद्य से नीत फैलती है और विनयवान् शीघ्र ही सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान को प्राप्त कर लेता है ।

मूलः अगुसट्ट पि बहुविड,

मिच्छदिद्विया जे नरा अबुद्धिया ।

। बद्धनिकाहयकम्मा,

सुणति धम्मं न परं करेति ॥ ८ ॥

छाया अनुशिष्टमपि बहुविध,

मिथ्यादृष्टयो ये नराः शबुद्धयः ।

बद्धनिवाचितकमारु

शृण्वति धर्मं न परं कुर्वन्ति ॥ ८ ॥

अवयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (बहुविध) अनेक प्रकार से (धम्म) धर्म को (अनुशिष्टमपि) शिक्षित गुरु के द्वारा साधने पर भा (बद्धनिवाचयत्तमा) बंधे ह निवाचित कर्म जिसके ऐसे (अनुद्विया) बुद्धि रहित (मिच्छादिदृष्टिया) मिथ्या दृष्टि (नरा) मनुष्य (ज) वे केवल (धम्म) धर्म को (सुणति) सुनते हैं (परं) परंतु (न) नहीं (करेति) अनुसरण करते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! गृहस्थ धर्म और चरित धर्म को शिक्षित गुरु के द्वारा सुन लेने पर भी बुद्धि रहित मिथ्या दृष्टि मनुष्य केवल उन धर्मों को सुन कर ही रह जाते हैं । उनके अनुसार अपने कर्तव्य को नहीं बना सक्त हैं । क्योंकि उनके प्रगाढ़ निवाचित कर्म का उदय होता है ।

मूल जरा जाव न पीडेइ, वाटी जाव न बड्डुइ ।

जाविंदिया न हायति, ताव धम्मं समाचरे ॥ ९ ॥

छाया जरा यावन्न पीडयति, व्याधिर्यावन्न वर्धते ।

यावदिन्द्रियाणि न क्षीयन्ते, तावद्धर्मं समाचरेत् ॥ ९ ॥

अवयवार्थ - हे इन्द्रभूति ! (जाव) जब तक (जार) वृद्धावस्था (७) नहीं (पीछे) सदाती और (पाव) जब तक (पाहा) व्याधि (७) नहीं (षट्) बढ़ता और (जाविदिया) जब तक इन्द्रियों (न) नहीं (दार्यति) शिथिल हाती (लाव) तब तक (धम्म) धर्म का (समायरे) आचरण कर ले ।

भाषाथ - हे गौतम ! जब तक वृद्धावस्था नहीं सत ती, धम धानक व्याधि की बढ़ती गही होती, निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनने में सहायक भातेन्द्रिय तथा जाव दया पालन करने में सहायक चक्षु आदि इन्द्रियों का शिथिलता नहीं आ घेरती तब तक धम का आचरण बड़े ही हृदता पूर्वक कर लेना चाहिए ।

मूल जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनिअत्तइ ।

अहम्म कुणमाणसस, अफला जति राइओ ॥१०॥

छाया या या मजति रजनी, न सा प्रतिनिघसने ।

अधर्म कुणमाणस्य, अफला यान्ति रात्रय ॥१०॥

अवयवार्थ - हे इन्द्रभूति ! (जा जा) जो जो (रयणी) रात्रि (षट्) जाती है (या) वह रात्रि (न) नहीं (पडिनिअत्तइ) लौटकर आती है । अत (अहम्म) अधर्म (कुणमाणसस) करने वाले का (राइओ) रात्रियों (अफला) निष्फल (अति) जाती है ।

भाषाथ - हे गौतम ! जो जो रात और दिन बीत रहे

हैं वह समय पीछा लौटकर नहीं आ सकता । अतः ऐसे अमूल्य समय में मानव शरीर पारर के भा जो अधम करता है, तो उस अधम करने वाले का समय निष्फल जाता है ।

मूलः-जा जा वच्चट रयणी, न सा पडिनिश्चत्तइ ।

धम्म च कुणमाणस्स, सफला जति राइओ ॥११॥

छया -या या ब्रजति रजनी न सा प्रतिनिवर्त्तते ।

धर्मं च कुर्वाणस्य, सफला यान्ति रात्रय ॥११॥

अन्वयार्थ -हे इ द्रभूति ! (जा जा) जो जो (रयणी) रात्रि (वचइ) निवर्त्तती है (सा) वह (न) नहीं (पडिनिश्चत्तइ) लौटकर आती है । अतः (धम्म च) धर्म (कुणमाणस्स) करने वाले का (राइओ) रात्रियों (सफला) सफल (जति) जाती है ।

भाषार्थ -हे गौतम ! रात और दिन का जो समय आ रहा है । वह पुन लौट कर किसी भा तरह नहीं आ सकता । ऐसा समझ कर जो धार्मिक जावन प्रितात है उनका समय (जावन) सफल है ।

मूल सोही उज्जुभूतस्य, धम्मो सुद्धस्य चिट्ठइ ।

णिव्वाण परम जाइ, धयसिप्पि व्व पावण ॥१२॥

छाया शुद्धिः ऋजुभूतस्य, धम शुद्धस्य तिष्ठति ।

निवाण परम याति, घृतसिफ्त इव पावक ॥१२॥

अवयवार्थ - हे इन्द्रभूति ! (उज्जुम्भभूयस्य) सरल स्वभावी का हृदय (छादी) शुद्ध होना है । उस (हृदय) शुद्ध हृदय वल के वग (धम्मो) धर्म (चिट्टइ । विधरता से रहता है । जिसका वह (परम) प्रधान (गिणारण) मोक्ष का (जाइ) जाता है । (उ) जैष (पाणए) अग्नि में (पयसिरे) घी सीधने पर अग्नि प्राप्त होती है । ऐसे ही अत्मा भी बलवती होती है ।

भाषार्थ - हे मौतम ! स्वभाव को सरल करने से अज्ञान कषायादि से रहित हो कर (शुद्ध) निम्न हो जाता है । उस शुद्धात्मा के धर्म का भी विधरता रहती है । जिस से उसकी अज्ञान जीवन मुक्त हो जाता है । जैसे अग्नि में घी डालने से वह बमक उठती है उसी तरह अत्मा के कषायादिक आश्रय दूर हो जाने से वह भा अपन कषा ज्ञान के गुणों से दीर्घमान हो उठती है ।

मूलः जरामरणवेगेण, बुज्जमाणाण पाण्डिण ।

धम्मो दीरो पट्टा य, गई सरणमुत्तम ॥१३॥

छाया जरामरणवेगेण पाण्डमानानाम् प्राणिताम् ।

धर्मो ह्योप प्रतिष्ठा च, गति शरणमुत्तमम् ॥१३॥

अवयवार्थ - हे इन्द्रभूति ! (जरामरणवेगेण) जरा मृत्यु रूप जल के वेग से (बुज्जमाणाण) दूबते हुए (पाण्डिण) प्राणियों को (धम्मो) धर्म (पट्टा) निश्चल

आधार भूत (गङ्) स्थान (य) और (उत्तम) प्रधान (शरण) शरण रूप (दीवा) द्वीप है ।

भावार्थ -हे गौतम ! जन्म जल, मृत्यु रूप जल क प्रवाह में डूबते हुए प्राणियों को मात्त भी प्राप्ति कराने वाला धर्म ही निखल आधार भूत स्थान और उत्तम शरण रूप एक टापू के समान है ।

मूलः एस धम्मे धुवे णितिए, सासए जिणदेशिम ।

सिद्धा सिज्झति चाणेण,सिद्धिक्खति तद्दामे ॥ १४ ॥

छाया एपो धर्मो धुवो नित्य शाश्वतो जितदेशिन ।

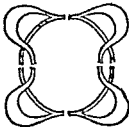
सिद्धा सिद्धयति चानेन,सेत्स्यन्ति तथाऽपरे ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (जणदेशिए) तीर्थकरों के द्वारा कहा हुआ (एष) यह (धम्म धर्म (धुवे) ध्रुव है (णितिए) नित्य है (सासए) शाश्वत है (अणेण) इस धर्म के द्वारा अनन्त जीव भूतकाल में सिद्ध हुए हैं (च) और वर्तमान काल में (सिज्झति) सिद्ध हो रहे हैं (तद्दामे) उसी तरह (अपरे) भविष्यत काल में भी (सिद्धिक्खति) सिद्ध होंगे ।

भावार्थ -हे गौतम ! पूण ज्ञानियों के द्वारा कहा हुआ यह धर्म ध्रुव के समान है । तीन काल में नित्य है । शाश्वत है । इसी धर्म को अज्ञानर कर के अनन्त जीव भूत काल में

कर्मों के बंधन से मुक्त हो कर निरद्वन्द्व अवस्था को प्राप्त हो
 गे । ह । अनन्तमान ज्ञान में हो रहे हैं । और भविष्यक काल
 में भी एही भम का धरन करते हुए अतः जीव मुक्ति को
 प्राप्त करेंगे ।

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥



निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(चौथा अध्याय)

आत्म शुद्धि के उपाय

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूल जह शरणा गम्मति, जे शरणा जा य वेयेणा शरण ।
सारीरमाणसाइ, दुक्खाइं तिरिक्खजोणीए ॥१॥

छाया यथा नरका गच्छति तथे तरका या च वेदना तरके
शारीर मानसादि दुःखानि त्रियग् योनौ ॥ १ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (जह) जैसे (शरणा) नार
कीय जीव (शरण) नरक में (गम्मति) जात ह । (जे)
वे (शरणा) नारकीय जीव (जा) नरक में उत्पन्न हुई ।
(वेयेणा) वेरना को सहन करत ह । उसी तरह (तिरिक्ख
जोणीए) त्रियं च योनियों में जानवाली आत्माएँ भी (सारी
रमाणसाइ) शारीरिक, मानसिक (दुक्खाइ) दुखों को
सहन करती ह ।

भावार्थ - हे मौतम ! जिस प्रकार नरक में जाने

जैसे व अनेक हुए कर्मों के अनुष्ठान नरक में हीने वाली महान्
पन्था को सहन करत हैं उता तरह तिर्यक लोगि में उराम
होन वाली अरामा भा कर्मों के फल रूप में अनेक प्रकार की
शारीरिक और मान गक वन्ताओं को सहन करत हैं ।

मूल.-मागुस्त च अण्डिष, वादिजरा मरणवेयगुपडर ।

देवे य देवलोए, देविद्धि देवसोक्खाइ ॥ २ ॥

छाया मानुष्ये चातित्य व्याधिजरा मरणवेदना प्रचुरम् ।

देवेषु देवलोके देविद्धि देवसोवयाणि ॥ २ ॥

अ-वयाध -दे रद्रभूति ! (म गुस्त) मनुष्य जन्म
(अण्डिष) अनिल दे (च) और वद (वादिजरा मरण
वेयगुपडर) व्याधि, जरा मरण, रूप प्रचुर वेदना से युक्त
है (य) और (देवलोए) देव लोक में (देव) देवराज
(देविद्धि) देव गृह और (देवसोक्खाइ) देवता सम्भा
सुख भा अनेक्य हैं ।

मायाध -दे गौतम ! मनुष्य जन्म अनिल है । साथ
ही जरा मरण आदि व्याधि का प्रचुरता से भर पडा है ।
और पुण्य उपार्जन कर जो स्वर्ग में गये हैं, व वहाँ अरानी
देव प्रद्वि और देवता सम्भा सुखों को भोगत हैं । परन्तु
आन्धिर वे भा वहाँ से पवते हैं ।

मूल.-एरग तिरिखलजोणि, मागुसमाव च देवनोग च ।

सिद्धे अ भिद्धवसहिं, अर्जावाणिय परिकहेइ ॥ ३ ॥

छायाः नरक तिर्यग्योनिं मानुष्यभवदेवलोक च ।
सिद्धय सिद्धयसति पट्जीवनिकाय परिकथति ॥३॥

अन्वयार्थ - हे शूद्रभूति ! जो जीव पाप कर्म करते हैं, वे (खरग) नरक को और (तिरिक्खनेरि) तिर्यच योनि को प्राप्त होते हैं । आर ज्ञा पुण्य उपाजन करते हैं, वे (मानुष भाव) मनुष्य भव को (च) और (देवलोक) देवलोक को जात हैं, (अ) और ज्ञा (द्वावावणिय) पट्काय के जीवों की रक्षा करते हैं, वह (सिद्धयसति) सिद्धा वस्था को प्राप्त करके अथान् सिद्धि गति में जाकर (सिद्धे) सिद्ध होते हैं । ऐसा सभी तीर्थंकरों ने (परिकथे) कहा है ।

भाषाथ - हे आथ ! जो आत्मा पाप कर्म उपाजन करते हैं, वे नरक और तिर्यच योनियों में जन्म लेते हैं । जो पुण्य उपाजन करते हैं, वे मनुष्य नाम एव देव गति में जात हैं । और जो पृथ्वा अथ, तेज वायु तथा वनस्पति के जीवों को तथा हिलते फिरते अस जीवों की सम्पूर्ण रक्षा कर अष्ट कर्मों को चूर चूर कर देने में समर्थ हाते हैं, वे आ मा सिद्धान्त में सिद्ध अथवस्था का प्राप्त होने हैं । ऐसा ज्ञानियों ने कहा है ।

मूल जह जीवा वज्मति,

मुचति जह य परिकलिस्सति ।

जह दुवसाण अत,

करेति केई अपडिवद्धा ॥ ४ ॥

एषा यथा जीवा पर्य त,
 मुच्यन्ते यथा स परिनिपश्यन्ते ।
 यथा तु गान्नाम न कुपन्ति,
 वेऽपि अप्रतिबद्धा ॥ ४ ॥

अर्थ - ह आत्मा । (जह) जैसे (बह) बह
 (जवा) जाव (बजमान) कर्मों से बँधत है, बँधे हो
 (मुच्यन्ते) मुह भा होने न (य) आर (जह) जैसे कर्मों
 या वृद्धि होने न (परिनिपश्यन्ते) महान् कष्ट पात ह ।
 यम ही (दुक्खण) दुखों का (अत) अत भा (वगेने)
 पर टालत ह । एषा (अप्रतिबद्धा) अप्रतिबद्ध विहायी
 निमग्न या न क । दे ।

भाषार्थ - ह आत्मा । यहा आत्मा कर्मों को बाँधता है,
 और यही कर्मों से मुह भी ह ता ह । यहा आत्मा कर्मों का
 बाँध लख करके दुखा दाता है, और सदापर सेवन से सम्पूर्ण
 कर्मों को तात् करके मुक्ति क सुखों का साधान भी यहा
 आत्मा तैयार करता ह । ऐसा निमग्नो का प्रवचन है ।

गृह्ण, अष्टदुहृष्टिचित्ता अह, जीवा दुक्खसागर मुच्यन्ति ।
 लह वैराग्यमुपगया, कम्मसमुग्ग विहाड्येति ॥ ५ ॥

एषा आत्तदुग्घात्त चित्ता यथा,
 जीवा तु पसागरमुपयाति ।
 यथा वैराग्यमुपगता
 कम्मसमुद्ग विघाटयति ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ -हे इन्द्रभूति ! जो (जाव) जाव वैराग्य भाव से रहित है वे (अद्बुद्धिय चित्ता) अत रौद्र ध्यान से युक्त चित्त वाले हो (जह) जैसे (दुग्गमागर) दुग्ग सागर को (उवेंति) प्राप्त होत है । वम ही (वेरग) वैराग्य को (उवगया) प्राप्त हुए जाव (दम्मसमुग्ग) कम्म समुद् को (विहाडति) नष्ट कर डालते ह ।

भाषार्थ -हे गातम ! जो आत्मा वराग्य अवस्था को प्राप्त नह। हुये ह, साधारण भागा में पमे हुये ह वे अत रौद्र ध्यान को श्रुते ये मानसिक कुभावनाओं के द्वारा अनिष्ट कर्मों का संचय करते ह । और जन्म व मान्तर के लिय दुग्ग सागर म गाता लगात ह । जिन आत्माओं का रग रम में वैराग्य रस भरा पका है, वे मदाचार के द्वारा पूर्व संचित कर्मा से बात का बात म नष्ट कर डालते हैं ।

मूल* जह रागेण कडाण कम्माण, पावगो फलविवागो ।

जह य परिहीणकम्मा, सिद्धा सिद्धालयमुपेति ॥ ६ ॥

छाया यथा रागण कृताना कर्मणाम्,

पापक फलविपाक ।

यथा च परिहीणकर्मणः,

सिद्धा सिद्धालयमुपयान्ति ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (जह) जैसे यह जीव (रागेण) राग द्वेष के द्वारा (कडाण) बन्धे हुए (पावगो) पाप (कम्माण) कर्मों के (फलविवागो) फलोदय को

भोगता है । वैसे ही शुभ कर्मों के द्वारा (योगदीणकृत्वा) कर्मों को नष्ट करने वाले ज्ञान (विद्या) विद्य होकर (विद्यालय) सिद्धस्वान को (उच्येति) प्राप्त होता है ।

भावार्थ -- हे आर्य ! जिस प्रकार यह आत्मा राग द्वेष करके कर्म उपार्जन कर लता है और उन कर्मों के उद्वेग काल में पल भी उनका चलाता है वैसे ही महाबाहो से जन्म कर्मों के कृत कर्मों को सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर चलता है । और फिर वही सिद्ध हो कर विद्यालय का भा प्राप्त हो जाता है ।

गूढः आलोचयन् निरवलापे, आर्षसु दहृदधम्मया ।

अणिस्सिञ्चोवहाणे य, सिक्खा निपाडिक्कम्मया ॥७॥

गूढः आलोचना निरवलापा, आर्षसु सुदृढ धमता ।
अनिधितापघातश्च शिक्षा निश्चलिवमता ॥७॥

गूढाचार्य -- हे द्रुमभूते ! (आलोचयन्) आलोचना करना (निरवलापे) की हुई आलोचना अथवा के सम्मुख नहीं करना (आर्षसु) आर्ष अथवा पर भी (दहृदधम्मया) धर्म में दृढ़ रहना (अणिस्सिञ्चोवहाणे) । अर्थात् किसी चाद के उपघात तब करना (सिक्खा) शिक्षा प्रदण करना (य) और (निपाडिक्कम्मया) शरीर की शुभ्या नहीं करना ।

भावार्थ -- हे गौतम ! जानते में या अज्ञानत में किसी भी प्रकार दोषों का रोपन कर लिया हो, तो उधर ही अपने

आवाय के सम्मुख प्रकट करना और आचार्य उसके प्रायश्चित रूप में जो भा दण्ड दें उसे सदैव प्रदण कर लेना, अपना भ्रष्टता बताने के लिए पुनः उस बात को दूसरों के सम्मुख नहीं कहना और अनेक आपदाओं के बादल पया न उमड़ें अर्थात् मगर धर्म से एक पैर भी पीछे न हटाना चाहिए। एहिक और पारलौकिक पदार्थिक सुखों की इच्छा रहित उपधान तप मत करना, सूत्रार्थ प्रदण रूप शिक्षा धारण करना, और कामभोगों के निमित्त शरार की शुधूपा भूल कर भा नहीं करना चाहिये।

मूल अणायया अलोभे य, तितिक्ष्वा अज्जेवे सुई ।

सम्मदिट्ठी समादी य, आयारे विणओवए ॥८॥

छाया इ छातता अलोभश्च तितिक्षा अर्जव शुधि ।

सम्यग्दृष्टि समाधिश्च आचारोविमयोपेत ८॥

अचयार्थ हे इद्रभूति ! (अणायया) दूसरों को कहे बिना ही तप करना (अलोभ) लोभ नहीं करना (तितिक्षा) परिषदों को सहन करना (अज्जेवे निच्छपट रहना) सुई) सत्य से शुचिता रचना (सम्मदिट्ठी) धर्म को शुद्ध रखना (य) और (समादी) स्वस्थ चित्त रहना (आयार) सदाचारी हो कर कपट न करना (विणओवए) विनया हो कर कपट न करना ।

भाचार्य - हे गौतम ! तप मत धारण करके यश के लिए दूसरों को न कहना, इच्छित वस्तु पाकर उस पर लोभ

न करना, दश मशपादिकों का परिपक्व उत्पन्न हो तो उसे सक्षय सहन करना, निष्कपटता पूर्वक अपना सारा व्यवहार रखना, सत्य समयद्वारा शुचिता रखना, भ्रष्टा में विपरतता न भ्रान्त देना, स्वरूप चित्त हो कर अपना जावन जिम्मा, आकाश हो कर कपट न करना और विनया देना ।

मूलः—भिईमई य सवेगे, पण्हि सुविहि सघरे ।

अच्छदोसावसहारे, सब्बकामविरत्तया ॥६॥

दाया - धृतिमतिश्च भयग प्रणिधि सुविधि सघर ।

आत्म दोषोपसहार सधकामविरत्तता । ६॥

दृष्टा वयाध हे हृदभूति । (भिईमई) अज्ञान वृत्त से रहना, (सवग) गलत से विरक्त हो कर रहना, (पण्हि) पापों के अशुभ योगों को रोकना, (सुविहि) सदाचार का भवन करना । (सघरे) पापों के कारणों को रोकना, (अच्छदोसावसहार) अपना आत्मा क दोषों का सहार करना, (य) और (सब्बकामविरत्तया) सर्व कर्मनाशों से विरत रहना ।

भाषाय हे गौतम । दिन दिन वृत्ति मे सदा विमुक्त रहना गलत के विषयों से लदासीन होकर मोक्ष का इच्छा को हृदय में धारण करना, मा भयन काया के अशुभ व्यापारों को रोक रखना, सदाचार भवन में रत रहना, दिशा झूठ, धोरे, सग, समत्व क द्वारा आत हुए पापों को रोकना, आत्मा के दोषों को हँस कर सहार करना, और सब तरह

की इच्छाओं से अलग रहना ।

मूलः-पचवकसाणे विउत्सगो, अप्पमादे लवालवे ।

भाणसवरजोगे य, उदए मारणतिए ॥ १० ॥

छायाः-प्रत्याख्यान व्युत्सर्ग, अप्रमादो लवालव ।

ध्यानसवर योगाश्च, उदये मारणान्तिके ॥१०॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभृति ! (पचवकसाणे) त्यागों की शुद्धि करना (विउत्सगो) उपाधि से रहित होना (अप्पमादे) प्रमाद रहित रहना (लवालव) अनुष्ठान करते रहना (उक्काण) ध्यान करना (सवरजोग) सम्भर का व्यापार करना, (य) और (मारणतिए) मारणातिक कष्ट (उदए) उदय होने पर भी क्षोभ नहीं करना ।

भावार्थ - हे गौतम ! त्याग धम की वृद्धि करते रहना उपाधि से रहित होना, गर्व का परित्याग करना, क्षण मात्र के लिए भी प्रमाद न करना, सदैव अनुष्ठान करते रहना, जिदार्तों के गभीर आशयों पर विचार करत रहना, कर्मों के निरोध रूप सवर की प्राप्ति करना और मृत्यु भा यत्ति सामने आसदा हो तब भा क्षोभ न करना ।

मूल -सगाण य परिणयाया, पायच्चित्तकरणे वि य ।

आराद्धया य मरणते, वसीस जोगसगदा ॥११॥

छाया सद्धानाञ्च परिश्रया प्रायश्चित्तकरणमपि च ।

आराधना च मरणान्ते, द्वात्रिंशति योग समदा ॥११॥

अग्न्याथं दे इन्द्रभूति । अगण) उभोगों के परिणाम को (परिणयण) जान कर उपाय त्याग करना (य) और (प्रायश्चित्त करणे) प्रायश्चित्त करना, (आरादणाय मरणत) आराधिका हो समाधि मरण से मरना, ये (वृत्त) वृत्त (जाग-गदा) योग समझ है ।

आचार्यो-हे गौतम ! स्वप्नादि अगण रूप स्नेह के परिणाम को समझ कर उपाय परिहारा करना । भूल से गलती हो जावे तो उसके लिए प्रायश्चित्त करना, सभी जीवन को साधक कर समाधि से मृत्यु लेना, ये वृत्त शिक्षाया वः अपने जीवन के साथ संबंध कर लेना मानों मुक्ति को पर लेना है ।

मूल* - अरहतसिद्धपवयणगुरुधेरबहुस्मृएवम् गीगु ।

वच्छल्लया यसिं अभिवसणाणावद्भोगे य ॥ १२ ॥

अर्थ - अरहत्सिद्ध पवयण गुरुधेर बहुस्मृएवम्

यदुधुतषु तपस्विषु ।

वत्सलता तया अभीष्टेण

ज्ञानोपयोगश्च ॥ १२ ॥

दण्डा-अथ दे इन्द्रभूति । (अरहत) सीर्षकर (सिद्ध) सिद्ध (पवयण) आगम (गुरु) गुरु महाराज (धेर) धरतिर (बहुस्मृए) बहुधुत (तपस्विषु) तपस्वी ने (वच्छल्लया) वात्सल्य भाव रखता हो (यसिं) उनका दृष्ट कानन करता हो, (य) और (अभिवस) उद्देव

(शास्त्रे वशो) ज्ञान में जो उपयोग रखने ।

भाषार्थ - हे गौतम ! जो रागादि दापा से रहित हैं, जि होने घनघाता कर्मों को जात लिया है, व अरिहत हैं । जिहोन सम्पूर्ण कर्मों को जात लिया है, व सिद्ध हैं । अर्दिसामय सिद्धांत और पंच महाप्रतों को पालने वाले शुद्ध हैं । इमों और स्थावर, बहुश्रुत तपस्वी इन सभा में वात्सरय भाव रखता हा इन के गुणों का हर जगद प्रसार करता हो और इसी तरह ज्ञान के ध्यान में सदा लीन रहता हो ।

मूलः दसणविणए आवस्सएय, सीलव्वए निरइयारो ।

खणलवतवच्चियाए, वेयावच्चे समाही य ॥१३॥

छाया दर्शनचिनय आवश्यक शीलव्रत निरतिचार ।

खणलवस्तपस्त्याग त्रैयानृत्य समाधिश्च ॥१३॥

दण्डाचय हे इन्द्रभूति । (दसण) शुद्ध धरुा रहता हो (विणए) विनयी हो (आवस्सए) आवश्यक-प्रतिशमण दोनों समय करता हो (निरइयारो) दोष रहित (सीलव्वए) शील और व्रत को जो पालता हो, (खणलव) अच्छा ध्यान ध्याता हो अथात् सुपाप को दान देने की भावना रखता हो (तव) तप करता हो (च्चियाए) त्याग करता हो, (वेयावच्चे) सेवा भाव रखता हो (य) और (समाही) स्वल्प वित्त से रहता हो ।

भाषार्थ - हे गौतम ! जो शुद्ध धरुा का अवलम्बी हो,

गणना में जिसके हृदय में निवास कर लिया हो, दोनों समय सौम्य और सुबह अपने पंखों का आलोचन रूप प्रतिक्रमण को जो करता हो, निर्दोष शाल मंत्र का जो पालता हो, आस वैदिक स्थान को अपना और मँकने तक न देता हो, अनशन मंत्र का जो मंत्री हो, या नियमित रूप से कम खाता हो, मिष्टान्न आदि का परिहारा करता हो, आदि इन बारह प्रकार के तपों में से कोई भी तप जो करता हो, सुपात्र दान देता हो जो सेवा भाव में अपना शरार अमण कर चुका हो, और सदैव चिन्ता रहित जो रहता हो ।

मूलः अपुत्र्यण्यगदृशे, सुयमती पवयणे पमावणया ।

एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्त लहइ जीओ ॥१४॥

व्याः-अपूर्वज्ञानग्रहण श्रुतमङ्गि प्रवचनप्रभावनया ।

पनेः कारणैस्तौथकरत्व लभते जीव ॥ १४ ॥

दशह्याचय दे इन्द्रभूति । जो (अपुत्र्यण्यगदृशे) अपूर्व ज्ञान को ग्रहण करता हो (सुयमता) मंत्र शालों को आदर का दृष्टि से देखता हो, (पवयणे) निम्न प्रवचन को (पमावणया) प्रभावना करता हो, (एएहिं) इन (कारणेहिं) सम्पूर्ण कारणों से (जीओ) जीव (तित्थयरत्त) तीर्थकरत्व को (लहइ) प्राप्त कर लेता है ।

माघाय ह आय । आये दिन कुछ न कुछ नवीन ज्ञान को जो ग्रहण करता रहता हो, मंत्र क सिद्धा तों को आदर भावों से अपनाता हो जिन शासन को प्रभावन उत्पत्ति

के लिए नये नये उपाय चा हूँ । नकालता हो, इ-हो कारण
में से किसी एक बात का भी प्रगाढ़ रूप से सेवन जा करता
हो, वह फिर चाहे किसी भी जाति व काम का क्यों न हो,
भविष्य में तीर्थकर होता है ।

मूलः—पाणाइवायमलिय, चोरिकक मेहुण दवियमुच्छ ।

कोह माण माय, लोभ पेज्ज तद्दा दोस ॥१५॥

कलह अधमइखाण, पेसुन्न रइअरइसमाउत्त ।

परपरिवाय माया, मोस मिच्छत्तसल्ल च ॥१६॥

छाया प्राणातिपातमलोक चौर्ये मैथुन द्रव्यमूर्च्छाम् ।

क्रोध मान माया लोभ प्रेम तथा द्वेषम् ॥१५॥

कलहमभ्याख्यान पैशु य रत्यरती सम्यक् कम् ।

परपरिवाद मायामृपा मिथ्यात्वशत्य च ॥१६॥

दृष्टान्वय हे इन्द्रभूति ! (पाणाइवाय) प्राणा
तिपात हिंसा (अलिय) भ्रूँठ (चोरिकक) चोरी (मेहुण)
मैथुन (दवियमुच्छ) द्रव्य में मूर्च्छा (कोह) क्रोध (माण)
मान (माय) माया (लोभ) लोभ (पेज्ज) राग (तद्दा)
तथा (दोस) द्वेष (कलह) लडाइ (अधमइखाण) कलह
(पेसुन्न) चुगला (परपरिवाय) परापवाद (रइअरइ)
अधम में आनंद और धर्म में अश्रवणता (मायमोस)
कपट युक्त भ्रूँठ (च) और (मिच्छत्तसल्ल) मिथ्यत्व
रूप शब्द, इस प्रकार अठारह पापों का स्वरूप कृतियों ने

(सहाजत) अर्थात् तरह कहा है ।

मायाध ह गौतम । प्रणियों क दस प्राणों में से किसी भी प्राण को दानन करना, मन धनन, वाया से दुष्टों के मन तक को भी दुखाता, हिता ह । इव हिता से यह अरमा महीन होता है । इसी तरह भूँठ बोलन से, बोरी करने से, मैधुन धवन से, यस्तु पर मूडा रमने से, मोष, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष करने से, और परस्पर लड़ई मगडा करने से, विद्या निदयो पर मलक का आसन करने से, रिता का चुयनी खाने से, दुष्टों के अवगुणावाद बोलने से, और इसी तरह अधम में प्र सता रमने से और धर्म में अप्रसता दिखाने से, दुष्टों को टगने के लिए कपट पूर्वक भूँठ का व्यवहार करन से, आर मिध्यातन रूप र ह ४ के द्वारा पीडित रहने से, अर्थात् श्रदेव कुशुर्क कुधम के मानने से, आदि इन्हीं अठारह प्रकार के पापों से जबकी हुई यह आरमा नाना प्रकार के दु ख उठता हुई, चैराही नास योनियों में परिधमण करता रहता है ।

मूल - अङ्कुरसाणनिमित्ते, आहारे वेयणापराघाते ।

फासे आयापाणु, सत्तविहे भिक्खए आउ ॥ १७ ॥

छायाः-अध्यवसानानिमित्ते आहार वेदना पराघात ।

स्पर्श आनमाणु ससविध क्षीयते आयु ७१७ ॥

अ वयार्थ - हे इन्द्रभूति (आउ) आयु (सत्तविह)

सात प्रकार से (किमपि) टूटता है । (अउभयसाणानमिते) भयात्मक अभ्यवसाय आर दण्ड-लक्षणा कशा चाबुक शस्त्र श्राप्ति निमित्त, (आहारे) अधिक आहार (यस्या) शारीरिक वेदना (पराघात) सङ्घ आद म गिरने के निमित्त (फामे) सपादिक का स्पर्श (आणुपाणु) उच्छ्वास विश्वास का रावना आद कारणों से आयु का क्षय होता है ।

भाष्य - हे आय ! सात कारणों से आयु अक्षय म हा लीग होता है । व या ह — राग, स्नेह, भयपूर्वक अथ्य घमाय क अने स, दण्ड (लक्षणा) कशा (चाबुक) शस्त्र श्राप्ति के प्रयोग से, अधिक भाजन स्वा लेने से, नेत्र आदि का अधिक व्याधि हान स सङ्घ आदि म गिर जान से, और उच्छ्वास निश्वास क रोक देने से ।

मूलः-जह मिडलेवालित्त, गरुयतुव अहो षयइ एव ।

आसवकयकम्मगुरू, जीवा वच्चते अहरगइ ॥१८॥

ध्याया यथा मृत्तेपालित्त गुरु तुम्ब अधोयजत्येव ।

आश्रयकृतकर्मगुरवा जीवा प्रजन्त्यधोगतिम् ॥१८॥

अ वयार्थ - हे इ इभूति ! (जह) जभे (मडनेवालित्त) मिट्टी के रूपस लिपटा हुआ वह (गुरुय) भारी (तुव) तूवा (अहो) नाचा (षयइ) जाता है । (एव) इसी तरह (आसवकयकम्मगुरू) आश्रय कृत कर्मों द्वारा भारी हुआ (जीवा) जाव (अहरगइ) अधोगति को (वच्चति) जात है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! जैसे मिट्टी का लेप लगने पर तूष्णी भाँसी ही गठता है अगर उसका पात्र पर रख दिया जाय तो यह उसका तब तक नचा ही खला आयगा ऊपर नहीं उठेगा । इसी तरह हिंसा भ्रूँठ चोरी, मैथुन और मूत्र आदि आश्रय रूप कर्म कर लेने से, यह आत्मा भी भाँसी हो जाता है । अगर यही कारण है कि तब यह आत्मा अघोर्गी को अचना स्थापना बना लेता है ।

भूल त चेव तन्निमुक्क, जलोवरिं ठाइ जायलहुभाव

जह तह कम्मविमुक्का, लोयागपइड्डिया होति ॥ १८ ॥

ध्याया स चैव तद्विमुक्क जलोपरितिष्ठति जातलघुभावा
यथा तथा कम्मविमुक्ता लोकाग्रप्रतिष्ठता भवान्त

अ-उपार्थ हे ए-द्रभूति ! (जह) जस (त चेव) यही वही वही तूष्णी (तन्निमुक्क) उस निट्टे क लेप से मुक्त होने पर (जायलहुभाव) दलका दो जाना है तब (जलोवरिं) जल के ऊपर (ठाइ) ठहरा रह सकता है । (तह) उस प्रकार (कम्मविमुक्का) कर्म से मुक्त हुए जीव (लोयागपइड्डिया) लोक के अग्रभाग पर स्थित (होति) होते हैं ।

भाषार्थ - हे गौतम ! मिट्टी के लेप से मुक्त होने पर यही वही जैसे पानी के ऊपर आ जाता है, यही ही आत्मा भी कर्म रूपी बाधनों से सम्पूर्ण प्रकार से मुक्त हो जान पलाक के अग्र भाग पर आकर स्थित हो जाता है । फिर इस दुःखमय संसार में उसको चक्कर नहीं लगाना पड़ता ।

॥ श्रीगौतम उवाच ॥

मूलः-कह चरे ? कह चिट्टे ? कह आसे ? कह सए ।

कह भुजतो ? भासतो, पाप कम्म न बघइ ॥२०॥

छाया - कथञ्चरेत्? कथ तिष्ठेत्? कथमासीत् कथ शयीत्।
कथ भुञ्जानो भाषमाण पाप कर्म न बध्नाति ॥२०॥

अन्वयार्थ - हे प्रभु ! (कह) कैसे (चरे) चलना ?

(कह) कैसे (चिट्टे) ठहरना ? (कह) कैसे (आसे)

बैठना ? (कह) कैसे (सए) सोना ? जिससे (पाप)

पाप (कम्म) कम (न) न (बघइ) बँधते, और (कह)

किस प्रकार (भुजतो) खाते हुए, एन (भासतो) बोलते

हुए पाप कम नहीं बधते ।

भाषाय - हे प्रभु ! कृपा करके इस सेवक के लिए

परमावे कि किस तरह चलना, खड़े रहना, बैठना सोना

खाना, और बोलना चाहिए जिससे इस आत्मा पर पाप

कर्मों का लेप न चढ़ने पावे ।

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूल जयं चरे जय चिट्टे, जय आसे जय सए ।

जय भुजतो भासतो पाप कम्म न बघइ ॥२१॥

छाया यत् चरेत् यत् तिष्ठेत् यत्मासीत् यत् शयीत् ।

यत् भुञ्जानो भाषमाण पाप कर्म न बध्नाति ॥२१॥

अथयार्थः हे इन्द्रभृते । (जय) याना पूर्वक
 (चले) चलना (जय) याना पूर्वक (चिट्ट) टहलना (जय)
 याना पूर्वक (चात) बैठना (जय) याना पूर्वक (तए)
 धोना, भिषमे (पव) पाप (कम्म) कर्म (न) नहीं
 (बभद) बघता है । इसी तरह (जय) याना पूर्वक (भुभते)
 खाते हुए (भाधनो) १ बार खाएँ हुए भी पाप कर्म
 नहीं बँधने ।

भावार्थः हे गौतम । दिना, मँ , धारी, आदि का
 विषयें लीक भी क्या-कर न ह। एर्वा तावध नी का याना
 कहत है । याना पूर्वक चलने म, खर रदन से बैठने से और
 धाने से पाप कर्मों का बधन इस आत्मा पर नहीं होता है ।
 इसी तरह याना पूर्वक भोजन करा हुए और बोलने हुए भी
 पाप कर्मों का बंध नहीं होता है । अतएव हे आश्व । तू
 अपना दिन चया को खर ही तावध नी पूर्वक बना विषय से
 आत्मा बधने कर्मों के द्वारा भारी न हो ।

मूल पच्छा पि ते पयाया,

खिण गच्छन्ति ऊपरभवणाइ ।

जैसि पियो तवो भजमो,

य खनी य वम्भचेर च ॥ २२ ॥

छाया-पद्यादपि ते प्रयाताः

खिप्र गच्छन्त्युपरभवनानि ।

येषां प्रिय तप सयमश्च

शान्तिश्च ब्रह्मचर्यं च ॥ २२ ॥

अन्वयाथ -हे इन्द्रभूति ! (पच्छा वि) पीछे भी
अथात् वृद्धावस्था में (ते) वे मनुष्य (पयाया) स-मार्ग
को प्राप्त हुए हैं (य) और (जेषि) जिस को (तवो)
तप (सजमो) सयम (य) और (खता) क्षमा (च)
और (बन्मचर) ब्रह्मचर्य (विभो) प्रिय है, व (क्षिप्य)
शीघ्र (अमरभवणाद्) देव भवनों को (गच्छात्) जाते हैं ।

भावार्थ -हे आर्य ! जो धर्म की उपेक्षा करते हुए
वृद्धावस्था तक पहुँच गये हैं उन्हें भी हताश न होना
चाहिए । अगर उग्र अवस्था में भी वे सदाचार को प्राप्त
हो जाँय, और तप, सयम, क्षमा, ब्रह्मचर्य को अपना लाड़ना
साथी बना लें, तो वे लोग देवलोक को प्राप्त हो सकते हैं ।

मूल -तवो जेई जीवो जेइटाण,

जोगा सुया शरीर कारिसग ।

कम्महा सजम जोगसती,

होम हुणामि इसिण पसत्थ ॥२३॥

छाया -तपो ज्योतिर्जीवो ज्योति स्थान

योगा सुव शरीर करीपाङ्गम् ।

कर्मघा सयमयोगा शान्तिर्होमेन

जुहोम्युपिणा प्रशस्तेन ॥ २३॥

अन्वयाथ -हे इन्द्रभूति ! (तवो) तप रूप तो (जेई)

अग्नि (जीवो) जीव रूप (जोइयण) अग्नि का स्थान
 (जाग) योग रूप (गुण) ब्रह्मा (सार) सार
 रूप (धारिण) ब्रह्म (अग्नि) अग्नि रूप ईश्वर का
 (सत्य योग) अदम व्यापार रूप (सती) शक्ति पाठ
 ह । इस प्रकार का (इच्छ) अद्वैतो (पश्य) अथ
 गाय धारिण रूप (शान) होम को (हुणामि) करता ह ।

भाषार्थ - हे गौतम ! तब रूप ओ अग्नि है, यह कम
 रूप ईश्वर को भस्म करता है । जीव अग्नि का कुरूप है ।
 क्योंकि तब रूप अग्नि जब अग्निनी ही है एतदथ, अथ ही
 अग्नि रग्ने का शुद्ध हुआ । अतः प्रकार ब्रह्मा से या यदि
 पशुओं को छल कर अग्नि का प्रज्ञा करते हैं एक उगी
 प्रकार मन बधन और कादा क शुभ व्यापारों के द्वारा तब
 रूप अग्नि को प्रज्ञा करना चाहिए । परन्तु शक्ति क बिना
 तब नहीं हो सकता है । इसीलिये सार रूप ब्रह्म कम
 रूप ईश्वर और अदम व्यापार रूप शक्ति पाठ पढ़ करके, मैं
 इस प्रकार अद्वैतो के द्वारा प्रसासनीय धारिण साधन रूप
 यज्ञ को प्रतिदिन करता रहता ह ।

मूलः-धमे हरए धमे सतितित्ये,

अण्णविले अत्तपसत्तलेसे ।

जदि सिएणाथो विमलो विमुद्धो,

सुखीतिमूओ पजहामि दोस ॥२४॥

ध्या - धर्मो ह्यदो ब्रह्म शान्तिर्वाच-

मनाविल आत्मप्रसन्नलेश्य
यस्मिन् स्नातो विमलो विशुद्ध

सुशीतीभूत प्रजहामि दोषम् ॥२४॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूत ! (अणुभावने) मिथ्यात्व
करके रहित स्वच्छ (अक्षयसत्त्वसे) आत्मा के लिए प्रश-
सनाय और अन्वया भावनाओं को उत्पन्न करने वाला ऐमा-
नो (धम्मे) धर्म रूप (हरण) द्रव्य और (योगे) ब्रह्मचर्य
रूप (सतितित्त्वे) शांतिताप्य है । (जडि) उम भ
(तिरुहाओ) स्नान करने से तथा उम ताप में आत्मा
के पर्यटन करते रहने से (विमला) निमल (विशुद्धो)
शुद्ध और (सुशीतीभूओ) राग द्वेषादि से रहित बह हो
जाता है । उसी तरह मैं भी उम द्रव्य और तीर्थ का सेवन
करके (दोष) अपनी आत्मा को दूषित करे, उम कर्म को
(पचामि) अलग त दूर करता हू ।

भावाथ - हे आय ! मिथ्यात्वदि पापों से रहित और
आत्मा के लिए प्रशंसनीय एवं उच्च भावनाओं को प्रकट
करने में सहाय्य भूत ऐमा नो स्वच्छ धर्म रूप द्रव्य है उस
में इस आत्मा को स्नान कराने से, तथा ब्रह्मचर्य रूप साति
तीर्थ का यात्रा करने से शुद्ध निमल और रागद्वेषदि से रहित
बह हो जाता है । यत म भी धर्म रूप द्रव्य और ब्रह्मचर्य
रूप तीर्थ का सेवन करके आत्मा को दूषित करने वाले अशुभ
कर्मों को सौगोशग नष्ट कर रहा हूँ । वस, यह आत्मा शुद्धि
का स्नान और उसका तीर्थ यात्रा है ।

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(चौथा अध्याय)

आत्म शुद्धि के उपाय

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूल तत्त्व पंचनिर्द्वै नाण, सुभ्र अभिणिवादिभ्य ।

आह्णाय च तदभ, मण्णाय च केवना ॥१॥

अथ - तत्र पञ्चविध ज्ञान, श्रुतमाभानेवाधिक्म् ।

अथापज्ञान च तृतीय प्रमोक्षण च केउक्म् ॥१॥

अवयवार्थ - ह इ इभूत् (तदभ) मान क सम्ब ध मे
(नाण) ज्ञान (पञ्चव) पांच प्रकार का ह बई यो है ।
(सुभ्र) भूत् (अभिणिवादिभ्य) मात् (तदभ) तै परा
(ओहिणाय) अवधि ज्ञान (च) और (मण्णाय) मन
पथव ज्ञान (च) और पांचवों (केवल) कवल ज्ञान है ।

भाषा - ह अथ ! ज्ञान पांच प्रकार का होता है,
ये पांच प्रकार यों हैं:—(१) मात् ज्ञान क द्वारा अर्थ
करते रहने से पदार्थ का जो स्वरूप भेदने, ज्ञान पड़ता है वह

भुत ज्ञान * है । (१) पापों इन्द्रिय के द्वारा जो सुत हाता है' वह मतिज्ञान कहलाता है (३) द्रव, सूत्र, काग भय आदि ३१ मयादा पूर्वक रूपा पदार्थों का प्रत्यक्ष रूप से जानना यह अवाधिज्ञान है । (४) हमरों के हृदय में स्थित भावा का प्रत्यक्ष रूप से जन लना मन पर्यवज्ञान है । और (५) त्रिंलाक और त्रिंवालया समस्त पदार्थों का सुस्पष्ट हस्तस्वभावत् जान लना अवल ज्ञान कहलाता है ।

मूलः अट् सव्वदन्वपरिणामभावविरणुत्तिकारणुत्त ।

साध्यमप्यधिगई एगविद् केवल नाणु ॥ २ ॥

छाया - अथ सवट् पपरिणाम-

भावविरणुत्तिकारणुत्तमन्तम् ।

शाश्वतमप्रतिपाति च,

एगविध केवल ज्ञानम् ॥ २ ॥

अत्रयार्थ - है इन्द्रभूति ! (केवल) केवल (नगा) ज्ञान (एगविद्) एक प्रकार का है । (सवट् पपरिणाम भावविरणुत्तिकारणुत्त) सब द्रव्या का उत्पत्ति ध्रुव नाश

(१) नदा सूत्र में भुत ज्ञान का दूसरा नम्बर है ।

परन्तु उपरोक्तप्रयोगी सूत्र में भुत ज्ञान का पहला नम्बर दिया गया है । इस का तात्पर्य यह है कि पापों ज्ञाना में भुत ज्ञान विशेष उपकारी है । इसलिये यहा भुत ज्ञान को पहले प्रणु किया है ।

और उनमें गुणों का विज्ञान, कानि में कारण भूत है । इसी प्रकार (अज्ञान) शब्द पदों का अर्थ से अज्ञत है एवं (सामर्थ्य) शब्द और (अर्थविषय) अश्रुतिपता है ।

भाष्यार्थ - हे गौतम ! कर्म-व ज्ञान का एक ही उद्देश्य है । और पद-मय द्रव्य-मात्र का उत्पत्ति-विनाश-भ्रुवण-आदि उनमें गुणों एवं पारस्परिक-पक्षों का भिन्नता का विज्ञान कानि में कारणभूत है । इसी प्रकार पद-पदार्थ-अज्ञत होने में ही अज्ञत भा-वदत है और यह शब्द-मात्र है । ईश्वर-ज्ञान उत्पन्न होने के पक्ष-पुन-नष्ट नहीं होता है । इसलिये यह अश्रुतिपता भा है ।

मूल एव पञ्चविधं गुणं, द्वात्रिंशत् स गुणाण्यसौ ।

पञ्चवाण्य च स वेत्ति, नाण्य नाण्योहि दक्षिणः ॥३॥

छाया पतत् पञ्चविधं ज्ञानम् द्रव्याणाम् च गुणं चाद्य
पथसाक्षाच्च सवपा ज्ञानं ज्ञानिभर्देशितम् ॥३॥

श्रु-वार्थ - हे 'द्रव्यभूति' (एव) यह (पञ्चविध) पौंच प्रकार का (नाण्य) ज्ञान (अर्थविषय) तत्र (द्रव्याण्य) द्रव्य (य) आदि (गुणाण्य) गुण (स) आदि (पञ्चवाण्य) पञ्चवाण्य को (नाण्य) अज्ञान-काला है एसा (नाण्योहि) तीर्थकरी द्वारा (दक्षिण) कहा गया है ।

भाष्यार्थ - हे गौतम ! अज्ञान में एसा कर्म भा-द्रव्य, गुण या पञ्चाय नहीं है जो इन पञ्च-ज्ञानों से जानी जा

सके । प्रत्येक ज्ञय पदार्थ यथायोग्य रूप से किसी न किसी ज्ञान का विषय होता ही है । ऐसा सभी तीर्थंकरों ने कहा है ।

मूलः पढम नाणु तथो दया, एउ चिट्ठइ सव्वसजए ।

अज्ञानी किं काही किं वा, नाहिइ छेयपावगा॥४॥

छ या प्रथम ज्ञान ततो दया, पध तिष्ठति सर्व सयत ।
अज्ञानी किं करिष्यति, किं वा शास्यति श्रेय पापकमूढ

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (पढम) पहले (नाणु) ज्ञान (तथो) फिर (दया) जीव रक्षा (एउ) इस प्रकार (सव्वसजए) सब साधु (चिट्ठइ) रहते हैं । (अज्ञानी) अज्ञानी (किं) क्या (काही) क्या करेगा ? (वा) और (किं) कैसे वह अज्ञानी (छेय पावग) भयस्कर और पापमय माग को (नाहिइ) जानेगा ?

भावार्थ - हे गौतम ! पहले जीव रक्षा सम्बन्धी ज्ञान की आवश्यकता है । क्योंकि, अपना ज्ञान के जाव-रक्षा रूप क्रिया का पालन किसी भी प्रकार हो नहीं सकता, पहले ज्ञान होता है, फिर उस विषय में प्रवृत्ति होती है । समय शाल आश्विन पिताने वारा मानव वर्ग भी पहले ज्ञान ही का सम्पादन करता है फिर जीव रक्षा के लिए कटिबद्ध होता है । सच है, जिन को कुछ भी ज्ञान नहीं है, वे क्या तो दया का पालन करेंगे ? और क्या विताहित ही को पहचानेंगे ? इसलिए सब से पहले ज्ञान का सम्पादन करना आवश्यक है । यहाँ 'दया' शब्द उपलक्ष्य है, इसलिए

उभये प्र / कृत्वि । वा अथ उभयेना चर्दिष्ट ।

मूल सोच्चा जगद् वरनाग, मोक्षा जागद् पावग ।

उभय पि जागद् सोच्चा, ज सेय त समायेरे ॥५॥

५ वा धृत्या जानाति कृत्याप, धु वा जानाति पापकम् ।

उभयेऽपि जागानि धृत्या पन्ध्रूपस्तत् समायेरेत् ॥५॥

अ तथाच - द २ द्भूते ! (सोच्चा) सुन कर
(कदाप) क-वाणु मारा म ग का (जागद्) जानता द,
और (मोक्षा) सुन कर (पावग) सामय माग को
(जागद्) अनता द । (उभय पि) आर दोनों को भी
(मान्सा) सुन कर (जागद्) जाता है । (ज) जो
(हेन) अचढ़ा हो (न) उगरो (समायेरे) अज्ञाकार करे ।

भाषार्थ हे भौतम ! सुनो से द्वित अहित, मगन
अभगल, पुण्य आर पाप का बाध होता है । और बोध हो
जान पर यह अत्मा अपने आत मेकहृर मार्ग को अज्ञ कार
कर गया है । और इमा माग के आधार पर आस्तिर म
अनत तुषमय मोक्षधाम को भी यह पालत है । इणलित
महर्षयो न धृतज्ञान ही का प्रथम रसाव पि ५ द ।

मूल*-नदा सूड ससुता, पडिआ वि न विण्णस्सइ ।

तथा जीवे ससुत्ते, ससारे न विण्णस्स ॥६॥

धान यथा गूचो समुद्रा, पत्तिताऽपि न विनश्यति ।

तथा जीव समुद्र , सतारे न विनश्यति ॥६॥

अन्यथाथ ह इन्द्रभूते । (जहा) जौ (गहृता)
 सूत्र सहित धाम क धाम (पञ्चिप्रा) गिरा हृद (सूद) एइ
 (न) नदी (विण्णस्मइ) खाती है । (तदा) उमा तरह
 (सद्धता) सूत्र श्रुत ज्ञान सहित (जाय) जाय (यगारे)
 उधार में (वि) भा (न) नदी (विण्णस्मइ) नाश हो । है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! जिस प्रकार धामे वाणी सुद
 गिर जान पर भी मी नहीं चरती, अथात् पुन शीघ्र गिर न
 जती है, उमा प्रकार श्रुत ज्ञान समुह आत्मा कदाचित्
 मिथ्यात्व वि अशुभ कर्मदय ए सम्प्रवचन भर्न से न्युता हो
 भा जाय तो यह अत्मा पुन रत्नत्रय रूप धम का स प्रता
 से प्राप्त कर लेता है । इसके अतिरिक्त पुन जगदान् आत्मा
 गगार म रहते हुए भी दुःखा नगी होता अर्थात् पाता थीर
 शान्ति ए अना जावन व तंत करता है ।

मूलः जायतऽविज्जापुरिसा, सव्वे ते दुक्खसमया ।

लुप्पति बहुसो मूढा, ससारम्मि अणुत्तए ॥७॥

ध्यायाः-याच ते ऽपेया पुरुषा सर्वे त दुःखसमया ।

लुप्य त बहुशा मूढा, ससारे अमन्तके ॥ ७ ॥

अप्यार्थ - हे इन्द्रभूत ! (जायत) जितन (अवि
 ज्जा) तत्त्व ज्ञान रहिन (पुरिसा) मनुष्य है (त) वे (गह्वर)
 मष (दुस्सगम्भया) दुःख उत्पन्न हान के स्थात रूप है ।
 इसीमे व (मूढा) मूल (अणुत्तए) अनन्त (उधारम्मि)
 उधार म (बहुसो , अनेशे वर (लुप्पति) पीड़ित दाते ह ।

भाषाया-हे गौतम ! तव ज्ञान से हीन जितने भी आत्मा हैं, वे सबके सब अपनेका दुःखों के भागी हैं । इस अन्त धरार की रक्त फरी में परित्रमण करते हुए बनाना प्रकार वे दुःखों से उठाते हैं । उन आत्माओं का क्षण भर के लिए भी अपन कृत कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता है । हे गौतम ! इस कदर ज्ञान का मुख्यता बताने पर तुम यों न समझ लेना चाहिए कि मुक्ति केवल ज्ञान ही से होती है बल्कि उसके साथ क्रिया की भी जरूरत है । ज्ञान और क्रिया इन दोनों के होने पर ही मुक्ति हो सकती है ।

मूल.-इहमेगे उ मरणति, अप्पच्चक्खसाय पावग ।

आयरिअ विदिताण, सव्वदुक्खा विमुच्चइ ॥८॥

ध्याया इहंके तु मभ्य ते अप्रत्याख्याय पापकम् ।

आयत्थ विदिता, सधदु खेभ्यो विमुच्चन्ते ॥८॥

अन्यथाय हे इन्द्रभूति । (उ) फिर इस विषय में (इह) यहाँ (मे) यह एक मनुष्यों (मरणति) मानते हैं कि (पावग) पाप का (अप्पच्चक्खसाय) बिना त्याग किये ही केवल (आयरिअ) अनुष्ठान की (विदिताण) जान लेने ही से (सव्वदुक्खा) सब दुःखों से (विमुच्चइ) मुक्त हो जाता है ।

भाषाया-हे आय ! कई एक लोग ऐसे भी हैं, जो यह मानते हैं कि पाप के बिना ही त्यागे, अनुष्ठान मात्र की जान लेने से मुक्ति हो जाती है । पर उनका एसा मानना

नितांत असगत है । क्योंकि अनुष्ठान को जान लन ही से मुक्त नही हो जाती है । मुक्तता तभी आगी, जब उस विषय में प्रवृत्ति का जायगी । अतः मुक्ति पथ में ज्ञान और क्रिया दोनों का आवश्यकता होना है । जिसने सद् ज्ञान के अनुपार अपनी प्रवृत्ति करला है उसक लिए मुक्ति सच-मुच ही अति निकट हो जाती है । एकल ज्ञान से मुक्ति नहीं हाती है ।

मूलः भण्णता अकर्णिता य, बधमोक्खवपहरिण्णयो ।

वायाविरियमत्तेण, समासासति अप्पय ॥ ६ ॥

छाया भण्णतोऽकृवन्तश्च बधमोक्ष प्रतिज्ञिन ।

वाग्शीयमात्रेण, समाश्रयसन्त्यात्मानम् । ६ ॥

अत्रयार्थ है इ प्रभृति ! (बधमाक्खवपरिण्णयो) ज्ञान ही का बध और माक्ष मा कारण मानने वाले कई एक लोग ज्ञान ही से मुक्त होती है, ऐसा (भण्णता) बोलते हैं । (य) परंतु (अकर्णिता) अनुष्ठान से नहीं करते । अतः वे लोग (वायाविरियमत्तेण) इस प्रकार बचन से वीरता मान हा स (अप्पय) आत्मा को (समासासात) अच्छी तरह आश्रय देत है ।

भाषा ५ - है गौतम ! कर्मों का बधन और शमन एक ज्ञान ही से होता है, ऐसा दवा प्रतिज्ञा करन बल कई एक लोग अनुष्ठान से उच्चा करके यों बोलते हैं, कि ज्ञान ही

को हृष्ट पुष्ट रगने के लिए घण, गंध रस स्पर्श, आदि म
मग, वचन, काया से पूरे पूरे प्राप्त कर रहत ह, फिर भा व
मुक्ति की आशा करत हैं । यह मृग विपासा है अतत ये
सब दु ख ही के भागा हाते हैं ।

मूल*—निम्नमो निरहकारा, निस्सगो चत्तगारयो ।

समो अ सव्वभूणसु, तसेसु थावरेसु य ॥१२॥

छाया निम्नमो निरहकार, निस्सगस्त्यङ्गरीय ।

सगश्च सभूतेषु तस्यु म्थावरेषु च ॥ १२ ॥

अत्रयाथ -ह इद्रभूत । महापुरुष बदा है, जा
(निम्नमो) समता रहित (निरहकारा) अहकार राह
(निस्सगो) बाण्य अन्तर सग रहित (अ) धार (उत्त
गारवा) त्याग इत्या है अभिमान को तिसरे (सव्वभूणसु)
तथा सब प्राणी मात्र कदा (तस्यु) अन् (अ) धार
(थावरे सु) म्थवर में (समो) समान भाव ह जिनका ।

भाषाथ -ह मातम । महापुरुष बदा है जिनन ममता
अहकार, सग, बइष्यन अलि सभा का साथ एकांत रूप
स छाड़ दिया है । और जो प्राणी मात्र पर फिर चाहे वह
कीइ मफोड़े के रूप म हो, या हाथी क रूप में, सभा क
ऊपर समभाव रखता है ।

मूल लाभालाभे सुह दुःखे, जीविण मरणे तदा ।

समो निर्दापससासु, समो माणावमाणश्रो ॥ १३ ॥

छाया लाभालाभे सुखे दुःखे, जीवित मरणे तथा ।

समो निन्दाप्रशंसासु,समो मानापमानयो ॥१३॥

अ-वयार्थ -हे इन्द्रभूति । महापुरुष वही है जो (लाभालाभे) प्राप्ति अप्राप्ति में (सुखे) सुख में (दुःखे) दुःख में (जीवित) जीवन (मरणे) मरण में (समो) समान भाव रखता है । तथा (निन्दाप्रशंसासु) निन्दा और प्रशंसा में एव (मानापमानयो) मान अपमान में (समो) समान भाव रखता है ।

भावार्थ -हे गौतम । मानव देहधारियों में उत्तम पुरुष वही है, जो इच्छित अथ की प्राप्ति अप्राप्ति में, सुख दुःख में, जीवन मरण में तथा निन्दा और स्तुति में, और मान अपमान में सदा समान भाव रखता है ।

मूल अणिसिन्धो इह लोके, परलोके अणिसिन्धो ।

वासीचक्षणकण्ठो अ,असणे णणसणे तद्वा ॥१४॥

छाया -अनिश्चित इह लोके, परलोकेऽनिश्चितः ।

वासी च क्षणकण्ठश्च, अशनेऽनशने तथा ॥१४॥

अ-वयार्थ -हे इन्द्रभूति । (इह) इस (लोके) लोक में (अणिसिन्धो) अनैश्चित (परलोके) परलोक में (अणिसिन्धो) अनैश्चित (अ) और किसी के द्वारा (वासीचक्षणकण्ठो) बसूले से छेदने पर या चदन का मिलेपन करने पर और (असणे) भोजन खाने पर (तद्वा)

तथा (अणुशेषे) अनशन मत, यथा में समान भाव रचना हो, वहा महापुरुष है ।

मायार्थ -हे गातम ! मोक्षविधारी वे ही गुरुध्व हैं जिन्हें इस लोक के पैभवों आर स्वर्गीय सुखों की चह नही होती है । कोई उ हें वसूने (शत्रु विशेष) से छेदें या कोई उन पर चन्दन का विलेपन करें, उन्हें भोजन मिल या प्राजाकशी करना पड़, इन सम्पूर्ण अस्थायों में उदा सवरा समभाव से रहते हैं ।

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥



निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय छठा)

सम्यक्त्व निरूपण

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः अरिहतो महद्देवो, जायज्जीवाए सुसाहुषो गुरुषो ।
जिणपरणत्त तत्त, इअ सम्मत्त मए गहिय ॥१॥

छाया अरिहतो महद्देवो, जायज्जीव सुसाधवो गुरव ।
जिणपरणत्त तत्त्व, इति सम्यक्त्व मया गृहीतम् ॥१॥

अचयार्थ - हे इन्द्रभृति ! (जायज्जावाए) जीवन
पयत्त (अरिहतो) अरिहत (महद्देवो) बड़े देव (सुसा
हुषो) सुसाधु (गुरुषो) गुरु और (जिणपरणत्त) जिन
रात्र द्वारा प्रचरित (तत्त) तत्त्व को मानना यही सम्यक्त्व
है (इअ) इत्य (सम्मत्त) सम्यक्त्व का (मए) मैंने
(गहिय) ग्रहण किया ऐसी जितनी बुद्धि है वही सम्यक्त्व
धारी है ।

भाषा - हे गौतम ! कर्म रूप शत्रुओं को नष्ट करके
जिन्दगीन केवल शांति प्राप्त कर लिया है और जो अष्टादश

दोषों से रहित हैं वही मेरे देव हैं । पाँच महात्रतों को यथा योग्य पालन करत हों वह मेरे गुरु हैं । और भीतराग के कहे हुए तत्त्व ही मेरा धर्म है । ऐसा दृढ़ श्रद्धा को सम्यक्त्व कहते हैं । इस प्रकार के सम्यक्त्व को जिसने हृदयगम कर लिया है, वही सम्यक्त्व धारी है ।

मूल परमत्यसथयो वा मुदिद्वपरमत्यसेवणा व वि ।

वावण्णकुदसणवज्जा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥२॥

ध्याया परमाथसस्तथ सुदृष्टपरमार्थसेवन याऽपि ।

ध्यापन्नकुर्दशनवज्जन च सम्यक्त्वश्रद्धात् ॥२॥

अन्वयार्थ - इन्द्रभूति ! (परमत्यसथवा) तात्त्विक पदार्थ का चिन्तन करना (वा) और (मुदिद्वपरमत्यसेवणा) अच्छी तरह से देखे हैं तात्त्विक अथ जिन्होंने उनकी सेवा शुधुपा करना (य) और (अवि) समुच्चय अथ में (वावण्ण कुदसणवज्जणाए) नष्ट हो गया है, दर्शन जिसका उसकी सगति परित्यापना, यही (सम्मत्तसद्दहणा) सम्यक्त्व की श्रद्धा है ।

भावार्थ - इ गौतम ! फिर जो बारबार तात्त्विक पदार्थ का चिन्तन करता है । और जो अच्छी तरह से तात्त्विक अर्थ पर पहुच गये हैं, उनकी यथा योग्य सेवा शुधुपा करता ही, तथा जो सम्यक्त्व दर्शन से पतित हो गये हैं, य जिन का ' दर्शन सिद्धांत ' दूषित है, उन की सगति का त्याग

करता हो वही सम्यक्त्व पूर्वक थद्दावान् है ।

मूल.—कुप्पवयणपासडो, सब्बे उम्मग्गपट्टिओ ।

सम्मग्ग तु जिणुक्खाय, एम मग्गे हि उत्तमे ॥३॥

दाया कुप्पवचनपापाएडो सर्व उ मार्गप्रस्थिता ।

स-मार्गे तु जिनाख्यात, एष मार्गो न्युत्तम ॥३॥

अ-वयार्थ -ह इन्द्रभूति (कुप्पवयणपासडा) दूपिन कचन कहते पात (सब्बे) सभा (उम्मग्गपट्टिओ) उ-मार्ग में चलने वाले दाया है । (तु) और (जिणुक्खाय) आ वातराग का कर्ता हुआ मार्ग ही (सम्मग्ग) सम्मार्ग है । (एत) यह (मग्गे) मार्ग (हि) निश्चय रूप से (उत्तमे) प्रथम है । एसा जस का मानना है । वही सम्यक्त्व पूर्वक थद्दावान् है ।

भावार्थ हे गौतम ! दिशामप दूपिन वरा योलन वाले है व सभी उ मार्ग यामी व । राग द्वय रहित और अत पुष्टों का बताया हुआ मार्ग ही स-मार्ग है । वहा मार्ग सब से उत्तम है, प्रथम है, एसा जिसरी निश्चय पूर्वक मान्यता है वही सम्यक् थद्दावान् है ।

मू १:- तद्विआणु तुद्ध भाषाण, सम्भाये उवएसण ।

भावेण रुद्ध तस्स, सम्पत्त त विआहिअ ॥४॥

* पुशब्दस्तुप दप्यार्थ ।

छाया शब्दानाम् तु भाषानाम् सद्भाव उपदेशाम् ।

माघेन धन्दूयत , सम्यक्त्वं तद्द्वयार्थयातम् ॥३१॥

अन्वयाद्य - इ इन्द्रभूति ! (सम्भावे) मन्त्रावनाशो
क द्वारा कह हुए (तद्विषयात्) शब्द (भाषाण्य पदार्थो
का (उपदेशात्) उपदेश (भाषेण) भाषाया न (सरद्वेत्
स्म त) अद्वापूरुष यता याने को (इन्द्रमत्त) सम्यक्त्वो
एता (विष्णोर्द्विष्य) वीतरागो ने कहा है ।

भावार्थ - इ मत्तम् । जिगची भावना विगुद्ध है उसके
द्वारा कह हुए यथायं पदार्थों को जो भावना पूर्वक शब्द के
माध्यमान्ता हो, वही सम्यक्त्वो है एता सभी तार्थिकों ने
कहा है ।

मूल - निरसगुणमर्हद्, आणरुद् सुखी अहमेव ।

अभिगमविस्तारमर्हद्, किरियासत्त्वममर्हद् ॥५॥

छाया निरसगोपदेशरुचि

आशाठुचि सूत्रवीजमत्रिरेव ।

अभिगमविस्ताररुचि

प्रियालक्षेपधमरुचि ॥ ५ ॥

अन्वयाद्य - हे इन्द्रभूति ! (निरसगुणमर्हद्) बिना
उपदेश स्वभाव मे और उपदेश से ने रुचि हो (आणरुद्)
आशा स रुचि है (सूत्रवीजममर्हद्) धृत प्रमाण से एव एक
धे अनर्क अर्थ निकलते है वने प्रवचन सुनने से रुचि हो

(अभिगमवित्थारहई) विशेष विज्ञान होने पर तथा बहुत विस्तार से सुनने से रुचि है। (किरियासखेवधम्महई) किया करते करते तथा सक्षप से या श्रुत धर्म धवण से रुचि हो।

भाषा - हे भौतम ! उपदेश धवण न करके स्वभाव ही तत्व की रुचि होने पर विशेष विज्ञान की सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है। विज्ञान की उपदेश सुनने से, विज्ञान की भगवान् की इस प्रकार की आज्ञा है एसा सुनने से, एसा के अर्थ धवण करने से एक शब्द को जा भीज की तरह अनेक अर्थ बताता हो ऐसा धवन सुनने से, विशेष विज्ञान हो जाने से, विस्तार पूर्वक अथ सुनने से, धार्मिक अनुष्ठान करने से, सक्षप अथ सुनने से श्रुत धर्म के मना पूर्वक धवण करने से तत्वों की रुचि होने पर सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

मूल* नत्थि चरित्त सम्मत्तविहूण, दसखे उ भइअव्व ।

सम्मत्तचरित्ताइ, जुगव पुव्व व सम्मत्त ॥६॥

छाया - नास्ति चारित्र्य सम्यक्त्यविहीनं,

दर्शने तु भक्त्यम् ।

सम्यक्त्यचारित्र्ये,

युगपत् पूर्वं वा सम्यक्त्यम् ॥ ६ ॥

अर्थ - हे इन्द्रभूति ! (सम्मत्तविहूण) सम्यक्त्य के बिना (चरित्त) चारित्र्य (नत्थि) नहीं है (उ) और (दसखे) दर्शन के होने पर (भइअव्व) चारित्र्य

भजनार्थ है । (सम्मत्सर्विण्ड) सम्यक्त्व आर चारित्र्य (जुगव) एक साथ भा होते ह । (य) अथवा (सम्मत्) सम्यक्त्व चारित्र्य के (पुत्र्य) पूर्व भा होता है ।

भाषाए ह आय ! सम्यक्त्व के बिना चारित्र्य का उदय होता ही नहीं है परल सम्यक्त्व होगा, पर चारित्र्य हो सकता है और सम्यक्त्व में चारित्र्य का भावाभाव है, क्योंकि सम्यक्त्वी कोई प्रदृश्य धर्म का पालन करता ह और कोई सुनि धर्म का । सम्यक्त्व आर चारित्र्य का उत्पत्ति एक साथ भा होता ह । अथवा चारित्र्य, क पहले भा सम्यक्त्व का प्राप्ति हो सकती है ।

मूल* नादसण्डिस्म नाण,

नाणेण विणा न ढोति चरणगुणा ।

अगुण्डिस्स नचिय मोक्खो,

नचिय अमुण्डस्स निव्वरण्ण ॥ ७ ॥

दृश - नादर्शणिनो ज्ञानम् ,

ज्ञानन विना न भवन्ति चरणगुणा ।

अण्डिणो नास्ति मोक्ष ,

नास्त्यमुक्तस्य निर्घण्डम् ॥ ७ १

अवयवार्थ ह इन्द्रभूति । (अदसण्डिस्स) सम्यक्त्व में रहित मनुष्य को (नाण) ज्ञान (न) नहीं होता है । और (नाणेण) ज्ञान के (विणा) बिना (चरणगुणा)

चारित्र के गुण (१) नहीं (हों) होते हैं । और (अगुणित्व) चारित्र रहित मनुष्य को (मोक्षो) कर्मों से मुक्ति (नदिय) नहीं होती है । और (अमुकत्व) कर्म रहित हुए बिना किसी को (निष्वाण) निवाण (नदिय) नहीं प्राप्त हो सकता है ।

भावार्थ - हे गौतम ! सम्यक्त्व के प्राप्त हुए बिना मनुष्य को सम्यक् ज्ञान नहीं मिलता है, ज्ञान के बिना आत्मिक गुणों का प्रकट होना दुर्लभ है । बिना आत्मिक गुण प्रकट हुए उसके जन्म जन्मांतरों के सचित कर्मों का क्षय होना दुःसाध्य है । और कर्मों का नाश हुए बिना किसी को मोक्ष नहीं मिल सकता है । अतः सब के पहले सम्यक्त्व की आवश्यकता है ।

मूलः निस्सकिय निवसिय—

निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।

उवपूह—यिरीकरणे,

वच्छल्लपभावणे अट्ठ ॥ ८ ॥

छाया - नि शक्तिं नि काक्षितम् ,

निर्विचिकित्साऽमूढदृष्टिश्च ।

उपघृहा-स्थिरीकरणे,

घात्सल्यप्रमाचनेऽष्टौ ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! सम्यक्त्व धारा बहा है,

जो (निरक्षय) नि शक्ति रहता है, (निरक्षय) अतत्त्वों की कांछा रहित रहता है । (निम्बितिगिरद्धा) मुहूर्तों के फल होने में संदेह रहित रहता है । (य) और (अमूददिष्टी) जो अतत्त्वधारियों को प्रादिव त देख कर मोह न करता हुआ रहता है । (उववूद-विरीकरण) सम्यक्त्व की दृढ़ता की प्रशंसा करता रहता है । सम्यक्त्व से पतित होते हुए को स्थिर करता (वच्छाप्रभषणे) स्वधर्मी जनों की सेवा शुभूषा कर वात्सरयभाव दिखाता रहता है । और आठवें में जा समार्थ की उन्नति करता रहता है ।

भाषायाः-हे आर्य ! सम्यक्त्वधारी वही है, जो गुरु देव, गुरु, धर्म रूप तत्वों पर नि शक्ति हाकर भ्रष्टा रहता है । इदंय गुरुगुरु कुर्म रूप जो अतत्त्व है, उन्हें प्रहण करन की तनिक भी अभिलाषा नहीं करता है । गृहाण धर्म या मुनि धर्म से होने वाले फलों में जा कभी भी संदेह नहीं करता । अ-य दर्शनी को धर्म सम्पत्ति से भरा पूरा देख कर जो ऐसा विचार नहीं करता कि मेरे दर्शन से इषका दर्शन ठीक है, सभी तो यह इतना धनवान् है, सम्यक्त्वधारियों की यथायोग्य प्रशंसा करके जो उनके सम्यक्त्व के गुणों की वृद्धि करता है, सम्यक्त्व से पतित होते हुए अ-य पुरुष को यथा शक्ति प्रयत्न करके सम्यक्त्व में जा दृढ़ करता है । स्वधर्मी जनों की सेवा शुभूषा करके जो उनके प्रति वात्सरय भाव दिखाता है ।

मूलः मिच्छादसणरत्ता, सनियाणा हु हिंसगा ।

इय जे मरति जीवा, तेमिं पुण दुल्लहा बोही ॥६॥

छाया - मिथ्यादर्शनरत्ता, अनिदाना हि हिंसका ।

इति ये म्रियन्ते जीवा, तेषा पुन दुर्लभा बोधि ॥६॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (मिच्छादसणरत्ता)

मिथ्या दर्शन में रत रहने वाले और (सनियाणा) अनिदान

करनेवाले (हिंसगा) हिंसा करने वाले (इय) इस तरह

(जे) जो (जीवा) जाव (मरति) मरते हैं । (तेमिं)

उनको (पुण) फिर (बोधि) सम्यक्त्व धर्म का मिलना

(हु) निश्चय (दुल्लहा) दुर्लभ है ।

भाषाथ - हे आर्य ! कुदेव कुगुरु कुधर्म में रत रहन

वाले और निदान सहित धर्म क्रिया करन वाले, एव हिंसा

करने वाले जो जीव हैं, वे इस प्रकार अपनी प्रवृत्ति करके

मरते हैं तो फिर उन्हें अगल भव में सम्यक्त्व बोध का

मिलना महान् कठिन् है ।

मूलः-सम्मदसणरत्ता अनियाणा, सुक्कलेसमोगाढा ।

इय जे मरति जीवा, सुलहा तेसिं भवे बोही ॥१०॥

छाया सम्यग्दर्शनरत्ता अनिदाना शुक्कलेश्यामवगाढा

इति ये म्रियन्ते जीवा, सुलभा तेषा भवति बोधि ॥१०॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (सम्मदसणरत्ता) सम्य

क्त्व दर्शन में रत रहन वाले (अनियाणा) निदान नहीं

धरोवाले एव (सुकलोसमोगाढा) शुक्ल लेश्या से सम
वित्त हृदय वाले । (इय) इस तरह (जे) जा (जावा)
जीव (मरति) मरते हैं (तेसि) उहें (बोदि) सम्यक्त्व
(सुलहा) सुलभता से (भवे) प्राप्त हो सक्ता है ।

भाषायाः-हे गौतम ! जो शुद्ध देव, गुरु, और धर्म
रूप दशा में भ्रष्टा पूर्व-० सदैव रत रहता हो । निदान रहित
तप, धर्म क्रिया करता हो, और शुद्ध परिणामों से विसृष्ट
हृदय उँग रहा हो । इस तरह भ्रष्टि रख करके जो जाव
मरते हैं उहें धर्म बोध की प्राप्ति अगले भव में सुगमता से
होती जाती है ।

मूलः जिण्वयणे अणुरत्ता, जिण्वयणु जे करिंति भावेण ।
अमला असकिलिटा, ते होति परिचससारी ॥११॥

छाया - जिनयघनेऽपुरक्षता,
जिनयचन ये कुर्वन्ति भावेन ।

अमला असकिलिटास्ते,
भवन्ति परीतससारीण ॥११॥

अ-वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (जे) जो जीव (जिण-
वयणे) कीतरागों के बचनों में (ह्ये) - रहते
(विण) भ्रष्टापूर्वक (वचनों)
(करिति) मानते त्व
(असकिलि) त
(सससारी)

भावाथ - हे श्याम ! जो बीतराग के कहे हुए वचना में अनुरक्त रह कर उनके वचनों को प्रमाण भूत मानते हैं, तथा मिथ्यात्व रूप दुर्गुणों से बचते हुए राग द्वेष से दूर रहत ह व ही सम्यक्त्व को प्राप्त करके, अलग समय में ही मोक्ष प्राप्त करत हैं ।

मूल - जातिं च बुद्धिं च इहज्ज पास,

भूतेहिं जाणे पडिलेह माय ।

तम्हाऽतिविज्जो परमति णच्चा,

सम्मत्तदशी ण करेति पाव ॥ १२ ॥

छाया - जातिं च वृद्धिं च इह दृष्ट्वा,

भूतैर्घांत्या प्रतिलेख्य सातम् ।

तस्मादनिविज्ञ परमिति क्ष त्या

सम्यक्त्वदर्शी न क्वेति पापम् ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (जाति) जन्म (च) और (बुद्धि) उद्भव को (इहज्ज) इस संसार में (प) स) देखकर (च) और (भूतेहिं) प्राणियों करके (साय) साता को । (जाणे) जान (पाडिलेह) देख (तम्हा) इस लिये (जात विज्जो) तत्त्वज्ञ (परम) मोक्ष मार्ग (णच्चा) जान कर (सम्मत्तदशी) सम्यक्त्व दृष्टि वाले (पाव) पाप को (ण) नहीं (करेति) करता है ।

भावाथ - हे गतम ! इस संसार में जन्म और मरण

के महान् दुखों को तू दम और हम बात का ज्ञान प्राप्त कर । के सब बीषों को सुख प्रिय है और दुख अभिय है । इसलिये ज्ञाना जन मोक्ष के मार्ग को जान कर सम्यक्त्व धारी बन कर निश्चित मात्र भी पार नहीं करते हैं ।

मूल.—इथो निद्वसमाणस्त, पुणो सवोहि दुल्लडा ।

दुल्लडाया तद्वच्चाथो, जे मम्मट्ट वियागरे ॥१३॥

धया इतो विध्वसमानस्य पुन सधोधिर्दुर्लभा ।

दुर्लभातथाऽवा ये घनार्थे व्याकुलमिति ॥१३॥

अन्वयाद्य - हे इ श्रुति ! (हम) यहाँ छ (विद्वस

माणस्त) मरन के बाद उसको (पुणो) फिर । सवोहि)

धर्म बोध का प्राप्ति हाना (दुल्लडा) दुर्लभ है । उससे भी

काटन (न) जा (मम्मट्ट) धम रूप अर्थ का (वियागरे)

प्रकाश करता है, एसा (तद्वच्चाथो) तथा भूत का मानव

शरीर मिलना अथवा सम्यक्त्व का प्राप्ति तथा योग्य भावना

का उस में आना (दुल्लडाथो) दुर्लभ है ।

आधाद्य - हे गोतम ! जो जीव सम्यक्त्व से परित

होकर यहाँ से मगता है । उस को फिर धम बोध की प्राप्ति

हाना महान् कठिन है । हम से भी यथातथ्य धम रूप अर्थ

का प्रकाशन जिस मानव शरीर से होता रहता है । ऐसा

मनुष्य देह अथवा सम्यक्त्व की प्राप्ति के योग्य उच्च लक्षणाओं

(भावनाओं) का आना महान् कठिन है ।

॥ इति पष्ठोऽध्यायः ॥

ॐ

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय सातवा)

धर्म निरूपण

॥ ध्यामग्यानुयाच ॥

गूढं मन्त्रं पञ्च अणु वर य,
तद्वत् पचासन्नसरे य ॥
विनि इह म्यामग्नियमि पने,
लवानमरुः सम्प्लेषिधेमि ॥१॥

एषा महाप्रजाति पञ्च गुप्रजा ० च
तथैव पञ्चाध्यायान् यरत्त ।
विरतिमिह ध्यामग्य प्राश,
सावापशाकी धमज्ज इमि प्रथामि ॥१॥

अथवाथ द मनुषे । (१६) इमं चित्तं श उक्तं मे
(स्वामग्नियमि) ध्यामग्यं यत्नं करने मे पञ्च) बुद्धिमात्
अथ (१७) वरु (१८) इमं तं करने मे समथ एमे (समप्ले)
अणु (१९) वाच (२०) महाप्रजा (२१) अथ
(अणुवर) वाच अणुवत् य) अथ (२२) वेप ही

(पचासवसरे य) पांच आश्व आर चर रुपा ।परति) विरात को (सिनेमि) कहता हूँ ।

भाषार्थ दे मनुष्यो ! राक्षसों के पालन करने में महा बुद्धशाली आर कर्मों को नष्ट करने में समर्थ ऐसे धर्मण भगवत महार्य ने इस शासन में साधुओं के लिए तो पांच महाव्रत अथात् आहिंसा, सत्य, तप, ब्रह्मचर्य, और अकिंचन को पूरा रूप से पालने को आज्ञा दी है और शूरुषों के लिए कम से कम पांच अशुभ्रत और सात ब्राह्मण व्रत यों बरह प्रकार से धर्म को धारण करना आवश्यक माना है । ये इस प्रकार हैं शूलाशो पाण्डवायाशो घेरमण द्विजत । परत त्रय ज वा का बिना अराध क दम्भ भास कर रूप वरा मानने की गियत स हिंसा न करना मुसायायाशो घेरमण जिस भाषा से अनर्प पदा हाता हो और राग एव पशयत में अना, र हो, एनी ल क विरुद्ध असत्य भाषा को ता कम से कम नहीं बोलना । शूलाशो अदिघादाशो घेरमण गुप रीत स क्रिया के धर में गुप्त कर, गाठ खोल कर, ताले पर कुनी लगा कर, लुटरे का तरह या, आर भी किसी तरह की निवम व्यवहार माग में भा लजा है । ऐसा चारा तो कम से कम नहीं करना । सदारसतोमे ३

* महारथ धर्म पालन करने वाला महिलाओं के लिए भी अपने कुल के अग्रजों की साक्षात् से विवाहित पुरुष के मिषाय समस्त पुरुष वर्ग को पिता भ्राता और पुत्र क समान समझना चाहिए । और स्वपति के साथ भी कम से कम पंच विधियों पर कुशील सर्वन का परिश्रम करना चाहिए ।

मुल के अमरों की साड़ी से 1जसके साथ विवाह किया है उस स्त्री के निवाय अन्य स्त्रियों को माता एवं बहिन और बेटी की निवाह से देखना और अपनी स्त्री क साथ भी कम से कम ऊष्टमी, चतुर्दशी, एकादशी, बीज, पचमा, अमावस्या, पूर्णिमा व दिन का सम्भोग त्याग करना । इच्छुापरिमाणे-श्वेत, कृष्ण साना, चांदी, धन्य, पशु, आदि सम्पत्ति का कम से कम मितना इच्छा हो उतनी ही का परिमाण करना । ताकि परिमाण से अधिक सम्पत्ति प्राप्त करने का लालसा रुक जाय । यह भी गृह्य का एक धर्म है । गृह्य को अपने छठ्ठ घम के अनुषार, दिसिद्वय चारों दिशा और ऊँची नीची दिशाओं में गमन करने का नियम कर लेना । सातवें म उपभोगपरिभोग परिमाण-खाने पीने की वस्तुओं की और पहनने की वस्तुओं की सीमा बावना ऐसा करने से कभी वह तृष्णा के साथ भा विजय प्राप्त कर लेता है । फिर उससे मुक्ति भी निकट आ जाती है । इसका विशेष विवरण यों है:—

मूलः-इगाली, वणु, साड़ी,

भाड़ी फोड़ी सुवज्जए कम्म ।

वाणुज्ज चेष य दत्त—

लवहरसकेसविसविसय ॥ २ ॥

छाया -अङ्गार घन शाटी,

भाटि स्फोटि सुवर्जपेत् कर्म ।

(पचासवसवरे य) पांच आश्व और २ वर रूपा (वर्ष) विरात को (तिथेमि) कहता है ।

भावार्थ - हे मनुष्यो ! सूर्यवर्ष के पालन करने में महा बुद्धशाली और कर्मों की नष्ट करने में समर्थ ऐव भ्रमण भगवत् महावीर ने इस शासन में साधुओं के लिए तो पांच महाव्रत अथात् अहिंसा सत्य स्तेय, ब्रह्मचर्य, और अकिंचन को पूरा रूप से पालने की आज्ञा दी है और गृहस्थों के लिए कम से कम पांच अणुव्रत और सात शिष्टा व्रत यों वारह प्रकार से धर्म को धारण करना आवश्यकताय बताया है । य इस प्रकार है धूलाओ पाण्डुरायाओ येरमणु हिलत । परत त्रय ज वा का बिना अपराध क दस भाल कर द्वय यश माने की नियत से दिना न करना मुसायायाओ येरमणु जिस भाषा से अपनी पदा जाता हो और राज एव पचायत में अपनी र हो, ऐसी लोक विरुद्ध असत्य भाषा को तो कम से कम नहीं बोलना । धूलाओ अदिआदाओ येरमणु गुप्त रीति य क्लिप्त के घर में गुप्त कर, गाठ खोल कर, ताले पर छुनी लगा कर, लुट्टे का तरह या, आर भी किसी तरह की निवृत्त व्यवहार मान में भा लज्जा हो ऐसी धारा तो कम से कम नहीं करना । सदारसतोमि *

* महर्षि धर्म पालन करने वाली महिलाओं के लिए भी अपने कुल के अमयों की साक्षी से विकीर्णित पुरुष के सिवाय समस्त पुरुष वर्ग को पिता भ्राता और पुत्र के समान समझना चाहिए । और स्वपति के साथ भी कम से कम पंच तिथियों पर कुशील सेर्वन का परित्याग करना चाहिए ।

कुल के अपसरो की साक्षात् स राजके साथ विवाह किया है उस स्त्री क शिवाय अन्य स्त्रियों को माता एवं बहिन थार बेटी को निगाह से देखना और अपनी स्त्री क साथ भी कम से कम अष्टमी, चतुर्दशी, एकादशी, दश, पचमा, अमावस्या, पूर्णिमा के दिन का सम्भोग स्वाम करना । इच्छापरिमाण-खेत, वृष्ट, साना, चाँदा, धन्य, पशु, आदि सम्पत्ति का कम से कम जितनी इच्छा हो उतनी ही का परिमाण करना । ताकि परिमाण से अधिक सम्पत्ति प्राप्त करने का जालसा रुक जाय । यह भी गृहस्थ का एक धर्म है । गृहस्थ को अपने छठे धम के अक्षुमार, दिसिद्वय चारों दिशा और ऊँची नीची दिशाओं में गमन करने का नियम कर लेना । सातवें में उपभोगपरिमाण परिमाण-खान पीने की वस्तुओं की और पहाने की वस्तुओं की सीमा बाँटा। ऐसा करने से कभी वह लृप्ता के साथ भा विजय प्राप्त कर सता है । फिर उससे मुक्ति भी निकट आ जाती है । इसका विशेष विवरण यों है —

मूलः-इगाली, वण, साङ्गी,

माढी फोड़ी सुवज्जए कम्म ।

वाण्डज चेष य दत्त—

लवहरसकेसविसविसय ॥ २ ॥

छाया -अङ्गार चन शाटी,

भाटि स्फोटि सुवर्जपेत् कर्म ।

वाणिज्य श्रेय च दत्त —

दादा रस केश विप विपयम् ॥ २ ॥

अथवाय - इ इन्द्रमूर्ति । (इगर्जा) कोयल पक्ष
 याने का (बण) वन कटवाने का (साही) गाइये बनाकर
 बबो का (भाही) गाड़ी, घोड़ा, मत्त आदि सु भादा कम ने
 का (पादा) माने आदि सु वने का (कम्भ) कम गइरथ
 को (सुतज्जण) परेलाग कर दना चाहिए । (य) और
 (दत्त) हाथी दात का (लक्ष) लाख का (रस) मधु
 आदि का (केश) मुणों क्यूतरा आदि क बचन का (रस
 । वसय) उहर और शस्त्रे आदि का (वाणिज्य) व्यापार
 (विप) यह मा निरय ह्ये । गृहस्थों का छोड़ देना
 चाहिए ।

भाषार्थ - इ अर्थ ! गृहस्थ धर्म चलन करनेवालों को
 कोलपे तैयार करवा कर बेचन का या कुम्हार, लुत्तार, मद्
 भूजे आदि के काम मिलने महान् आका का आरम्भ होता है,
 नहीं करना चाहिए वन, मादा, कटवाने का ठेका बगइ
 लन का इह गाड़ी वगैरह तयार करा कर बेचन का,
 बैल, घोड़ कुट्ट आदि को भाद ५ । कराने का या इह गाड़ी
 वगैरह भाद फिरा करक आयापिन। कमाने का धार खाने
 आदि को सु वाने का कम आर्जीवन के लिए छोड़ देना
 चाहिए । और व्यापार सम्बन्ध में हाथी दात, चमड़ आदि
 का लाख का, मदिरा माइद आदि का, क्यूतरा बटेर, तोते,
 मुकद बकर आदि का, पल्लिया, वच्छनाग आदि । जनक खान

से मनुष्य मर जात है एव उदरों पशुओं का या लनगर, ब दूक, बाड़ी आदि का व्यवहार कम से कम टूटन धम पास्त करनेव ल का कभी भूल कर भा नहीं करना च हिए ।

मूल - एव सु जतपिल्लणकम्म, निह्लदण च दग्गण ।

सरदहततायसोस, अमदपोस च वालिजा ॥३॥

दाया एव अतु एवप्रणिःडनकर्म, गिलाउद्यन दवदानम् ।

सरदहततागशोय, अमयो पापम् न च नयेत् ॥३॥

अ यथाधं - हे इ द हति । (एव) इव प्रकार (सु) निधव करा (जतारक्षण) यने के द्वारा पशुओं को बाधा पहुँच एवा (१) और (निहदण) अष्टद्वेष पुत्रवन वा (दवगण) दामानल नगाने का (सरदहतता यधोय) सर, दह, तागाव की पात पादने वा (च) अर (अमदपोस) दा गि वरदा द के अणु वा (कम्म) कर्म (वालिजा) सि द दना च हिए ।

भाषाभाः दे गौतम । एते कई प्रकार के मनुष्य हैं कि निरक द्वारा पशुओं को अक्षयों का खे न भदन शाना दा, अक्षय य दिहो क बनो क प्रणियों को बाधा दा, यदि ऐम मय कर्षी धर्मो का मृदरव धन चलन करनेव लो का परिपालन कर देना च हिए और बल अ द को नपुगक अकार गयी करने का, शरानेउ पुत्रमान का, विना सोरा हई जगद वा पानी भरा हुआ हो एवा सर, एव सूव इही

पाना भरा हुआ हो ऐम द्रव तथा तालाब, बूया, धारदी आदि जिकके द्वारा बहुत से बीव पानी पीकर अपनी तृपा सुमते हैं । उनकी पाल फोड कर पानी निवाल देने का, दासी बरया आदि को व्यभिचार के निमित्त या चूड़ों को मारने के लिये बिल्ली आदि का पोषण करना, आदि आदि कम गृहस्त्री को जावन भर के लिए छोड देना ही सत्वा गृहस्थ धम है । गृहस्थ का आठवाँ धर्म अणुत्थदडवेरमण द्विसक विचारों, अनपकारी बातों आदि का परित्यग करना है । गृहस्थ का नावाँ धम यह है, कि सामाह्य दिन भर में कम से कम एक आंतर मुहूर्त (४८ मिनट) तो एकाचितावे कि शर से बिलकुल ही विरक्त हो कर उस समय वह आत्मिक गुणों को धि तवन कर सकें । गृहस्थ का दशवाँ धर्म है देसावगासिय जिन पदार्थों की छूट रक्खा है, उनका फिर भा त्याग करना और निर्धारित समय क लिए सांसारिक भौमटों मे प्रथक रहना । गृहस्थों धर्म यह है, कि पोसहोघचासे कम से कम महीमे भर में प्रत्यक अष्टमा चतुर्दशी पूर्णिमा और अमावस्या को पीपत्र करके अथात् इन दिनों में वे सम्पूर्ण सांसारिक भौमटों को छोड कर अहो रात्रि आध्यात्मिक विचारों का मनन किया करें । और चार

१—आगार

* The 11th vow of a layman in which he has to abandon all sinful activities for a day and has to remain in a Religious place fasting)

हवों गृहस्थ का धम यह है कि अतिद्विसय अस्सविभाग अपने घर आय हुए अतिथि का सस्कार कर उन्हें भोजन वे दत रह । इस प्रकार गृहस्थ का अपने गृहस्थ धम का पालन करते रहना चाहय ।

यदि इस प्रकार गृहस्थ का धर्म पालन करते हुए कोई उतास्य हा जाय और वह फिर आगे बढ़ना चाहे तो इस प्रकार प्रतिमा धारण कर गृहस्थ जीवन को सुशोभित करे ।

मूलः दमणवयसामाहयपोसहपडिमा य वम अचित्ते ।

आरभपेसउद्विद्ध वज्जए समणभूए य ॥४॥

ध्याय दशमवत सामायिक—

पौषधप्रतिमा च ब्रह्म अचित्तम् ।

आरभपेपणोद्विष्टवर्जक ,

अमणभूतश्च ॥ ४ ॥

अ-घयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (दमणवयसामाहय) पशन, मत, सामायिक, पडिमा (य) और (पोसह) पौषध (य) और (पडिमा) पाँचवीं न पाँच बतों का परित्याग वह कर (वम) ब्रह्मचय पाल (अचित्त) मचित्त का भोजन न करे (आरभ) आरभ त्यागे (पेस) दूसरों से आरम्भ करवाने का त्याग करना, (उद्विष्टवज्जए) अणु न लिए बनाने हुए भोजन का परित्याग करना (य) और नौवीं पडिमा में (समणभूए) साधु के समान वृत्ति को पालना ।

माथार्थ द गैतम । गृहस्य धम का ऊंचा पायरी पर उड़न की व्यवस्था प्रसार है — पहले अपना धडा की ओर दृष्टान्त करके बट देख लें, जैसे की बट्टा में कैंड भगता गीं है । इस तरह लगाता एक महान तक बट्टा का विषय में ध्यान पुस्तक अभ्यास बढ़ करता रहे । फिर उपर बढ़ दो मास तक पहले लिये हुए प्रथा को निमल रूप से पानने का अभ्यास बढ़ करे । तामरी पडिमा में तीन मास तक यह अभ्यास पर कि किसी भा जीव पर रागद्वेष के भावों को धहन आने दे । अगरे इस प्रकार अपना हृदय सामाजिक व्यवस्था ल । बाकी पडिमा में चार महीने म दृष्ट के हतास । पौषक कर । पाँचवा पडिमा में पाँच महीने तक हा पाठ बातों का अभ्यास करे । (१) पायरी में ध्यान करे (२) गृहकार्य + निमित्त हानन न कर, (३) रात्रि भोजन न करे (४) गौपथ के मित्राय धाम दिनों में दिनभय मद्रवय पाता, (५) रात्रि में मद्रवय की मयादा करता रह । छठी पडिमा में छ महीने तक रुच प्रसार से मद्रवय के पालन करने का अभ्यास बढ़ करे । सातवी पडिमा में सात महीने तक मरित भोजन न खाने का अभ्यास कर । अठवें पडिमा में आठ महीने तक स्व कोर्द आरम्भ न करे । नवें पडिमा में नौ महीने तक दूसरों में भी आरम्भ न करववे । दशमी पडिमा में दश महीने तक अपना लिए 'क्या हुआ' भोजन न खाव । अगरेहसे पाँच महीने अगरेह महान तक मधु क सुमा कक्याओ का पालन बढ़ करता रहे । शक्ति हा ता बालों का

लाच भी करे, नहीं शक्ति हो तो हजामत करवाले सुलो दण्टा का रजोहरण घमल में रखे । मुह पर मुँह पता बँधी हुई रखे । आर ४२ दायों को टाल कर अपने ज्ञाति वालों के यहाँ से भाजन लाव, इस प्रकार उत्तरातर गुण बढ़ाते हुए प्रथम पडिमा में एकान्तर तप करे और दूरी पडिमा में दो महाने तक बले बेल पारणा करे । इसी तरह ग्यारहवों पडिमा में ग्यारह महाने तक ग्यारह-ग्यारह उपवास करता रहे । अर्थात् एक दिन भाजन करे फिर ग्यारह उपवास करे । फिर एक दिन भोजन करे । यों लगातार ग्यारह का पारणा करे ।

इस प्रकार गृहस्थ धर्म पालते पालते अपने जीवन का अन्तिम समय यदि आ जाय तो अपचिद्धमा मरणतिथि आसलेदणा भूसणारादणा—सब रुसारिक व्यवहारों का सब प्रकार से अन्त के लिए परित्याग करके सधारा ३ (समाधि) धारण करले, और अपने स्वाम धम में किसी भी प्रकार का दोषापत्ति मूल से यदि हा गयी हो, ता आलोचक के पास उन बातों को प्रकशित कर दे । जो वे प्रायश्चित्त उसके लिए दें उसे स्वीकार कर अपनी आत्मा को निर्मल बनावे फिर प्राणी मात्र पर यों मैत्री भाव रखे ।

मूलः स्वामेहि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे ।

* [Act of meditating that a particular person may die in an undistracted condition of mind]

मिथी मे सत्वभूणसु, वेर मउक गु केणई ॥५॥

दाया क्षमयामि सर्वान जीवान्,

एषे जीवा क्षमन्तु मे ।

मैत्री मे सयभूतेषु

घेर मम ण केणापि ॥ ५ ॥

अ वयाध (सव्व) सब (जावा) जावों वों (सावेमि) क्षमाता हँ । (म) मुक (एव) सब (जवा) मय (समन्तु) क्षमा करा (सव्व भूणसु) प्राणा मात्र म (म) मरी (मिथी) मैत्री भावना ह (केणई) किमा क मा साथ (मउक) मेरा (वेर) वैर (ण) नही है ।

भाषार्थ -हे गौतम ! उत्तम पुरुष जो होता है वह सगद वदुषैक कुटुम्बकम् जैसी भावना मगता हुआ पांचा के द्वारा भी वों बोलैगा कि सब ही न व कथा छटे और बदे उन से क्षमा याचता हू । अतः व मेरे अपराध को क्षमा करें । चाहे निम जात व पुल का हा उन सभी म मेरी मत्री भावना है । मने ही वे मेरे अपराधी क्यों न हों, तभी उन जीवों क साथ मरा किसी भी प्रकार वैर विरोध नहीं है । वत्त, उसके लिए कि मुझे कुछ मा क्षु नहीं है ।

मूलः अगारिसामाहअगाइ, सड्डी काएण फासए ।

पोसह दुइथो पवख, एगराइ न हावए ॥६॥

दाया अगारीसामापिकाणानि,

अर्द्धी कायेन स्पृशति ।

पापघमुभयो पक्षयो ,

एकरात्र न हाययेत् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (सड्ढी) भ्रद्धावान् (आगारि) गृहस्थी (सामाङ्गगाइ) सामायिक के अर्गों को (काएण) काया के द्वारा (फामए) स्पश करे, और (दुइओ) दोनों (पक्ष्म) पक्ष को (पाठह) पापघ करन में । एगएइ) एक रात्रि की भी (न) नहीं (हावए) न्यूनता करे ।

भावार्थ - हे धाम्य ! जो गृहस्थ है, और अपना गृहस्थ धम पालन करता है वह भ्रद्धावान् गृहस्थ सामायिक भाव के अर्गों की अथात् सगता शान्ति आदि गुणों की मन, वचन काया के द्वारा अभ्यास के साथ अभिरुद्धि करता रहे । और कृष्ण शुक्ल दोनों पक्षों में कम से कम छ पापघ करने में ता न्यूनता एक रात्रि की भी कभी न करे ।

मूल - एव सिक्कासमावण्ये, गिहिवासे वि सुव्वए ।

मुच्चई छविपण्णो, गच्छे जक्खसलोगया ॥७॥

छाया - एव सिक्कासमावण्ये, गृहिवासेऽपि सुव्वत् ।

मुच्यते छवि पण्णो, गच्छेद्दयत्तसलोकताम् ॥७॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (एव) इस प्रकार (सिक्का समावण्ये) सिक्का से युक्त गृहस्थ (गिहिवासे वि) गृह

वास में भी (सुगन्ध) अच्छे व्रत वाला होता है । और वह अन्तिम समय में (हृदयव्याघ्र) चमड़ी और हड्डी वाले शरीर को (मुच्छद) छोड़ता है । और (अक्षयलोग्य) यज्ञ देवता के सदृश स्व-लोक को (गच्छे) जाता है ।

मायार्थ -हे गोत्रम ! इस प्रकार जो गृहस्थ अपने सगन्धार रूप गृहस्थ धर्म का पालन करता है, वह गृहस्था-धर्म में भी अच्छे व्रतवाला समान होता है । इस प्रकार गृहस्थ धर्म के पालन हुए यदि उसका अन्तिम समय भी आ जाय तो भी हड्डी, चमड़ी और मांस निर्मित इस औदारिक शरीर को छोड़ कर यज्ञ देवताओं के सदृश देवलोक को प्राप्त होता है ।

मूलः-दीहाडया इद्भिमता, समिद्धा कामरूपिणो ।

अधुणोववन्नसकाशा,भुञ्जे अच्चिभालिपभा ॥८॥

ध्याया -दीर्घायुषः ऋद्धिमत, समृद्धा कामरूपिण ।

अधुनेत्पन्नसकाशाः,भूयोऽर्चिमोलिमभा ॥८॥

अर्थ-मायार्थ -हे इन्द्रभूति ! जो गृहस्थ धर्म पालन कर स्वर्ग में आते हैं वे वहाँ (दीहाडया) दीर्घायु (इद्भिमता) ऋद्धिमान् (समिद्धा) समृद्धिशाली (कामरूपिणो) इच्छा सुधार रूप बनाने वाले (अधुणोववन्नसकाशा) मानो तरकाल

* External physical body having flesh, blood and bone.

ही जन्म लिया हो जैसे (भुज्जोश्चिमात्तिण्णमा) और अनेकों सूर्यों की प्रभा के समान देदीप्यमान् होते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! जो गृहस्थ गृहस्थ धर्म पालते हुए नीति के साथ अपना जीवन बितात हुए स्वर्ग को प्राप्त होते हैं, वे वहाँ दीषायु, श्रद्धिमान्, समृद्धिसाली, इच्छा नुरूल रूप बनाने की शक्तियुक्त तत्काल के जन्मे हुए जैसे, और अनेकों सूर्यों की प्रभा के समान देदीप्यमान् होते हैं ।

मूल:- ताणि ठाणाणि गच्छन्ति, सिक्खिता सज्जम तव ।

भिक्षाए वा गिहत्थे वा, जे सत्तिपरिनिब्बुडा ॥६॥

छाया - तानि स्थानानि गच्छन्ति,

शिक्षित्वा समय तप ।

भिक्षुका वा गृहस्था वा,

ये सन्ति परिनिवृत्ता ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूत ! (सत्तिपरिनिवृत्ता) शान्त के द्वारा चहुँ ओर से सताप रहित (जे, जो) भिक्षाए भिक्षु (वा) अथवा (गिहत्थे) गृहस्थ हों (सज्जम) समय (तव) तप को (सिक्खिता) अभ्यास करके (ताणि) उन दिव्य (ठाणाणि) स्थानों को (गच्छन्ति) जाते हैं ।

भावार्थ:- हे गौतम ! छमा के द्वारा सकल सतापों से रहित होने पर साधु हो या गृहस्थ चाहे जो हो, आति पाति का यहाँ कोई गौरव नहीं है । समी जीवन वाला धारै

तपस्यो हो नहीं सिद्ध स्वर्ग में जाता है ।

मूल. महिया उद्दमादाय, नाकश्चे कयाद् वि ।

पुत्रश्चमवस्यद्वाए, इम देह समुद्धरे ॥ १० ॥

श्या - घाणमूर्ध्वमादाय, तापकालेत् कदापि च ।

पूर्वकभक्षयार्थे, इम देह समुद्धरेत् ॥ १० ॥

अथयार्थ दे इन्द्रभूति ! (महिया) सत्तर स
बाहर (उद्द) ऊपर, एधे मात्त वा अभिलषा (अदाय)
अदण कर (कयाद् वि) कमी भो (नाकश्चे) विषयादे
सेवन की इच्छा न करे और (पुत्रश्चमवस्यद्वाए) पूर्व
अभित कर्मों को नष्ट करने के लिए (इम) इस (देह) मानव
शरीर को (समुद्धरे) निर्दोष वृत्ति से धारण करके रक्ष्य ।

मायायाः-हे गौतम ! सत्तर स परे जो मोक्ष है, उस
को लक्ष्य में रख कर क कमा भा कोइ विषयादि सेवन की
इच्छा न करे । और पूर्व के अनरु भवों में किये हुए कर्मों
को नष्ट करने के लिए इस शरीर का, निर्दोष आहारादि से
पालन पोषण करता हुआ अपने मानव जन्म को सफल
बनावे ।

मूलः दुल्लश उ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लश ।

मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छति योगदा ॥ ११ ॥

श्याः-पुल्लभस्तु मुधादायी,

मुधाजीव्यपि दुर्लभ ।

मुधादार्या मृधाजायो,

द्वावपि गच्छत सुगतिम् ॥ ११ ॥

भाषाथ - हे इन्द्रभूति ! (मुहादाइ) स्वार्थ रहित भावना से देने वाला व्यक्ति (दुल्लहा + दुलभ इ (उ और (मुहाजावा) स्वाथ रहित भावना से १३य हुए भोजन के द्वारा जीवन निवाह करने वाल (वि) भी (दुल्लहा) दुलभ है (मुहादाइ) एषा देने वाला और (मुहाजावी) ऐसा लेने वाला (दा वि) दानों ही (सोमण्ड) सुगति का (गच्छात) जाते हैं ।

अर्थ - हे मातम ! नाना प्रकार के एहेक सुख प्राप्त होने का स्वार्थ रहित भावना से जो दान देता है एषा व्यक्ति मित्रना दुलभ ही है । और देने वाले का किसी भा प्रकार मध्यम व काय ७ फरक उष से निस्वाथ ही भोजन प्रदण कर अपना जीवन निवाह करत हों एम महान् पुरुष भी कम हैं । अतएव बिना स्वर्ग से स देने वाला मुहादाइ क और निस्पृह भाव से लेने वाला मुहाजावी + दानों ही सुगत में जाते हैं ।

मूलः—सति फगेहिं भिक्खुहिं, गारत्था मजमुत्तरा ।

गारत्थेहिं य सन्नेहिं, साहये सजमुत्तरा ॥१२॥

*—Maintaining oneself without doing any service

+—Giving without getting any thing in return

दायाः सस्येकेभ्यो भिक्षुभ्यः,

गृहस्था समयमाचराः ।

अगारस्थेभ्य सर्वेभ्य

साधय समयमाचरा ॥ १२ ॥

अर्थार्थः-हे इन्द्रभूति ! (एगेहे) कितनेक (भिक्षुभ्यः) शिष्य साधुओं से ((गारस्था) गृहस्थ (सत्र मुत्ता) समयी जीवन विज्ञान में अटके (प्रति) होते हैं । (य) और (सस्येके) देश विरति वाले सब (गारस्थेभ्यः) गृहस्थों से (सत्रमुत्ता) निर्दोष समय पालन वाले अटके हैं ।

भाषार्थः-हे आर्य ! कितनेक शिष्याचारी साधुओं से गृहस्थ धर्म पालने वाले गृहस्थ भी अटके होते हैं । जो अपने नियमों को निर्दोष रूप से पालन करते रहते हैं । और निर्दोष समय पालने वाले जो साधु हैं, वे देश विरतिवाले सब गृहस्थों से बढ़कर हैं ।

मूल* - चीराजिण नगिण्णिण, जड्डी सघाटि मुडिण्णि ।

एयाण्णे वि न ताइति, दुस्सील परिआगय ॥ १३ ॥

छाया - चीराजिन नगत्थ जटिरथ सघाटिरथमुएडरथम् ।

एताएयपि न प्रायन्ते दु शील पर्यायगतम् ॥ १३ ॥

अर्थार्थ - हे इन्द्रभूति । (दुस्सील) दुराचार वा धारक (चीराजिण) केवल बरकल और चर्म के धारण वाले (नगिण्णिण) नाम अक्षरधारक (जड्डी) जटाधारी (सघाटि)

वस्त्र क टुकड़े साँध साँध कर पहनने वाला (मुट्टिण) कसों का मुहन या लोब करन वाला (पयाण) य सब (परिया गय) दीक्षा धारण कर के भी (७) नहीं (तादृति) राक्षत होता है ।

भावार्थ -ह गौतम !, सयमी जावन विनाय बिना वेवल दरतों भा छाल के वस्त्र पहनने म । कसों रिस्म क चम क वस्त्र पहनने से, अथवा नग रहने म, अथवा जटाधारण करने से, अथवा फट टूटे कपड़ों के टुकड़ों को साँध कर पहनने से, और कसों का मुण्डा व लावन करने से कभी मुक्ति नहीं होती है । इष प्रकार भले हा वह मानु पहलाता हो, पर वह दुराचारी न ता अपना स्वत का रक्षण कर पाता है, और न औरों ही का । अत स्व पर वलगाण के लिए शारा सम्यक् चापिश का पालन करना ही प्रयत्नर है ।

मूलः-अत्यगमि आदृच्ये, पुरत्या य अणुगण ।

आहारमाइय सव्य, मणसा वि न पत्थए ॥१४॥

छाया अस्तगत आदित्ये पुरस्ताच्यानुद्गते ।

आहारमादिक सर्वे, मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ॥१५॥

अ वयाध -हे ऋभूत ! (आदृच्ये) सूर्य (अत्य गमि) अस्त होने पर (य) और (पुरत्या , पूर दिशा म (अणुगण) उदय नहीं हा वहा तक (आहारमाइय) अहार आदि (रा व) सकसो (मणसा) मन स (वि) गा (न) न पत्थए) चाहे ।

भाषाया—ह गौतम ! त्वय अस्त होन के पश्चात् जब तक फिर पृथ दिशा में त्वय उदय न हो जाय उप के वाचक समय में सूर्य सब तरह के पद अपेय पदार्थों को खाने पाने की मन में भावना इच्छा न कर ।

मूल - जायस्व जहामह, निद्वतमलपावग ।

रागदोसभयातीत, त वय वूम माहण्य ॥१५॥

श्रुत्या जातरूप यथाभ्रष्ट विद्यातमलपावकम् ।

रागद्वयभयातीत, त वयम् वपा ब्राह्मणम् ॥१५॥

अवयवार्थ ० हे गौतम ! (जहा) जग (मह) कर्मों पर कसा हुआ श्रुति (निद्वतमलपावग) श्रुति से भ्रष्ट किया हुआ मल को विनाश ऐसा (जायस्व) सुवर्ण गुण युक्त होता है । वैसे ही जो (रागदोसभयातीत) राग, द्वेष और भय से रहित हो (त) उसका (वय) इस (माहण्य) ब्राह्मण (वूम) कहते हैं ।

भाषाया हे गौतम ! जिन प्रकार कर्मों पर कसा हुआ एवं श्रुति के ताप से दूर हो गया हुआ मल विनाश ऐसा सुवर्ण का वास्तव में सुवर्ण होता है । इसी तरह निमाह और शांति रूप कर्मों पर कसा हुआ तथा ज्ञान रूप श्रुति से विनाश राग द्वेष रूप मल दूर हो गया है उपा का हम ब्राह्मण कहते हैं ।

मूलः तवस्त्रिय किंस दत, अवचियमससोणिय ।

मुव्वय पत्तनिव्वाण, त वय वूम माहण ॥ १६ ॥

छाया -तपस्विन कृश दान्त,

अपाचतमास शाणितम् ।

सुवत प्राप्त निर्वाण,

त वयम म्मो ब्राह्मणम् ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः-हे इ द्रमृति ! जो (तवस्मिन्) तपस्या करने वाला हो, जिससे वह (केश) दुर्बल हो रहा हो (दन्त) इन्द्रियों को दमन करने वाला हो, जिससे (अवधि यमसत्तोषिणश्च) सुख गया है मौंस और पुन जिसका, (मुव्वय) मत नियम से दर पालना हो (पत्तनिव्वाण) जो तृष्णा रहित हो (त) उसको (वय) हम (माहण) प्राण (वूम) कहते हैं ।

भाषाथ हे गौतम तप करने से जिसका शरीर दुर्बल हो गया हो, इन्द्रियों का दमन करने से लाहू, मौंस जिसका सुख गया हो, वन नियम का सु दर रूप से पालन करने के कारण जिसका स्वभाव शांत हो गया हो, उसको हम ब्राह्मण कहते हैं ।

मूल,-जहा पोम जले जाय, नोवलिप्यइ वारिणा ।

एव अलित्त कामेहि, त वय वूम माहणा ॥ १७ ॥

छाया -यथा पद्म जले जातम्, नोपलिप्यते वारिणा ।

पयमलिप्त कामे, त वयम् म्मो ब्राह्मणम् ॥ १७ ॥

अवयवाद्यं - हे इद्रभूत ! (जहा) जैसे (पोम)
 वमन (जम) जल म (जाय) उत्पन्न होता है तो मं
 । वारिणा) जल से (नेत्रनिष्पद्) यह लित नदी होता
 है (एव) एत ही ना (कामेदि) काम भागों म (अलित
 अलित ह (त) उद्यका (वय) इह (मद्रण) मद्रण
 करते हैं ।

आषाभ हे माँतम ! जैसे कमल जल में उत्पन्न होता
 है पर जल से सदा अलित रहता है, इसी तरह कामभागी
 ने उत्पन्न होने पर भी विषय वाचना भवत ए वा सग द
 रहता है वह विद्या भा ज्ञात व काम का वयो न हा हम
 उही का मद्रण कहत है ।

मूल - न वि मुद्रिण्य समणो, न श्रौचारेण वमणो ।

न मुणी रणवासेण, कुस चारेण न तावसो ॥१८॥

श्रौचा - नाडि मुद्रित्तन धमणा

न श्रौचारेण मद्रणः ।

न मुनि एवामेन

कुशचारेण न तावस ॥१८॥

अवयवाद्यं - हे इद्रभूत ! (मुद्रिण्य) मुद्रन म
 लायन करन स (समणो) धमण (न) नहीं होता है ।
 श्रौचारेण (श्रौचारेण) श्रौचारे शब्द मात्र जब सन से (वमणो)
 कौद मद्रण (वि) भा (न) नहीं हो सकता है । इसी
 तरह (रणवासेण) अटवी में रहने स (मुणी) मुनि

(न) नहीं हाता है । (कुसचारेण) दर्भ के बस्त्र पहनने से तावथा) तपस्वी (न) नहीं हाता है ।

भाषार्थ है गौतम ! कवन अमर मुडान म या लोचन मात्र करन से ही कोई साधु नहा बन जाता है । और न श्रौंकार शब्द मात्र के रटन से ही कोई ब्राह्मण हो सकता है इसा तरह केवल सधन अटवा में निवास कर लन से ही कोई मुनि नहीं हो सकता है । और न कवन घास विशेष अर्थात् दभ का कपडा पहन लन से तपस्वी बन सकता है ।

मूलः-समयाए समणो ढोई, बभचरेण बभणो ।

नाणेण य मुणी ढोइ, तवेण हइ तावसो ॥१६॥

छाया -समय या श्रमणो भवति ब्रह्मचर्येण साधुण ।

ज्ञानेन च मुनिर्भवति तपसा भवति तापसा ॥१६॥

अन्वयार्थ है इ द्रभूते ! (ममयाण) शत्रु और मित्र पर समभाव रखने से (समण) श्रमण साधु (ढोइ) होता है । (बभचरेण) ब्रह्मचर्य अत पालन करन से (बभणो) ब्राह्मण हाता है (य) और इसी तरह (नाणेण) ज्ञान सम्पादन करने से (मुणी) मुनि (ढोइ) होता है, एव (तवेण) तप करने से (तावथा) तपस्वी (ढोइ) होता है ।

भाषार्थ है गौतम ! सब प्राणा मात्र, फिर चाहे वे शत्रु जैसा वृत्ताव करत हा या मित्र जमा, ब्राह्मण, थ पाक,

चाहे जो व्यक्ति हों, उन सभी को समदृष्टि से आदरना हो, वही माधु है। मन्त्रवच्य का पालन करने वाला किसी भी काम या दा, यह मन्त्रवच्य ही है, इसी तरह सम्यक् ज्ञान सम्पादन कर के उसके अनुसार प्रवृत्त करने वाला ही गुणि है। ऐदिक गुणों की बाँझा सहित बिना किसी भी कष्टिय जो तप करता है, वही तपस्वी है।

मूलः—कम्मुणा वमणो होइ, कम्मुणा होइ खणिसी ।

कम्मुणा वइसो होइ, सुदो दवइ कम्मुणा ॥२०॥

दाया कर्मणा प्राप्नोति भवति

कर्मणा नयति क्षत्रिय ।

वैश्य कर्मणा भवति,

शूद्रो भवति कर्मणा ॥२०॥

अथवाच्य है इन्द्रभूते । (कम्मुणा) क्षमादि अनुष्ठान करने से (वमणो) मन्त्रवच्य (होइ) होता है और (कम्मुणा) पर पीडाहरन व रक्षदि कार्य करने से (गतिथो) क्षमा (होइ) होता है । इसी तरह (कम्मुणा) नामित पुरुषक व्यवहार कम करने से (वइसो) वरय (होइ) होता है । और (कम्मुणा) दूसरों को कष्ट पहुँचाने रूप कार्य ओ करे वह (सुदो) शूद्र (दवइ) होता है ।

आथार्थ है यौतम । चाहे जिस जानि व कुल का मनुष्य क्यों न हो, जो क्षमा, सत्य, शील तप आदि सदानुष्ठान रूप कर्म का कृत होता है, वही प्राप्नोति है। केवल

छाया तिलक कर लेने से ब्राह्मण नहीं हो सकता है । और जो भय दुःख, आदि से मनुष्यों को मुक्त करने का काम करता है, वही क्षत्रिय अर्थात् राजपूत्र है । अन्याय पूर्वक राज करन से तथा शिफार खेलने से कोई भी व्यक्ति क्षत्रिय नहीं बनता । इसी तरह नीति पूर्वक जो व्यापार करने का काम करता है वही वश्य है । नापने, तौलन लेन दान, आदि सभी में अन्याय पूर्वक व्यवहार कर लेन मात्र से कोई वश्य नहीं हो सकता है । और जो दूसरों का सत्ताप पहुँचाने वाले ही कर्मों का करता रहता है वही शूद्र है ।

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥



ॐ

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय आठवा)

ब्रह्मचर्य निरूपण

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूल आनया थीजणा, एणो, थीकडा य मनोरमा ।
सथरो चैव गरीण, तेसि इदियन्निरण् ॥१॥
वृद्धश्च रुद्धश्च गीत, हासभुक्तानिमापि च ।
पण्णाथ भक्तपाथ च, अइमाय पाणभोजण् ॥२॥
गत्तभूषणमिष्ट च, कामभोगा य दुःखया ।
नरस्सत्तमवेसिस्स, निह तालउड जहा ॥ ३ ॥

ध्याया आलय स्त्रीजगतीर्ण, स्त्री कथा च मनोरमा ।
सस्तवधव गरीणाम्, तासांमिष्टियदशनम् ॥१॥
कृजित रुदित गीत, हास्यभुक्तानिमापि च ।
प्रणीत भक्तपा । च अतिमात्र पाणभोजनम् ॥२॥
मात्र भूषणमिष्ट च, कामभोगाश्च दुर्जया ।
गरस्यात्मगवेपिण्, विप तालपुट यथा ॥ ३ ॥

अचयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (चीजणागणो) त्वा
 उन सहित (आलश्या , मकान में रहना (य) आर
 (मणोरमा) मन रमणीय (चीमहा) स्या कथा रहना
 (चेर) और (नारीण) स्त्रिया के (पथवा) सस्नव
 अर्थात् एफ अ सन पर बैठना (चय) और (तेसि) मियों
 न (इदियदरिषण) अज्ञेपाज्ञ देसना, ये ब्रह्मचारियों के
 लिए निषिद्ध है । (अ) और (इदथ) कुंभिन (इदथ)
 रुदिन (गीथ) गीत (हास) हास्य वगैरह (भुतासि
 आणि) स्त्रियों के साथ पूव में जो काम प्रथा की ह उसका
 स्मरण (च) और नित्य (पणाय) दिनम्भ (भत्तण)
 आहार पानी एव (अदमाय) परिमाण से अधिक (पाण
 भोअण) आहार पानी वा खाना पीना (य) आर (इट्ट)
 प्रियकारी (गत्तभूषण) शरार शुध्दुषा विभूषा करना ये
 सब ब्रह्मचारी के लिए निषिद्ध हैं । कथोकि (दुज्जया)
 जातने में कठिन ह ऐमे य (कामभोगा) कामभोग (अत्त
 गवेमिस्म) आत्मगवपी ब्रह्मचारी (नरस्स) मनुष्य क
 (तालउड) तालपुट (विम) जहर क (जहा) समाग ह ।

भावार्थ - हे गौतम ! त्वा य नपुसक (होनहे) जहा
 रहत हों वहा ब्रह्मचारी को नहीं रहना चाहिए । मियों की
 कथा का रहना, स्त्रियों के आसन पर बैठना, उन के अगो
 पाज्ञों को देसना, गीत, प्रेर, टाटी के अ तर पर स्त्री पुरुष
 सोते हुए हों वहा ब्रह्मचारा को नहीं सोना चाहिए । और जो
 पूव में स्त्रियों के साथ काम प्रथा की है उसका स्मरण करना,

नियमति गिनन्तु भोजनं कर्ता, परिमाणं ये अघिह भोजनं
करन्त, एव शरीरं वा पुष्पं विभूषा कर्ता ये नव वृक्षं वा
मयों के लिए नियम है । क्योंकि ये दुखी काम भोग मद्र
चास के लिए तान्त्रिक शरीर के समान होते हैं ।

मू० - जटा कुक्कुटभोजस्य, निचव कुल्लभो भय ।
एव तु भग्यारिस्त, इत्थोविगदथा भय ॥४॥

एतान् यथा कुक्कुटपोतस्य, नित्यं कुल्लभता भयम् ।
एव यत्तु मद्रवारिण, स्त्रीविगदतो भयम् ॥ ४ ॥

अथार्थ - हे शरीर ! (नव) नव (कुक्कुट
पोतस्य) मुझों के शरीर का (लेहन) भोजन (कुक्कुट)
विषय में (भय) भय रहता है । (एव) इसी प्रकार (तु)
नियम करके (भग्यारिस्त) मद्रवारियों का (इत्थोविगदथा)
सा शरीर से (भय) भय बना रहता है ।

भाषार्थ - हे शरीर ! मद्रवारियों के लिए नियमों को
नियम जगित धानाजान तथा शरीरों का भोजन करना अति-
यो नियम निया है वह बनिए है । क जैसे मुझों के शरीर
को सदैव निजा से प्राणवन का भय रहता है अतः अतः
जान रक्षा के लिए वह उचित बनता रहता है । उभा तरह
मद्रवारियों को स्त्रियों के शरीरों में जान मद्रवारों के नेत्र होने
का भय सदा रहता है । अतः उन्हें शरीरों से सदा भयदा दूर
रहना चाहिए ।

मूलः—जहा विरालावसहस्स मूले,
 न मूमगाण वसही पसत्था ।
 एमेव इत्थीनिलयस्स मज्जे,
 न बम्भयारिस्स गमो निवासो ॥ ५ ॥

श्याया -यथा विडालावसथस्य मूले,
 न मूपकाणा चसति प्रशस्ता ।
 एवमेव स्त्रीनिलयस्य मध्ये,
 न ब्रह्मचारिण क्षमो निवास ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (जहा) जैसे (विराला
 वसहस्स) बिलावों के रहने के स्थान के (मूले) मगपा
 में (मूमगाण) चूड़ों का (वसही) रहना (पसत्था)
 अच्छा बन्धाण कर (न) नहीं है (एमेव) इसी तरह (इत्था)
 निलयस्स स्त्रियों के निवास स्थान के (मज्जे) मध्य में
 (बम्भयारिस्स) ब्रह्मचारियों का (निवासो) रहना (क्षमो)
 योग्य (न) नहीं है ।

भाषार्थ हे श्याय ! जिस प्रकार बिलावों के निवास
 स्थानों के समीप चूड़ों का रहना बिल्कुल योग्य नहीं अर्थात्
 उत्तरनाक है । इसी तरह स्त्रियों के रहने के स्थान के समीप
 ब्रह्मचारियों का रहना भी उनके लिए योग्य नहीं है ।

मूलः—इत्थपावपडिद्धिन्न, कन्ननासविगप्पिअ ।
 अवि वाससय नारिं, वमयारी धिवज्जए ॥६॥

दा ॥ - दस्नपादप्रतिच्छिद्र्या
 कर्णनासाधिहृदिपताम् ।
 वर्षशुक्तिशामपि नारी,
 मन्त्रवारी चित्रजयेत् ॥ ६ ॥

अन्वयाद्य - हे इन्द्रभूति ! (दस्यपादपडिच्छिद्र) दाघ
 पाँच छेदे हुए हों, (कर्णनासाधिवर्षशुक्ति) कान, नासिका
 चिह्नित अक्षर के हों ऐसी (वाद्यमय) शौ वर वाली (शार)
 भी (नारी) या का समय (बभयारा) मन्त्रवारी (वज्रए)
 छेदके ।

माथार्थ - हे गौतम ! तमके हाथ पैर बटे हुए हों
 कान तक सराव अक्षर कान हो, और अस्त्र म सौ वर्ष
 वाली हो, तो भी ऐसी या क छेद समय परिवर्ष करना,
 मन्त्रवारी के लिए परित्या य है ।

गूढ - यमपचगसठाण्य, चारुल्लविश्रपेहिथ ।
 इत्थीण्य त न निज्झाए, कामरागविबद्दण ॥ ७ ॥

६/७ - अङ्गप्रत्ययमस्थान,
 चारुल्लपितमेक्षितम् ।
 स्त्रीणा तन्न निध्यागेत्,
 कामरागविवध्नम् ॥ ७ ॥

अन्वयाद्य - हे इन्द्रभूति ! मन्त्रवारी (कामरागविव
 द्दण) काम राग आदि को बढ़ाने बाल एगे (इत्थीण्य) स्त्रियों

के (त) त मवर्धी (अणवचनगणठण)धिर नयन आदि आकार प्रकार और (चाम्बुविश्रोगेहिथ) सुन्दर बोलने का ढंग एव नयनों क कटाक्ष व एण की आर (गोन (निजगाए)देखे ,

प्रार्थ - हे गौतम ! ब्रह्मचारियों को रामराम वगन वाले जो स्त्रियों के हाथ पाँव, आँ व नाक, मुँह आदि के आकार प्रकार है उनको और, एव स्त्रिया के सु दर बोलने की ढंग तथा उनक नयनों के तीक्ष्ण बाणों की और कदारि न देखना चाहिए ।

मूलः—णो रक्वसीसु गिजिभुज्जा,

गणवच्छ्यासु ऽणमचितासु ।

जाथो पुरिस पलोभिता,

खेलति जहा वा दासेहिं ॥८॥

छाया - न राक्षसीसु शृभ्येत् ,

गणवच्छ्यासु ऽणमचितासु ।

या पुंस्य प्रलोभया ,

क्राडति यथा दमैरिध ॥८॥

अ प्रार्थ - हे इन्द्रभूते ! ब्रह्मचरी को (गणवच्छ्यासु) पक्षे के समान वक्षस्पल जाती (अणमचितासु) चंचल चित्त वाली (रक्वसीसु) राक्षसी स्त्रियों में (णो) नहीं (गिजिभुज्जा) शृद्धि होना चाहिए, क्योंकि (जाथो) जात्रया (पुरिस) पुंस्य का (पलोभिता) प्रलोभित कर के

(अहा) जगे (दाधदि) दास की (वा) तरह (खेलाते) प्रीड़ा कराता है ।

भाषार्थ - हे गौतम । ब्रह्मचरियों को फौद के समान स्तनवाला, एवं चल बिल्वाली, ओ बाँते ता किमी दूगरे से कर, और देखे दूगरे ही का और ऐसा अनक बिरा वाली राक्षसियों के समान त्रिया में कभी आसक्त नहीं होना चाहिए । क्योंकि ये त्रिया मनुष्यों को विषय वासना का प्रबोधन निखा कर अपना अनेक आराध्यों का पालन कराने में ल हे दासों की भांने दरगिरा रगती हैं ।

मूत्र. - भोगामिषदोषविसन्ने,

द्वियनिस्सेयसमुद्धिवोच्चत्थे ।

बाले य मदिए मूत्रे,

कज्जई गच्छिया व खेलाभि ॥६॥

ध्या - भोगामिषदोषविषण्ण,

द्वितनिधेयसमुद्धिविषयस्त ।

वालक्ष म दो मूठ,

वध्यते माक्षिके व श्लेष्मणि ॥ ६ ॥

अ वयार्थ हे इन्द्रभूति । (भोगामिषदोषविसन्ने) भोग रूप माँस जो आत्मा को दुषित करने वाला दोष रूप है, उस में आसक्त होने बाल तथा (द्वियनिस्सेयसमुद्धिवाचत्थे) द्वित कारक जो मोक्ष है उसको प्राण करत की ज बुद्धि है

उस से विपरीत वर्ताने करने वाला (व) और (भद्रिण)
 धर्म क्रिया में आराम (मूढे) मोह म लिप्त (बाले) ऐसे
 धर्मता जाव जर्मों म बध जाते ह और (येलम्भि)
 श्लेष रफ में (मच्छिद्रा) मन्त्री की (व) तरह (उजर्ई)
 पैप जाते ह ।

भाषार्थ - हे गौतम ! विषय वासना रूप जो मास है,
 यही आत्मा का दूषित करने वाला रूप रूप है । इस म आ
 सक्र होने वाले, तथा हितकारा जो मोह है उस के साधन
 की युद्धि से विमुख, और धम करने में आलसी तथा मोह
 में लिप्त हो जाते वागे अज्ञानी जन अमन गाट जर्मों में उस
 मन्त्री श्लेष (वफ) में लिप्त जाती ह वैसे ही पैप
 जाते ह ।

मूत्र मल्ल कामा' विस कामा, कामा आसीविसेवमा ।
 कामे पत्येभाणा, अकामा जति दुग्गह ॥१०॥

छायाः-शुच्य कामा विप कामा ,

कामा आशीविपोपमा ।

कामान् प्रार्थयमाना ,

अकामा याति दुर्गतिम् ॥ १० ॥

अन्वयार्थ - हे शूद्रभूत ! (कामा) काम भाग
 (सल) सटे के समान ह (कामा) कामभाग (विस)
 विप के समान है (कामा) कामभाग (आसीविसेवमा)
 दृष्टे विप सर्व के समान है, (कामे) कामभागों की (पत्ये

माणा) इच्छा करन पर (अहमा) विना ही विषय वासना
गेवन निय यह च व (दुग्द) दुग्ति को (अनि) प्र ।
होता ह ।

भावार्थ हे आथ । य, काम भोग तुमो वने
तीक्ष्ण वट्टि के समान है, विषय वागता का करन करना
तो बहुत ही दूर रहा, पर उगता इच्छा मात्र करन ही में
मनु यों का दुर्गाति हाती ह ।

मून* - मृगमेतमुक्त्वा बहुकारदुक्त्वा,

पगामदुक्त्वा अनिगाममुक्त्वा ।

ससारमोक्षस्य विपक्षभूता,

साथी अणुत्थाणु उ कामभोगा ॥११॥

क्षया क्षणमात्रसौरया बहुकालदुक्त्वा,

प्रगामदुक्त्वा अनिगामसाम्प्रया ।

मसारमोक्षस्य विपक्षभूता,

प्रानिरनयाता तु कामभोगा ॥ १२ ॥

अ यथाथ हे इद्रभूति ! (कामभोगा) मे काम
भोग (मृगमेतमुक्त्वा) क्षण भर मुन ही वाले हैं, पर
(बहुकारदुक्त्वा) बहुत काल तक के लिए दुःख रूप है
जात है । अत य विषय भोग (पगामदुक्त्वा) अत्यंत दुःख
दाने वाले और (अनिगाममुक्त्वा) अत्यंत सुख के दाता
है । (मसारमोक्षस्य) मसार से मुक्त होने वाले को

ये (त्रिपक्षभया) त्रिपक्षभूत अर्थात् शत्रु के समान है ।
और (अणुत्थाण) अनर्थों की (म्वाणी उ) खदान के
समान है ।

भावार्थ है गौतम ! ये काम भोग केवल सेवन
करत समय ही क्षणिक सुखों के देने वाला है । अगर भविष्य
में वे बहुत असें तर दुखदाया होते हैं । इसलिए हे गौतम !
ये भोग अत्यन्त दुःख के कारण हैं, सुख जा इनके द्वारा
प्राप्त होता है वह तो अत्यल्प ही होता है । फिर ये भोग
सघार से मुक्त होने वाले के लिए पूरे पूरे शत्रु के समान
होते हैं । और सम्पूर्ण अनर्थों को पैदा करने वाले हैं ।

मूत्रः—जहा किंपाकफलाण, परिणामो न सुदरो ।

एव भुक्ताण भोगाण, परिणामो न सुन्दरो ॥ १२ ॥

छाया - यथा किंपाकफलानां,

परिणामो न सुन्दर ।

एव भुक्ताना भोगानां

परिणामो न सुन्दर ॥ १२ ॥

अ-यथाथ - हे इन्द्रभूति ! (जहा) जैसे (किंपाकफलाण)
किंपाक नामक फलों के खाने का (परिणामो) परिणाम
(सुन्दरो) अच्छा (न) नहीं है (एव) इसी तरह (भुक्ताण)
भोगे हुए (भोगाण) भोगों का (परिणामो) परिणाम
(सुन्दरो) अच्छा (न) नहीं होता है ।

भावार्थ - हे श्याम ! किंपाक नाम के फल खाने में

म्यादिष्ट, रूपने में सुगन्धित, और आकार प्रकार से भा मनोहर होते हैं तथापि खान के बाद वे फल हलाहल खहर का काम करते हैं । इस तरह ये भोग भी भोगते समय तो क्षणिक सुख को द देते हैं । परन्तु उस के पश्चात् ये चौरासों की शक्फे। म दुखों का समुद्र रूप हो सामन आड़े आ जाते ह । उस समय इस आत्मा को बड़ा ही परतप करना पड़ता है ।

मूलः-दुपरिच्यया इमे कामा,

नो सुजटा अधीरपुरिसेहि ।

अह सति सुव्वया साहू,

जे तरति अतर वणिया वा ॥ १३ ॥

श्लोका -दु परित्याज्या इमे कामाः,

न मुत्यन्ना अधीरपुरुर्यै ।

अथ सति सुव्वता साघघ,

ये तरत्यतर वणिकेनैव ॥ १३ ॥

अ वयार्थ हे इन्द्रभूति । (इम) ये (कामा) कामभोग (दुपरिच्यया) मनुष्यों द्वारा बड़ा हा बठिता से छूटने वाले हात हैं, ऐसे भोग (अधीरपुरिसेहि) कायर पुरुषों से तो (नो) नहीं (सुजटा) सुगमता से छोड़े आ सकत हैं । (अह) परन्तु (सुव्वया) सुमत वाले (साहू) अच्छे पुरुष आ (सति) हाते हैं (जे) ये

(अतर) तिरने म कठिन ऐसे भव समुद्र को भी (वणियों) वणिक की (वा) तरई (तरति) तिर जाते हैं ।

भाषार्थ - हे गौतम ! इन काम भोगों को छोड़न में जब बुद्धिमान् मनुष्य भी बड़ी कठिनाइया उठाते हैं, तब फिर कायर पुरुष ता इन्हें सुलभता से छोड़ ही कैसे सकते हैं । अत जो गूरवीर और धीर पुरुष होते हैं, व ही इस काम भोग रूपी समुद्र के परले पार पहुँच सकते हैं, उसी प्रकार समय आदि व्रत नियमों का धारणा करने वाले पुरुष ही ज्ञानवय रूप जहाज के द्वारा ससार रूप समुद्र के परले पार पहुँच सकते हैं ।

मूल - उवलेवो होइ भोगेषु,

अभोगी नोवलिप्यई ।

भोगी भमइ ससारे,

अभोगी विप्यमुच्चई ॥ १४ ॥

छाया - उपलेपो भवति भोगेषु,

अभोगी नोपलिप्यते ।

भोगी भ्रमति ससारे,

अभोगी विप्रमुच्यते ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (भोगेषु) भोग भोगने में कर्मों का (उवलेवो) उपलेप (होइ) होता है । और (अभोगी) अभोगी (नोवलिप्यई) कर्मों से लिप्त नहीं

होता है । (भोगी) विषय सेवन करने वाला (सघारे) सघार में (भगद) भ्रमण करता है । और (अमोगी) विषय सेवन नहीं करने वाला (विष्णुचर्ह) कर्मों से मुक्त होता है ।

भाषाार्थ - हे गौतम ! विषय वासना सेवन करने से आत्मा कर्मों के बंधन से बंध जाती है । और उसको त्यागने से वह अलिप्त रहती है । अतः जो काम भोगों को सेवन करता है वे सघार चक्र में मोता लगत रहते हैं, और जो इन्हें त्याग देते हैं वे कर्मों से मुक्त हो कर अटल सुखों के धाम पर जा पहुँचते हैं ।

मूल.-मोक्षमिक्खिस्स वि माणवस्स,

ससारभीरुस्स ठियस्स धम्मो ।

नेयारिस्स दुत्तरमत्थि लोप,

जदित्थिओ बालमणोदराओ ॥१५॥

ह्यया मोक्षाभिकाक्षिणोऽपि मानवस्य

असारभारो स्थितस्य धर्मे ।

नैतादृश दुस्तरमस्ति लोके,

यथा त्रियो बालमनोदरा ॥१५॥

अ धर्मार्य - हे इन्द्रभूति ! (मोक्षमिक्खिस्स) मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले (ससारभीरुस्स) ससार मनुष्य मरण करते म डरने वाले और (धम्मो) धर्म से

(अठ्यस्र) स्थिर है आत्मा जिनकी ऐसे (माणवम्स) मनुष्य को (वि) भी (जहा) जैसे (बालमणोहराओ) गूर्वों के मन को हरण करने वाली (इतिष्ठा) स्त्रियों से दूर रहना कठिन है, तब (एयारिस) ऐसे (लोए) लोक में (दुत्तर) विषय रूप समुद्र को लाघ जाने के समान दूसरा कोई कार्य कठिन (न) नहीं (अतिथि) है ।

भाषाथ - हे गौतम ! जो मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं, और जन्म मरणों से गयभीत होते हुए धर्म में अपने आत्मा को स्थिर किये रहत है, ऐसे मनुष्यों को भी गूर्वों के मनरजन करने वाली स्त्रियों के कटाक्षों को निष्कन करने के समान इस लोक में दूसरा कोई कठिन कार्य नहीं है । तात्पर्य यह है कि समयमा पुरुषा को इस विषय में सदैव जागरूक रहना चाहिए ।

मूलः-एष य सगे समइकमिच्छा,

सुदुत्तरा चैव भवति सेसा ।

जहा महासागरमुत्तरिच्छा,

नदी भवे अवि गगासमाणा ॥१६॥

ध्याया एतांश्च लगान् समतिक्रम्य,

सुखोत्तराश्चैव भवन्ति शेषा ।

यथा महासागरमुत्तीर्य,

नदी भवेदपि गगासमाना ॥१६॥

अ यथायं:-हे इ द्रभूति ! (एए य) इय (सने)
 स्त्री प्रसंग को (समझामिता) छुड़ने पर (खेसा) अर
 शेष धनादि का छोड़ना (खेव) निश्चय करके (सहुदार)
 सुगमता से (भवति) दाता है (जहा) जैसे (महासागर)
 मोटा समुद्र (उत्तरिता) तिर जाने पर (गगासमाणा) गगा
 के समान (नद्) नदी (अथ) भी (भव) सुख से पार
 की जा सकती है ।

भाषार्थ -हे इन्द्रभूति ! जिसने स्त्री सभाग का परि
 त्याग कर दिया है उसको अवश्य धनादि के त्यागने में कंठ
 भी कठिनाई नहीं होती, अर्थात् राघ ही वह दूरे पर जाँ से
 भी आसग ही सकता है । जैसे कि महासागर क पार
 पार जाने वाले के लिए गगा नदी का लापना कोई कठिन
 कार्य नहीं होता ।

मूल.-कामगुणिद्विप्रभव सु दुवस,

सवसस लोगसस सदेवगसस ।

ज काइअ माणुसिअ च किंवि,

तससतग गच्छइ वीयरागो ॥ १७ ॥

धा ॥ -कामानुगुणिप्रभव सु दु व,

सवसस लोकसस सदेवकसस ।

यत् कायिक मानसिक च किञ्चित्,

तस्यात्तक गच्छति यीतराग ॥ १७ ॥

अचयार्थ हे इन्द्रभूति । (सदेवगत्म) देवता
 अहित (सव्वस्य) सम्पूर्ण (लोकात्म्य) लोक क प्राणी मात्र
 को (कामाणुगिद्विषमव) काम भोग की अभिलाषा से
 उत्पन्न होने वाला (सु) ही (दुःख) दुःख लगा हुआ
 है (ज) जो (काश्च) क यिक (च) आर (माणुभिश्च।
 मानसिक (किंचि) कोइ भी दुःख ह (तस्य) उस के
 (अतग) अत को (वीयरगो) वीतराग पुण्य (गच्छद्)
 प्राप्त करत है ।

ब्रह्मचर्य -हे गौतम । भवनपति, बाणुध्वत्तर, ज्यो
 तिपी आदि सभी तरह के देवताओं से लगाकर सम्पूर्णलोक
 के छोटे से प्राणी तक को काम भोगों की अभिलाषा से
 उत्पन्न होने वाला दुःख सताता रहता है । उस कायिक और
 मानसिक दुःख वा अत करने वाला केवल वही मनुष्य
 है, जिमने काम भोगों से सदा के लिए अपना मुँह मोड़
 लिया है ।

मूलः-देवदाणुवगधन्वा, जयस्वरजससञ्जितरा ।

वमयारिं नमसति, दुष्कर जे करति ते ॥१८॥

छाया-देवदानुवगधन्वा,

यज्ञराक्षसञ्जितरा ।

ब्रह्मचारिण नमस्यन्ति

दुष्कर य करोति तम् ॥ १८ ॥

अचयार्थ -हे इन्द्रभूति । (दुष्कर) कठिनता से

आचरण में आ सकें ऐसे मन्त्रचय को (ज) जो (करति) पालन करते हैं (ते) उष (मन्मथारि) मन्मथारी का (देवदण्डगव्या) देव, दानव, और गधव (जङ्गलरक्ष सकिन्धरा) यक्ष, राक्षस, और विषर सभी तादृ के देव (नमसति) नमस्कार करते हैं ।

भाषार्थ हे गौतम ! इस महान् मन्त्रचय मन्त्र का जो पालन करता है, उसको देव दानव, गधव यक्ष, राक्षस, विषर आदि सभी देव नमस्कार करते हैं । यह श्लोक में पूज्य हो जाता है ।

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥



ॐ

निर्मन्थ-प्रवचन

(अध्याय नौवा)

माधुधर्म-निरूपण

॥ श्रीमगवानुवाच ॥

मूलः सन्वे जीवा वि इच्छति,
जीविउ न मरिञ्जिउ ।
तम्हा प्राणिवह धार,
निगथा वज्जयति ए ॥१॥

छाया -सर्वे जीवा अपि इच्छन्ति,
जीवितु न मर्तुम् ।
तस्मात् प्राणिवध धार,
निर्मन्था वज्जयन्ति तम् ॥१॥

अन्वयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (सन्वे) सभी (जीवा)
जीव (आवठ) जाने की (इच्छति) इच्छा करत हे (वि)
और (मरिञ्जिउ) मरने को कोई जीव (न) नहीं चाहता
ह । (तम्हा) इसलिए (निगथा) निर्मन्थ साधु (धार)

रैद्र (वाछिगह) प्राणीय थी (वज्रवति) छादत है ।
(ए) वाक्यालंकार ।

भाषार्थः-ह गतम [सब छ ट षट् जाव जीन की
रच्छा करत है, पर षोड भरन का इच्छा नहीं करत है ।
क्योंकि आवत रहना सब की प्रिय है । इसलिए निम्न-
साधु महार दुख के हनु प्राणी वष की आश्रय के लिए
छाद दते हैं ।

मूलः मुमावाओ य लोगम्नि,
सर्वसाहृदि गमिओ ।
अविस्वासा य भूयाण,
तम्हा मोस विवज्जण ॥ २ ॥

छाया मृषावादह्यं लोक,
सर्वसाधुभिर्गहित ।
अविश्वासश्च भूताना,
तस्मात्सृपा विवज्जयेत् ॥ २ ॥

अ-उयाथः हे इ-भूति ! (लोगम्नि) इस लोक म
(य) हिंसा के निषेध और (मुमावाओ) मृषावाद का
भी (सर्वसाहृदि) सब अच्छे पुरुषों (गमिओ) नि-
नीय कहा है । (य) और इस मृषावाद से (भूयाण)
प्राणियों को (अविस्वासा) अविश्वास होता है । (तम्हा)
इसलिए (मोस) मूठ को (विवज्जण) छाद दना चाहिए ।

भावार्थ -हे गौतम ! इन लोक में हिंसा के सिवाय और भी जो मृदावाद (भूठ) है, वह अच्छे पुर्णों के द्वारा निन्दनीय प्रताया गया है । मृठ बोलने वाला अविश्वास का पात्र भी होता है । इसलिए साधु पुरुष भूठ बोलना आर्मी वन के लिए छोड़ देते हैं ।

मूलः-चित्तमतमचित्त वा, अप्य वा जइ वा बहु ।

दत्तमोहणमेत्त पि, उगहसि अजाइया ॥३॥

छाया -चित्तवन्तमचित्त वा, अत्प वा यदि वा ऋ ।

दत्तशोघनमात्रमपि, अचग्रहमयाचित्वा ॥३॥

अत्रयाथ -हे इन्द्रभूति ! (अण) अन्न (जइवा)

अथवा (बहु) बहुत (चित्तमत) सवेनन (वा) अपवा (अचित्त) अवेतन (दत्तमोहणमेत्तपि) दात पाप करने का तिनका भी (अजाइया) याचे बिना ग्रहण नहीं करते हैं । (उगहसि) पड़ियारी वस्तु तक भी गृहस्थ के दिये बिना वे नहीं लोते हैं ।

भावार्थ -हे गौतम ! चेतन वस्तु जैसे शिष्य, अचेतन वस्तु वस्त्र, पात्र वगैरह यहाँ तक। ३ दात कुच अने का तिनका वगैरह भी गृहस्थ के दिये बिना साधु कभी ग्रहण नहीं करते हैं, और अचग्रहिक पड़ियारी वस्तु* अर्थात् कुछ समय तक रखकर पीकी शीपदे, उन चाजों को भी गृहस्थों के दिये बिना

* An article of use (for a monk) to be used for a time and then to be returned to its owner

गणु कर्मा नदीं लते है ।

मूल - मूलमयम्हम्मस्स महादोससमुत्सय ।

तम्हा महणससग, निग्गथा वज्जयति ण ॥४॥

छाया - मूलमेतदधर्मस्य, महादोषसमुच्छ्रयम् ।

तस्मात्तैथुनससग, निग्गथाः परिषर्जयति तम् ॥४॥

अ-चयाधः हे इदमूर्ति । (एय) यह (मैहुणससग) मैथुन । षयक धर्म (अहम्मस्स) अधम का (मूल) मूल है । थौर (महादोषसमुत्सय) महान् दूषित विचारों का अच्छी तरह से बहाने वाला है । (तम्हा) इसलिए (निग्गथा) निर्मल गणु मैथुन ससग का (वज्जयति) दोष दते हैं । (ण) वक्तालकार में ।

भाषा - हे गौतम । यह अधमार्थ अधर्म उत्पन्न कराने में परम कारण है । थार दिवा, भूँड चोरी, बपट आदि महान् दोषों को खूब बहाने वाला है । इसलिए मुने-धम पालने वाले महापुरुष सब प्रकार में मैथुन ससग का परित्याग कर दते हैं ।

मूल - लोभस्से समणुप्फासो, मत्त अत्तथरामपि ।

जे सिया सनिहीकामे गिही पव्वहण न से ॥५॥

छाया - लोभस्यैष अनुस्वथ,

म यदन्यतरामपि ।

य स्यात् सन्निधिं कामयेत्,
गृह्णा प्रव्रजितो न स ॥५॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (लोमस्म) लाभ की (एस) यह (ऋगुष्मासो) महत्ता है, कि (अजयसामवि) गुट घी, शकर आदि में से कोई एक पदार्थ का भा (जे) जो साधु हाकर (सिया) कदाचित् (सन्निधिकांशमे) अपने पास रात भर रखने का इच्छा करले ता (से) वह (न) न तो (गिही) गृहस्था है और न (पव्वदण) प्रव्रजित दीक्षित ही है, ऐसा ठीककर (मजे) मानने है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! तौन, चारित्र के सम्पूर्ण गुणों को नाश करने वाला है इसीलिए इम की इतनी महत्ता है । तीर्थकरों ने ऐसा माना है, और कहा है, कि गुड, घी, शकर आदि वस्तुओं में से किसी भी वस्तु को साधु हो कर कदाचित् अपने पास रात भर रखने का इच्छा मात्र करे या औरों के पास रखवा लेवे तो वह गृ स्थ भी नहीं है । क्योंकि उसके पहनने का वष साधुका है और वह साधु भा नहीं है क्योंकि जो साधु हाते ह, उनके लिए उपरोक्त कोई भा चीज रात में रखने का इच्छा मात्र भी करना मना है । अतएव साधु को दूसरे दिन के लए मने तक की कोई वस्तु का भा उपद्र करके न रखना चाहिए ।

मूलः—ज पि वत्थ व पाय वा,

कम्बल पायपुच्छाण ।

त वि सप्तमलज्जटा,
धारेति परिहिते य ॥ ६ ॥

दाया - यद्वि यत्र वा पात्र वा
बभ्रुल पादपुङ्गवाम् ।

तद्वि सप्तमलज्जाधम्,
धारेति परिहरन्ति य ॥ ६ ॥

अन्यार्थ - हे इन्द्रमुद । (अ) जो (वि) भी
(यत्र) वग (य) बभ्रुल (वाय) पात्र (वा) बभ्रुल
(बभ्रुल) बभ्रुल (पादपुङ्गवाम्) पाद पौडने का बभ्रुल (ल)
उगधो (वि) भी (सप्तमलज्जटा) सप्तम लज्जा 'रघु' के
लिए (धारेति) भते है (य) और (परिहिते) गहनते है ।

भाषायां - हे गौतम । जब यह कह दिया कि योद
भी बहुत नदी रचना और तत्र पात्र बभ्रुल, पात्र रखते
है, तो भला लोग मन्थ में इत जगह गहन ही प्रथ उठता
है । किन्तु जो समय रखन व ल पात्र है, वह केवल समय
का रघु के हेतु बभ्रुल पात्र बभ्रुल भगा है । और पदमना है ।
इन्द्रिय मन्थ वालने के लिए उभके शासन वग व त्र, बभ्रुल
रखने के लोग नदी है क्योंकि कुतियों को उनमें मगल
मही जाती ।

॥ सुधर्मोवाच ॥

मूल - न सो परिगढो तुतो,

नापुत्तेय ताश्या ।

मुच्छ्वा परिग्रहो वृत्तो,

इह वृत्त महेक्षिणा ॥ ७ ॥

ध्याया -न स परिग्रह उक्त,

ज्ञातपुत्रेण प्रायिणा ।

मूर्च्छ्यापरिग्रह उक्त

इत्युक्त महपिणा ॥ ७ ॥

अ-ध्याय हे जम्बू ! (तो) समय का रक्षा के लिए रक्षणे हुए वस्त्र, पात्र, वगरह इ उनको (परिग्रहो) परिग्रह (तादृशा) ज्ञाता (नाथपुत्रेण) महावार (न) नहीं (वृत्तो) कहा ह, किंतु उन वस्तुओं पर (मुच्छ्वा) मोद रखना वह (परिग्रहो) परिग्रह (वृत्तो) कहा जाता ह (इह) इस प्रकार (महेक्षिणा) तीर्थंकरों ने (वृत्त) कहा है ।

भाषाथ -हे जम्बू ! समय को पालने के लिए जो वस्त्र, पात्र, वगरह रखे जाते हैं, उनको तीर्थंकरा न परिग्रह * नहीं कहा है । हा यदि वस्त्र पात्र आदि पर ममत्व भाव हो, या वस्त्र पात्र ही क्यों अपने शरीर पर देखो न, इस पर भी ममत्व याद हुआ कि अवश्य वह परिग्रह क दोष से दूषित बन जाता है । और वह परिग्रह का दोष चारेश क गुणों को नष्ट करने में सहायक होता है ।

मूनः—एय च दोष ददूण,
 नायपुत्तण भासिय ।
 सवाहार न भुजति,
 निमग्घा राइभोयण ॥ ८ ॥

दाया एत न दोष ददूणा,
 नातपुत्तण भासितम् ।
 सवाहार न भुजते
 निमग्घा रात्रिभाजणम् ॥ ८ ॥

अ वयाध -दे इन्द्रभूति । (च) और (एय) इस
 (दाया) दोष का (ददूण) देता कर (नायपुत्तण) तीर्थ
 पर था महावीर ने (भासिय) कहा है । (निमग्घा)
 निमग्न वा ई व (सवाहार) सब प्रकार के आहार को
 (राइभोयण) रात्रि के भोजन अर्थात् रात्रि में (नो) नहीं
 (भुजति) भागते ह ।

भावार्थ हे गौतम ! रात्रि के समय भोजन करने में
 वह तरह व आव भा खाने में था करते हैं । अतः उन बीजों
 को, भोजन करने वालों से हिंसा हो जाती है । और व फिर
 वह तरह के रोग भी पैदा करते हैं । अतः रात्रि भोजन
 करने में एता दोष देता व वीतरागों ने उपदेश किया है,
 कि आ निम ग्न ह होते हैं वे सब प्रकार से खाने पीने की

कोई भा वस्तु का रात्रि में सेवन नहीं करते हैं ।

मूनः- पृथ्विं न राणे न खणावए,

सीओदग न पिए न पियावए ।

अगणिसत्थ जहा सुनेसिय,

त न जले न जलावए जे स भिक्खू ॥६॥

व्याख्या - पृथिवीं न खनेन खानयेत्

शालोदकं न उपवेश्य पाययेत् ।

अग्निशस्त्रं यथा सुनिश्चितम्,

त न ज्वलेन्न ज्वालयेत् यः स भिक्षुः ॥६॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (जे) जो (पुण्ड्रि)

पृथ्वी को स्वयं (न) नहीं (राणे) खोद औरों से भी (न)

न (खणावए) खुदवावे (सीओदग) शालोदक-संचितजल

को (न) नहीं पीवे, औरों को भी (न) नहीं (पियावए)

पिलावे (जहा) जैसे (सुनेसिय) सूत्र अच्छी तरह

सौच्य (सत्थ) शस्त्र होता है, उसी तरह (अगणि) अग्नि

है (त) उसको स्वयं (न) नहीं (जले) जलावे औरों

से भी (न) न (जलावए) जलवावे (स) वदा (भिक्खू)

साधु हैं ।

भाषाार्थ - हे गौतम ! सर्वथा हिंसा से जो बचना

गइता है वह न स्वयं पृथ्वी को खोद और न औरों से खुद

वावे । इसी तरह न संचित, जिसमें जीव हो उस) जल

को सुद पावे और न औरों को विलाव । उसी तरह न अमे
का भी स्वय प्रदीप्त करे और न औरों ही से प्रदत्त करावे
बस, वही साधु है ।

मूल - अनिलेण न वीए न वीयावए,

हरियाणि ण छिदे ण छिदावए ।

वीयाणि सया विवज्जयतो,

सच्चित्त नाहारए जे स भिक्खू ॥१०॥

छाया-अनिलेण न वीजयेत् न वीजायेत्

हरितामि न छिद्यन्च्छेद्येत् ।

वीजानि सदा विवर्जयन्

सच्चित्त नाटरेद्य स भिक्षु ॥१०॥

अवधार्यं इ इदमभूत् । (ज) जो (अनिलेण)
कयु व हेतु वरि को (न) नहीं (वाए) चलाता ह और
(न) न औरों स हा (वीयवए) चलवाता ह । (हरियाणि)
धनस्वतियों को स्वत (न) नहीं (छिदे) छुता और (न)
न औरों ही से (छिदावए) छिदावाता है । (वीयाणि) वीजों
को छेना (सया) सदा (विवज्जयता) छावता हुआ
(सच्चित्त) सचित्त पदार्थों को जा (न) (आहारए) खाता
ह । (स) वही (भिक्खू) साधु है ।

भावाध - हे गौतम । जगते इन्द्रिय जय सुखों को
और से अपना मुँह मोड़ निश है, वह कभी भी हवा के

लिये पंखों का न तो स्वतः प्रयोग करता है और न औरों से उसका प्रयोग करवाता है । और पान, फल, फूल आदि वनस्पतियों का भक्षण छोड़ता हुआ, अवित्त* पदार्थों का कभी आहार नहीं करता, वही साधु है । तात्पर्य यह है कि साधु किसी भी प्रकार का हिंसाजनक आरम्भ नहीं करते ।

मूलः-महुकारसमा बुद्धा, जे भवति अण्णिसिखा ।

नाणापिण्डरया दत्ता, तेण बुच्चति साहुणो ॥ ११ ॥

छाया -मधुकरसमा बुद्धा ,

ये भवन्त्यानिश्रिता ।

नानापिण्डरता दान्ता ,

तेनोच्यन्ते साधवः ॥११॥

अन्वयार्थः-हे इन्द्रभूति ! (मधुकारसमा) जिस-प्रकार घोड़ा घोड़ा रस लेकर भ्रमर जीवन बिताते हैं, ऐसे ही (ज) जो (दत्ता) ईन्द्रियों को जीतते हुए (नाणा-पिण्डरया) नाना प्रकार के आहार में उद्वग रहित रत रहने वाले हैं ऐसे (बुद्धा) तत्त्वज्ञ (अण्णिसिखा) नेत्राय रहित (भवति) होते हैं (तण) इसी से उन्ह (साहुणो) साधु (बुच्चति) कहते हैं ।

भावार्थ -हे गौतम ! जिस प्रकार भ्रमर फूलों पर से

* An animate thing, as water, flower, fruit, green grass etc

बोझा बोझा रस लेकर अपना जीवन बिताता है । इसी तरह जो अपनी इन्द्रियों पर विप्रय प्राप्त करते हुए सीखे कहुने, मधुर आदि नापा प्रकार के भोजनों में उद्देग रहित होता है । तथा जो समय पर जेवा भी निर्दोष भाजन मिला, उपा का खाकर आनन्द मय समयों जवन को अनेमित होकर बिताने हैं, उ-हो को हे गौतम ! साधु कहते है ।

मूल -जे न बडे न से जुषे, बदिओ न समुझसे ।

एवमन्नेसमाणस सामणमणुचिट्ठइ ॥१२॥

छाया -यो न य देत् न तस्मै जुष्येत् ,

यदिदतो न समुत्कर्षेत् ।

एवम वेपगानस्य

धामएवमनुतिष्ठति ॥ १२ ॥

अ-वयाध -हे इन्द्रभूति ! (ज) जो कोई एइस्य साधु को (न) नहीं (बडे) ब-दना करता (स) वह साधु उक्त गृहस्थ पर (न) ब (जुष्ये) मगध करे, और (बदिमा) ब-ना करने पर (न) न (समुझसे) उत्कर्षता ही दिखावे (एव) इस प्रकार (अन्नेसमाणस) गवेरणा करन वाले का (धामण) धामएव प्रर्षेत् साधुग (मणुचिट्ठइ) रहता है ।

भावाथ -हे गौतम ! साधु को कोई ब-दना करे या न करे तो उस गृहस्थ पर वह साधु क्रोधित न हो । साधुता के गुणों पर यदि कोई राजादि मुग्ध हो जाय, और वह ब-द

नादि करे तो वह साधु गेवा। बेत भी कमी न हो, *स, इस प्रकार चारित्र्य को दूषित करने वाले दूषणों को देखता हुआ उन से बाल बाल बचता रहे उसी का चारित्र्य अखण्ड रहता है ।

मूलः-पण्यसमत्ते सया जए,

समताधम्ममुदाहरे मुणी ।

सुहमे उ सया अलूसए,

णो कुज्जे णो माणि माहणे ॥१३॥

छाया -प्रज्ञासमाप्त सदा जयेत्,

समतया धममुदाहरेन्मुनि ।

सूदेन तु अलूपक,

न कुब्बयन्न मानी माहन ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ -हे इ द्रवृत्ति ! (मुणी) वह साधु (पण्य समत्ते)समग्र प्रज्ञा करके संहित तथा प्रश्न करने पर उत्तर देने में समर्थ (सया) हमेशा (जए) कपायादि को जात (समताधम्ममुदाहरे) समभाव से धर्म को कहता हो, आर (सया) सदैव (सुहमे) सूक्ष्म चारित्र्य में (अलूसए) अविशेषक हो, उन्हें ताड़ने पर (णो) नहीं (कुज्जे) क्रोधित हो एव सत्कार करने पर (णो) नहीं (माणि)

* Right conduct, ascetic conduct inspired by the subsidence of obstructive Karma

माना हो, वही (माहयं) पापु है ।

भाषार्थ ६ गौतम । तीदण बुद्धि ने उहित हो, प्रथ करने पर जो शक्ति से उत्तर देने में समर्थ हो, समता भाव से जो धर्म कथा कहता हो, गरिभ्र में सुद्व रीति से भी आ विशासक न हो, तादन तत्रन पर काथिन और सरदार करने पर गर्भावित जा नहोता है, सधमुत्र में वही उपापु पुट्ट है ।

मूल.-न तस्य जाई व कुल व ताण,

खण्णत्थ विज्जाचरण सुचिन्न ।

णिवल्लम्भसे सेवइ गारिकम्म,

ण से पारए टोइ विमोयणाए ॥१४॥

छा ॥ -न तस्य जातिषा कुल वा प्राण,

ना यत्र विद्या चरण सुचीणम् ।

निष्कम्प्य स सेवतेऽगारिकम्,

न सः पारगो भवति विमोचनाय ॥१४॥

अ-वययार्थः हे इन्द्रभूति । (सुचिन्न) अच्छी तरह आचरण किये हुए (चरण) चारित्र (विज्जा) ज्ञान के (खण्णत्थ) शिष्याय (तस्य) उसके (जाई) जाति (व) और (कुल) कुल (ताण) शरण (न) नहीं होता है । जो (से) वह (णिवल्लम्भ) सत्तार प्रवच से निकल कर (गारिकम्म) पुनः सुदृश्य कर्म (सेवइ) सेवन करता (से) वह (विमोयणाए) कम मुक्त करने के लिए (पारए)

सवार से परले पार / ए) नही (होइ) होता है ।

भावार्थ -हे गौतम ! साधु हो कर जाति और कुल का जो मद करता है, इस में उसकी साधुता नहीं है । प्रत्युत वह गर्व प्राणभूत न हो कर होन जाति और कुल में पैदा करने की सामग्री एकत्रित करता है । केवल ज्ञान एवं क्रिया के सिवाय और कुछ भा परलोक में हितकारक नहीं है । और साधु हो कर गृ स्व जैसे काय फिर करता है वह सवार समुद्र से परल पार होने में समर्थ नहीं है ।

मूलः-एव ए से होइ समाधिपत्ते,

जे पन्नव भिवसु विउक्खेज्जा ।

अहमा वि जे लाभमयावलित्ते,

अन्न जण भिसति बालपत्ते ॥१५॥

छाया एव न स भवति समाधिप्राप्त ,

य प्रज्ञया भिक्षु व्युत्कर्षेत् ।

अथवाऽपि या लाभमदावलित्त ,

अन्य जन भिसति बालप्रज्ञ ॥ १५ ॥

भावार्थ -हे इन्द्रभूति ! (एव) इस प्रकार से (से) वह गर्व करने वाला साधु (समाधिपत्त) समाधि प्राण का प्रज्ञ (ए) नहीं (होइ) होता है । और (जे) जो (पन्नव) प्रज्ञ वा (भिवसु) साधु हो कर (विउक्खेज्जा) क्षयम प्रशसा करता है । (अहमा) अथवा (जे)

जा (लाभमयावलिते) लाभ मद में लिप्त हो रह है वह
(बालपक्ष) गृह्य (अथ) अथ (जणु) जनकी (क्षिप्रति)
निन्दा करता है ।

भाषायाः हे गौतम । मैं जातवान् हूँ, कुनवान हूँ ।
इस प्रकार का सर्व करने वाला साधु समाधि माग को कभी
प्राप्त नहीं होता है । जो बुद्धिमान् हो कर फिर भी अपने
आप ही को आत्म प्रभाता करता है अथवा यों कहता है, कि
मैं ही साधुओं क लिये वस्त्र, पात्र आदि का प्रवच करता हूँ ।
बेचारा दूसरा क्या कर सकता है ? यह तो पेट भरने तक
की बि ता दूर नहीं कर सकता, इस तरह दूसरों की निन्दा
जो करता है, यह साधु कभी नहीं है ।

मूलः-१ पूषण चैव सिलोयकामी,
प्रियमप्रिय कस्तद् गौ करेज्जा ।
सर्वे अण्डे परिवर्जयते,
आण्डले या अस्तद् भिवलू ॥१६॥

घाया -न पूजन चैव श्लोककामी,
प्रियमप्रिय कस्यापि नो कुर्यात् ।
सघानथान् परिवर्जयेन्,
अनाकुलश्च अकपायी भिषु ॥ १६ ॥

अथयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (भिवलू) साधु (पूषण)
वस्त्र पात्रादि की (न) इच्छा न करे (चैव और ३ (सिलो

यकामी) आत्म प्रशंसा का काम ही हो (मरुतइ, किसी के साथ (पियमाण्य) राग और द्वेष (जो) न (करज्जा) करे (सब्बे) सभी (अणुदृ) अनर्थकारा बातों का जो (परिव ज्ञयत) छोड़ दे (आणाउले) फिर भय रहित (या) और (अकसाइ) कषाय रहित हा ।

भावाथ -दे गौतम ! साधु प्रवचन करत समय वस्त्रादि का प्राप्ति की एव आत्म प्रशंसा की वाढ़ा कभा न रखे । या किसी के साथ राग और द्वेष से सम्बन्ध रखने वाले कथन को भी वह न करे । इस प्रकार आत्मा कलुषित करने वाली सभी अनर्थकारा बातों को छोड़त हुए भय एव कषाय रहित हो कर साधु को प्रवचन करना चाहिए ।

मूल -जाए सद्भाए निवश्वतो, परियायट्टाणमुत्तम ।

तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरियसम्मए ॥१७॥

धया यया धद्धया निष्क्रान्त, पयायम्यानमुत्तमम् ।

तदेघानुपालयेत्, गुणेषु आचार्यसम्मतेषु ॥१७॥

अन्ययार्थ -दे इदमूति । (जाए) निम (सद्भाए) भद्रा से (उत्तम) प्रधान (परियायट्टाण) प्रवचनार्थात् प्राप्त करने को (निवश्वतो) मायामय कर्मों से निकला (तमेव) वैसी ही उच्च भावनाओं से (आयरियसम्मए) सीधकर कथित (गुणे) गुण (अणुपालिज्जा) शानना चाहिए ।

मायार्थ -दे गौतम ! जो गृहस्थ जिन भद्रा से प्रधात

दीक्षा स्थान प्राप्त करने को मायामग काम रूप छछार से
 पृथक् हुआ तथा भावना से जीवन पर्यंत उसके तीर्थहर
 प्रह्वित गुणों में वृद्धि करते रहता चारिये ।

॥ इति नरमोऽध्यायः ॥



ॐ

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय दसवा)

प्रमाद-परिहार

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः-दुमपत्तए पटुरण जहा,

निवडइ राइगणाण अच्चए ।

एव मणुआण जीविअ,

समय गोयम ! मा पमायए ॥ १ ॥

छाया -दुमपत्रक पाण्डुरक यथा,

निपतति रात्रिगणाणामत्यये ।

एव मनुजाना जीवित,

समय गीतम ! मा प्रमादी ॥ १ ॥

अत्रार्थ - (गोयम !) हे गीतम ! (जहा) जैसे
(राइगणाणअच्चए) रात दिन के समूह बीत जाने पर पट्टए)
पक जान मे (दुमपत्तए) वृक्ष का पत्ता (निवडइ) गिर
जाता है (एव) ऐसे ही (मणुआण) मनुष्यों का (जीविअ)

जावन है । अतः (समय) एक समय मात्र के लिए भी (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थः—हे गौतम ! जैसे समय पाकर वृक्ष के पत्ते पीले पड़ जाते हैं फिर वे पक कर गिर जाते हैं । उसी प्रकार मनुष्यों का जावन नाशशाली है । अतः हे गौतम ! धर्म का पालन करने में एक क्षण मात्र भी व्यर्थ मत गवाधा ।

मूल.—कुसुमे जह ओसबिंदुए,

थोव चिट्ठइ लषमाणए ।

एव मणुआणु जीविअ,

समय गोयम ! मा पमायए ॥ २ ॥

छाया कुशमे यथाऽवश्यायत्रिन्दु,

स्तोक तिष्ठति लभ्यमानक ।

एव मनुजाना जीवित,

समय गोयम ! मा प्रमादी । २ ॥

अन्वयाथ—(गोयम ! । हे गौतम ! (जह) जधे (कुसुमे) कुश के अप्रभाग पर (लषमाणए) लटकती हुई (ओसबिंदुए) ओस की बूँद (थोव) अन्य समय (चिट्ठइ) रहता है (एव) इसी प्रकार (मणुआणु) मनुष्य का (जीविअ) जीवन है । अतः (समय) एक समय मात्र (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थ—हे गौतम ! जैसे पाष के अप्रभाग पर तरल

श्लोष का वृँद थोड़े ही समय तक टिक सकती है । ऐसे ही मानव शरीर धारियों का जावन है । अतः हे गौतम ! जरा से समय के लिए भा गाफिल मत रह ।

मूलः— इह इत्तरिअम्भि आउए,

जीविअए बहुपच्चवायए ।

विहुणाहि रय पुरेकड,

समय गोयम ! मा पमायए ॥ ३ ॥

छाया -इतीत्थर आयुपि,

जावितके बहु प्रत्यवायके ।

विधुनीहि रज पुराकृत,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ - (गोयम !) हे गौतम ! (इह) इस प्रकार (आउए) निरुपक्रम आयुष्य (इत्तरिअम्भि) अल्प काल का होता हुआ और, (जाविअए) जावन सोपकमी होता हुआ (बहुपच्चवायए) बहुत विप्रों से घिरा हुआ सम्भ्र करके (पुरेकड) पहले की हुई (रय) कम रूपी रज को (विहुणाहि) दूर करो, इस कार्य में 'समय' समय मात्र का भी (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भाषाथ -हे गौतम ! जिस शस्त्र, विष आदि उपक्रम भी बाधा नहीं पहुँचा सकते, ऐसा नोपकमी (अकाल मृत्यु से रहित) आयुष्य भी थोड़ा होता है । और शस्त्र विष

आदि से जिस भाषा पहुँच गके ऐसा सोपनही जावन घोड़ा ही है । उस म भी ज्वर, खाँसा आदि अनेक व्याधियों का विघ्न भरा पड़ा होता है । एसा समझ कर हे गौतम ! पूर्व के किय हुए कर्मों को दूर करन म चरण भर प्रमाद न करो ।

मूल - दुल्लभे खलु माणुसे भवे,

चिरकालेण वि सव्वपाणिण ।

गाढा य विवाग कम्मणो,

समय गोयम ! मा पमायए ॥ ४ ॥

छाया - दुलभ खलु माणुष्यो भव ,

चिरकालेनापि सर्वपाणिनाम् ।

गाढाश्च विपाकाः कर्मणा,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥ ५ ॥

अ-व्ययाध - (गोयम !) हे गौतम ! (सव्वपाणिण) सब प्राणियों को (चिरकालेण वि) बहुत काल से मी (खलु) निश्चय करके (माणुसे) मनुष्य (भवे) भव (दुल्लभे) मिलना इठिन है । (य) क्योंकि (कम्मणो) कर्मों के (विवाग) विपाक को (गाढा) नाश करना कठिन न है । अतः समय) समय मात्र का (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भावार्थ - हे गौतम ! जीवा को एकद्वय आदि प्राणियों में इधर उधर न मते मरते हुए बहुत काल गया ।

परन्तु दुर्लभ मनुष्य जन्म नहीं मिला । क्योंकि मनुष्य जन्म के प्राप्त होने में जो रोड़ा अटकाते हैं ऐसे कर्मों का विनाश नाश करने में महान् कठिनाई है । अतः हे गौतम ! मानव देह पा कर पल भर भी प्रमाद मत कर ।

मूलः—पुढोपेकायमद्गश्रो,

उक्कोस जीवो उ सवसे ।

काल सखाईय,

समय गोयम ! मा पमावए ॥ ५ ॥

छाया -पृथिवीकायमतिगत ,

उत्कर्षतो जीवस्तु सवसेत् ।

काल संख्यातीत,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥५॥

अन्वयार्थ - (गोयम) ! (हे गौतम ! (पुढोपेकायमद्गश्रो) पृथ्वा काय में गया हुआ (जीवो) जाव (उक्कोस) उत्कृष्ट (सखाईय) सखा से अतात अघात् असख्य (काल) काल तक (सवसे) रहता है । अतः (समय) समय मात्र का (मा पम वए) प्रमाद मत कर ।

भाषाया - हे गौतम ! यह जीव पृथ्वी काय* में जन्म मरण का धारण करता हुआ उत्कृष्ट अमख्य काल अर्थात् असख्य सपिणा उत्सपिणा काल तक की बिताता रहता है ।

अत हे मानव देह धारी गौतम । तुझे एक क्षण मात्र की
भी गफलत करना उचित नहीं है ।

मूल -आठकायमद्गञ्जो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखाईय, समय गोयम । मा पम यणा॥६॥
तेठकायमद्गञ्जो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखाईय, समय गोयम । मा पमायण ॥७॥
दाठकायमद्गञ्जो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
कास सखाईय, समय गोयम । मा पमानण ॥८॥

छाया -अपकायमतिगत ,
उत्तपतो जीवस्तु सवसेत् ।
काल सख्यातीत,
समय गौतम ! मा प्रमादी ॥६॥
तेज कायमतिगत
उत्तपतो जीवस्तु सवसेत् ।
काल सख्यातीत,
समय गौतम ! मा प्रमादी ॥७॥
धायुकायमतिगत ,
उत्तपतो जीवस्तु सवसेत् ।
काल सख्यातीत,
समय गौतम ! मा प्रमादी ॥८॥

अन्वयार्थ - (गोयम !) हे गौतम ! (जीवो) जीव (आउक्यायमद्गशो) अपनाया को प्राप्त हुआ (उक्तेषु) उक्तेषु (असाइय) असाइयात (काल) काल तक (सर्वसे) रहता है । अतः (समय) समय मात्र का (मा पमायए) प्रमाद मत कर ॥ ६ ॥ इसी तरह (तेउक्यायमद्गशो) अग्निनाय को प्राप्त हुआ जीव और (वाउक्यायमद्गशो) वायुनाय को प्राप्त हुआ जीव असाइय का ५ तक रह जाता है ।

भावार्थ हे गौतम ! इसी तरह यह आत्मा जल, अग्नि तथा वायु काय में अमरत्व काल तक जन्म मरण को धारण करता रहता है । इसलिए तो म्हा जाना है कि मानव जन्म मिलना महान् कठिन है । अतएव हे गौतम ! तुम्हें धर्म का पालन करने में तनिक भी गापिल न रहना चाहिए ।

मूलः वणस्मद्कायमद्गशो, उक्तेषु जीवो उ सर्वमे ।

कालमणुत दुरतय, समय गोयम ! मा पमायए ॥६॥

छाया वनस्पतिकायमनिगत ,

उत्कर्षता जीवस्तु सधमेत् ।

कालमनन्त दुरन्त,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥६॥

अन्वयार्थः - (गोयम !) हे गौतम (वणस्मद्काय मद्गशो) वनस्पति काय में गया हुआ (जीवो) जीव (उक्तेषु) उक्तेषु (दुरतय) कठिनाइ से अतः आवे ऐश

(अणुत) अनन्त (काल) काल तक (गवने) रहता है ।
अत (समय) समय मात्र का भी (मा पमायए) प्रमाद
मत कर ।

भाषा - हे गौतम ! यह आत्मा पनस्पतिकाय में
अपन कृत बर्मा द्वारा जन्म मरण करता है, तो उट्ट अन्त
काल तक उसी में होता समाया करता है । और इसी से
उस आत्मा को मागव शर मिलना बठिन हो जाता है ।
इस लिए ह मातम । पन भर के लिए भी प्रमाद मत कर ।

मूल - वेद्दिशकायमद्गमो,

उक्तेस जीवो उ सवम ।

काल सखिज्जसरिणुअ,

समय गोयम । मा पमायए ॥१०॥

भाषा - द्वीन्द्रियकायमतिगव

उत्कपतो जीवस्तु सवसेत् ।

काल सखियससित,

समय गौतम । मा प्रमादी ॥ १० ॥

अ वयाय - (गोयम ।) हे गौतम । (वेद्दिशकाय
मद्गमो) द्वीन्द्रिय योनि का प्रात हुआ (जीवो) जीव
(उक्तेस) उट्ट (सखिज्जसरिणुअ) सट्या की सजा है
जु तक ऐव (काल) काल तक (सवने) रहता ह । अत-
समय मात्र का भी (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

अचयाध - (गौतम ।) हे गौतम । (तेषुदियकाय मद्गच्छा) तीन इन्द्रियवाला योनि को प्राप्त हुआ (नीवो) जाव (उक्तास) वरिष्ठ (सान्जमगच्छाश्च) काल गणना की जहाँ तक सरथा बताई जाती है वहाँ तक अर्थात् सरयात (काल) काल तक (सवसे) रहता है । इया तरद (चउरि दियक यमद्गच्छो) चतुरिन्द्रिय वाली योनि को प्राप्त हुए जोव के लिए भा जानना चाहिए अत (समय) समय मात्र का भी (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भायाध हे गौतम । जब यह आत्मा तीन इन्द्रिय तथा चार इन्द्रियवाला योनि में जाता है तो अधिक में अधिक सरयाता काल तक उ ही योनिय में ज म मरणको धारण करता रहता है । अत हे गौतम । धम की वृद्धि करने में एक बल भर का भी प्रमाद न कर ।

मूलः—पचिन्द्रियकायमद्गच्छो,

उक्तास नीवो उ सवसे ।

सत्तद्वृमवगदण्ये,

समय गौयम ! मा पमायए ॥ १३ ॥

छाया पञ्चेन्द्रियकायमतिगत

उत्सर्पतो जीयस्तु सवसेत् ।

सत्ताष्टमवप्रदण्यति,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥ १३ ॥

अ-प्रयार्थः- (गोयम !) हे गौतम ! (पचिन्द्रियमा यमद्गच्छो) पाँच इन्द्रिय वाली योगि को प्राप्त हुआ (नावो) नाव (उक्कोस) उत्कृष्ट (सत्तट्टुभवग्गदणे) सात आठ भव तक (सवसे) रहता है । अतः (समय) समय मात्र का भी (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भावार्थ हे गौतम ! यह आत्मा पचन्द्रियवाणी तिय व का यानियों म जब जाता ह तब यह अधिक से अधिक सात आठ भव तक उमी योगि में निवास करता है । अतः हे गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद कभा मत कर ।

मूलः-देवे नेरइए अद्गच्छो,

उक्कोस जीवो उ सवसे ।

इक्किक्कभवग्गदणे,

समय गोयम ! मा पमायए ॥ १४ ॥

ध्याया -देवे नेरथिके चात्तिगत ,

उत्कर्पता जीवस्तु सवसेत् ।

एकैव भवग्रहण,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥ १४ ॥

अ धयार्थ - (गोयम !) हे गौतम ! (देवे) देव (नेरइए) नारथीय भवों में (अद्गच्छो) गया हुआ जीवों) जीव (इक्किक्कभवग्गदणे) एक एक भव तक उसमें (सवसे) रहता है । अतः (समय) समय मात्र का भी (मा पमायए)

प्रमाद कभी मत कर ।

भाषाघ - हे गौतम ! जब यह आत्मादेव अथवा नार
काय भवों में ज म नेता है तो वही एक एव ज म तक यह
रहता है (बीच में नहीं निकल सकता) अतएव हे गौतम !
समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

मूल* - एव भवसंसारे, ससरद् सुहासुदेहिं कम्भेहिं ।

जीवो पमायबहुलो, समय गोयम ! मा पमायए ॥१५॥

छाया एव भवसंसारे,

ससरति शुभाशुभ कमभि ।

जीवा बहुलप्रमाद ,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥ १५ ॥

अवयवार्थः (गोयम !) हे गौतम ! (एवं) इस
प्रकार (भवसंसारे) ज म मरण रूप संसार में (पमाय
बहुलो) अति प्रमाद वाला (जीवो) जीव (सुहासुदेहिं)
शुभ अशुभ (कम्भेहिं) कर्मों के कारण से (ससरद्) प्रमण
करता है । अतः (समय) समय मात्र का भी (माप-
मायए) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थ हे गौतम ! इस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि,
वयु, आदि एकेन्द्रिय हृद्दिय, तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय एव
पंचन्द्रिय वाली तिनैच योनियों में एव देव तथा नरक में
उरयाता, असंख्याना आर अनंत काल तक अपने शुभाशुभ

कर्मों के कारण यह जाव भटक्ता फिरता है । इसी से कहा गया है कि इस आत्मा से मनुष्य भव मिलना महारू कठिन है । इसलिए मानव देह धारा है गौतम ! अपनी आत्मा को उत्तम अवस्था में पहुँचाने के लिए समय मात्र का भा प्रमाद कमा मत कर ।

मूलः—लङ्घय वि माणुसत्तण,
 अरिअत्त पुणरपि दुल्लह ।
 बह्वे दसुआ मिलनपुआ,
 समय गोयम ! मा पमायण ॥ १६ ॥

ध्याया लङ्घयाऽपि मानुसत्तव,
 आर्यत्वं पुनरपि दुर्लभम् ।
 बहवो दस्यवा म्लेच्छा ,
 समय गौतम ! मा प्रमादी ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(मायम !) हे गौतम ! (माणुसत्तण) मनुष्यत्व (लङ्घयि) प्राप्त हो जाने पर भी (पुणरोवि) फिर (अरिअत्त) आर्यत्व का मिलना (दुल्लह) दुर्लभ है । क्योंकि (बह्वे) बहुतों से यदि मनुष्य भव मिल भी गया तो व (दसुआ) चोर और (मिलनपुआ) म्लेच्छ हो गये अतः (समय) समय मात्र का भा (पमायण) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थ—हे गौतम ! यदि हम जीव से मनुष्य - म

मित भी गया तो आय होन का गौभाग्य प्राप्त होत। महान्
 दुःख है । क्योंकि बहुत से नाम मात्र के मनुष्य अनार्य देशों
 में रह कर बेरो। वगैरह करके अपना जीवन बितोते हैं ।
 ऐसे नाम मात्र के मनुष्यों का काटि में और म्लेच्छ जाति
 में जहाँ कि घोर हिंसा व कारण जाव कभा ऊँचा नही उठता
 ऐसी जाति और देश में भी व मनुष्य रह पा भा ला ता
 किम काम का । इणलिए आय देश में जम ला वाल और
 कर्मों से आय हे गौतम । एक उत्तर का भा प्रवाद मत कर ।

मूल - लक्ष्णवि आरियसण,

अहीणपचिदियया हु दुल्लडा ।

विगलिणिया हु दीसई,

समय गोयम । मा पमावण ॥१७॥

छाया लक्ष्णाऽप्याथरत्र,

अहीनपञ्चन्द्रियता हि दुर्लभा ।

विरलेन्द्रियता हि दृश्यते,

समय गौतम । मा प्रमादीः ॥१७॥

अवयवाद्य (गेयम ।) हे गौतम । (अरियसण)
 आत्त के (लक्ष्ण वि) प्राप्त होने पर भी (हु) पुनः
 (अहीणपचिदियया) अहीन पचेन्द्रियता मिलता (दुल्लडा)
 दुर्लभ है (हु) क्योंकि अधिकतर (विगलिणिया) विक
 चेन्द्रिय वाले (दीसई) दीर्य पक्षत है । अत (समय)

समय मात्र वा (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भाषा - हे गौतम ! मानव-देह आर्य दश में भी पा
गया परन्तु सम्पूर्ण इन्द्रिया की शक्ति सहित मानव देह मि
लना महान् कठिन है । क्योंकि बहुत से ऐसे मनुष्य देखने
में आते हैं कि जिन्होंने इन्द्रिया विकल है । जो ज्ञानों से वंचित
है । जो आँखों से अंधे या पैरों से अपंग हैं । इसलिए सशक्त
इन्द्रियों वाले हे गौतम ! चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त करने में
कमा आलस्य मत कर ।

मूलः—अदीणचिदियत्त पि से लहे,

उत्तमधम्मवुडे हु दुल्लदा ।

कुत्तिथिनिसेवए जणे,

समय गोथम ! मा पमायए ॥१८॥

भाषा - अदीणचिदियत्तमपि स लभते,

उत्तमधर्मधुतिदिं दुलभा ।

कुत्तीथिनिसेवको जनो,

समय गौतम मा प्रमादीः ॥१८॥

अन्वयार्थ - (गायम) हे गौतम ! (अदीणचिदि
यत्त पि) पाँचों इन्द्रियों का सम्पूर्णता भी (से) यह जाव
(लहे) प्राप्त करे तभी (उत्तमधम्मवुडे) अर्थात् धर्म का
अपण होना (दुल्लदा) दुर्लभ है । (हु) निश्चय करके,
क्योंकि (जणे) बहुत से मनुष्य (कुत्तिथिनिसेवए) कुत्तीथी

का उपासना करनेवाले हैं । अतः (समय) समय मात्र का भा (मा पमायए) प्रवाद मत कर ।

भाषार्थ - हे गौतम ! पवित्रोद्दिष्टा की सम्पूर्णतावाले को आथ देश में मनुष्य जन्म भी मिल गया तो अच्छे शास्त्र का ध्वण मिलना और भा कठिन है क्योंकि बहुत से मनुष्य जो इह लौकिक सुखों को ही धर्म का रूप देने वाले हैं इतौर्था रूप हैं । नाम मात्र के गुरु कहलाते हैं । उनका उपासना करने वाले हैं । इसलिए उत्तम आश्र धोता हे गौतम ! कर्मों का नाश करने में तनिक भी डील मत कर ।

मूलः-लध्दूणवि उत्तम सुद,

सदृण्या पुणरवि दुल्लडा ।

मिच्छत्तनिसेवए जण,

सयम गोयम ! मा पमायए ॥१६॥

एषा लध्दूणाऽपि उत्तमा धृति

धद्धान पुणरपि दुर्लभम् ।

मिच्छन्निसेवका जनो,

समय गौतम ! मा प्रयादी ॥१६॥

अथयार्थ (गोयम) हे गौतम ! (उत्तम) प्रधान शास्त्र (सुद) ध्वण (लध्दूण नि) मिलने पर भा (पुणरा वि) पुन (सदृण्या) उस पर धद्दा होना (दुल्लडा) दुर्लभ है । क्योंकि (जण) बहुत से मनुष्य (मिच्छत्तनिसेवए)

मिथ्यात्व का सेवन करते हैं । अतः (समय) समय मात्र का (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थः—हे गौतम ! सचद्वय का धरण भी हो जायता भी उष पर भ्रष्टा होगा महान् कठिन है । क्योंकि बहुत से ऐसे भी मनुष्य हैं जो सचद्वय धरण करके भी मिथ्यात्व का बह ही जों के साथ सेवन करते हैं । अतः ह भद्रवान् गौतम ! सिद्धावस्था को प्राप्त करर में आलस्य मत कर ।

मूलः—धम्म पि ह मट्ठतया,

दुल्लहया कारणं कासया ।

इह कामगुणेहि मुच्छिया,

समय गोयम ! मा पमायए ॥२०॥

छाया -धर्ममपि हि श्रद्धघत ,

दुर्लभशः कायेन स्वशेका ।

इह कामगुणैर्मुच्छिता ,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥ २० ॥

अ-वयार्थ - (गोयम) हे गौतम ! (धम्म पि) धर्म को भी (मट्ठतया) धरते हुए (कारणं) काया करके (कासया) रस्य करना (दुल्लहया) दुर्लभ है (ह) क्योंकि (इह) इस मण्डल में बहुत से जन (कामगुणेहि) भोगादि के शिष्यों से (मुच्छिया) मुच्छित हो रहे हैं अतः (समय) समय मात्र का (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थ - हे गौतम ! प्रबुद्ध अवस्था पर ध्यान होने पर भी उसके अनुसार चलना और भी कठिन है । धर्म को सलाह देने वाले काचाल तो बहुत लोग मिलेंगे पर उसके अनुसार अपना जीवन बिताने वाले बहुत ही थोड़े देखे जावेंगे । क्योंकि इस प्रकार के काम भोगों से मोहित हो कर अपनेको प्राण अपना अमूल्य समय अपने हाथों खो रहे हैं । इसलिए ध्यानपूर्वक नियाह करने वाले हे गौतम ! कर्मों का निराकरण करने में एक क्षण मात्र कभी प्रमाद मत कर ।

मूल - परिजूरइ ते सरीरय,

केसा पडुरया हवति ते ।

से सोयवने य हायई,

समय गोयम ! मा प्रमाय ॥ २१ ॥

छायाः-परिजीयति ते शरीरक

वेशा पाण्डुरका भवति ते ।

तव धोप्रबल च हीयते,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥ २१ ॥

अत्रयाथ - (गोयम) हे गौतम ! (ते) तेरा (सरीरय) शरीर (परिजूरइ) जाण होते जा रहा है । (से) तेरे (केसा) बाल (पडुरया) सफेद (हवति) होते जा रहे हैं । (य) और (से) वह शक्ति जो पहले थी (सोयबल) धोतेन्द्रिय की शक्ति अथवा "सुखबल" कान, नाक, आँख,

जिहा आदि की शक्ति (हायर्ड) हीन होती जा रही है ।
अतः (समय) समय मात्र का भा (मा प्रमायए) प्रमाद
मत कर ।

भाषार्थ - हे गौतम ! आये दिन तरी वृद्धावस्था निकट
आती जा रही है । बाल सफ़द होते जा रहे हैं । और कान
नाक, आंख, जीभ, शरीर, हाथ पैर आदि का शक्ति भी
पहले की अपेक्षा न्यून होती जा रही है । अतः हे गौतम !
समय को अमूल्य समझ कर धर्म का गानन करने में लक्षण
भर का भी प्रमाद मत कर ।

मूल - अरई गढ विसूइया,
आयका विविदा फ़सति ते ।
विद्वडइ विद्वसइ ते शरीरय,
समय गोयम । मा प्रमायए ॥ २२ ॥

दाया - शरतिर्गण्ड विसूचिका,
आतवा विविधा स्पृशन्ति ते ।
विद्वियते विध्यस्यति ते शरीरक,
समय गौतम । मा प्रमादी ॥२२॥

अ-उपार्थ - (गोयम ।) हे गौतम ! (अर^२) चिरा
को उदग (गढ) गॉठ गूमद (विसूइया) दस्त व-टी और
(विविदा) विविध प्रकार के (आयका) प्राण घातक रोगों
को (ते) तेरे जैसे ये बहुत से मानव शरीर (दुषति) स्वर्श

करत हैं (त शरीर्य) तेर जैसे य बहुत मानव शरीर
(विद्वद्) बल की हीनता से गिरते जा रहे ह । और
(विद्वत्) अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं । अत
(समय) समय मात्र का (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भावार्थ - हे गौतम ! यह मानव शरीर उद्वेग, गाठ,
शुभदा, घमन, विरेचन और प्राण घानक रोगों का घर है
और अत में बल हीन हाकर मृत्यु को भी प्राप्त हा जात है ।
अतः मानव शरीर को ऐसे रोगों का घर समझ कर हे
गौतम ! मुक्ति को पाने में विलम्ब मत कर ।

मूलः-वोद्धिद सिण्णहमप्पणो,

कुमुय सारहय वा पाणिय ।

से सव्वसिण्णहवज्जिए,

समय गोयम । मा पमायए ॥२३॥

ध्याय व्युच्छिधि स्नेहमात्मन ,

कुमुद शारदमिध पाणीयम् ।

तत् सवस्नेहवजित ,

समय गौतम । मा प्रमादी ॥२३॥

अन्यवार्थ -(गोयम ।) हे गौतम ! (सारहय)
शरद ऋतु के (कुमुय) कुमुद (पाणिय) पानी को (वा)
जैसे स्वाग देते हैं । ऐसे ही (अप्पणो) तू अपने (सिण्णह)
स्नेह को (वोद्धिद) दूर कर (से) इसलिये । सव्वसिण्ण

द्वयजिण्) सर्व प्रकार के स्नेह को त्यागता हुआ (समय) समय मात्र का भी (मा पमायण्) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थः—हे गौतम ! शरद ऋतु का चंद्र विकासी कमल जैसे पाना को अपने से पृथक् कर देता है । उसी तरह तू अपने माह को दूर करने समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

मूल - चिच्चाण धण च भारिय,
 पव्वइओ हि सि अण्णारिय ।
 मा वत पुणो वि आविए,
 समय गोयम ! मा पमायण् ॥२४॥

छाया -स्यकरघा घा च भार्यो,
 प्रजितो ह्यस्यनगारताम् ।
 मा घात्त पुनरप्यापिघे,
 समय गौतम ! मा प्रमादो ॥२५॥

अ वयार्थ - (गोयम !) हे गौतम ! (हि) यदि तुने (धण) धन (च) और (भारिय) भाया को (चिच्चाण) छोड़कर (अण्णारिय) साधुपनको (पव्वइओसि) प्राप्त कर लिया है । अतः (वत) वमन किये हुए को (पुणो वि) फिर भी (मा) मत (आविए) पी, प्रत्युत त्याग वृत्ति को निश्चल रखने में (समय) समय मात्र का भी (मा पमायण्) प्रमाद मत कर !

भाषार्थ - हे गौतम ! तूने धन और धर्म को त्याग कर साधु वृत्ति को धारण करने का मन में इच्छा काली है । ता उन त्याग हुए विपल पदार्थों का पुन सेवन करने का इच्छा मत कर । प्रयुक्त त्याग वृत्ति को हृदय काल में एक समय मात्र का भी प्रमाद कमा मत कर ।

मूल - न ह्यु जिणो अज्ज दीसई,

बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए ।

सपइ नेयाउए पइ,

समय गोयम । मा पमायए ॥ २५ ॥

छा ॥ - १ खलु जिमोऽद्य दृश्यते

बहुमनो दृश्यते माग्गदेशुक ।

सम्प्रति नैयारयिके पथि,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥ २५ ॥

अव्याध - (गोयम ।) हे गौतम ! (अज्ज) आज (ह्यु) निश्चय करके (जिण) तापकर (न) नहीं (दीसई) दिखते हैं, विष्णु (मग्गदेसिए) माग दशक आर (बहुमए) बहुतों का माननीय मोक्षमाग (दिस्सइ) दिखता है । एषा कहकर पश्चिम काल के साग धर्म ध्यान करमे । तो भला (सपइ) वर्तमान में मेरे मौजूद होत हुए (नेयाउए) नैयारयिक (पइ) मार्ग में (समय) समय मात्र का भी (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भावात् - हे गौतम ! पचम शाल म लोग कहेंग कि आज तार्थकर तो हे नहीं पर तीर्थवर प्रदत्त माग दशक आर अननों के द्वारा माननीय यह मात्समार्ग है ऐसा वे सम्बन्ध प्रकार से समझत हुए धम का आराधना करने में प्रमाद नहीं करेंगे । तो मेरे मौजूद रहते हुए न्याय पर से साध्य स्थान पर पहुँचने के लिए हे गौतम ! समय मान का भा प्रमाण मत कर ।

सूत्रः—श्वसाहिय कटगापह,

ओद्गणा सि पद महालय ।

गच्छसि मग विसोहिया,

समय गोयम ! मा पमायए ॥ २६ ॥

छाया - श्वशोधय कटकपय,

अवतीर्णोऽसि पन्थान महालय ।

गच्छसि मार्ग विशोधय,

समय गौतम ! मा प्रमादा ॥ २६ ॥

अ चमार्थ - (गोयम ।) हे गौतम ! (कटगापह) श्वक सहित पय का (श्वसाहिया, छोड़ कर (महालय, शि शाल माग को (ओद्गणोसि) प्राप्त होता हुआ, उसी (विसोहिया) विशेष प्रकार से शोधित (मग) माग को (गच्छसि) जाता है । अतः इसी मार्ग को तय करने में (समय) समय मात्र का (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थ - हे गौतम ! धबुधित अतथ्य पथ को छोड़ कर जो तुने विशाल तथ्य मार्ग को प्राप्त कर लिया है । और उसको अनुगार तू उही विशाल मार्ग का पथिक भा बन चुका है । अतः इसी मार्ग से अपने निजा स्थान पर पहुँचने के लिए हे गौतम ! तू एक समय मात्र का भा प्रमाद मत कर ।

मूल. - अथ न जह भारवाहए,

मा मग्ने विसमेऽवगाहिया ।

पच्छा पच्छाणुतावए,

समय गायम । मा पमायए ॥२७॥

छाया - अपलो यथा भारवाहक

मा मार्गं विषममथगाह्य ।

पश्चात्पश्चादनुताप्यते,

समय गौतम । मा प्रमादी ॥ २७ ॥

अ वयाथ - (गौतम !) हे गौतम ! (वह) जैसे (अथले) बल रहित (भारवाहए) बोझा टाने वाला मनुष्य (विसमे) विषम (मग्ने) मार्ग में (अवगाहिया) प्रवेश हा कर (पच्छा) फिर (पच्छाणुतावए) पश्चात्तर करता है । (मा) एना मत बन । परन्तु जो सरल मार्ग मिला है उसको तय करने में (समय) समय मात्र का (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थ - हे गौतम ! जैसे एक दुर्बल आदमः बोझ

उठा कर विकट मार्ग में चल जान पर महान् पश्यात्ताप करता है । ऐसे ही जो १२ अल्परा के द्वारा प्रख्यात सिद्धांतों को भ्रष्ट कर छुप के पछि होंग, वे चौरासी की चक्र फेरी में जा पड़ेंग । थार वहां व महान् कष्ट उठावेंग । अतः पश्चात्ताप करने का मौका न आवे एता काय करने में हे गौतम । तु क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

शूलः—तिरणो हु सि अरण्य मह,
किं पुण चिट्ठसि तीरमागणो ।
अभितुर पार गमित्तए,
समय गोयम । मा पमायए ॥१८८॥

छायाः—तीर्णे मत्तस्यण्व महान्त,
किं पुनस्तिष्ठसि तीरमागतः ।
अभित्तरस्य पार गन्तु,
समय गौतम । मा प्रमादी ॥ १८८ ॥

अर्थ—(गौतम) हे गौतम । (मह) बड़ा (अरण्य) समुद्र (तिर्णो हु सि) मानो तु पार कर गया (पुण) फिर (तीरमागणो) किनारे पर आया हुआ (किं) क्यों (चिट्ठसि) रुक रहा है । अतः (पार) परले पार (गमित्तए) जाने के लिए (अभितुर) शक्यता कर, ऐसा करने में (समय) समय मात्र का (मा पमायए) प्रमाद मत कर ।

भाषार्थ दे गौतम । अपने श्वाप को सवार रूप मान्
समुद्र के पार गया हुआ समस्त कर फिर उस किनारे पर
ही क्यों हफ रहा है । परले पार टोन के लिए अथात् मुक्ति
में जाने के लिए शिष्टता कर । ऐसा करने में दे गौतम ।
तू क्षण भर का भा प्रमाद मत कर ।

मूल - अकलेवरसेगुमूसिया,

सिद्धिं गोयम ! लोय गच्छामि ।

स्वम च सिव अणुत्तर,

सयम गोयम ! मा पमायए ॥२६॥

छाय अकलेवर श्रेणिसुच्छित्तुत्य

सिद्धिं गातम ! लोक गच्छामि ।

स्वम च शिवमनुत्तर,

समय गौतम ! मा प्रमादी ॥२६॥

अन्वयाथ - (गोयम ।) दे गौतम । (अकलेवरसे
गु) कलेवर रहित होने में सहायक भूत त्रेणा को (उचि
था) बना कर अथात् प्राप्त कर (स्वम) पर चर का भय
रहित (च) और (सिव) उपद्रव रहित (अणुत्तर)
प्रधार । सिद्धिं) सिद्धि (लोय) लोक का (गच्छामि)
जाना ही है, फिर (सयम) समय मात्र का (मा पमायए)
प्रमाद मत कर ।

भाषार्थ दे गौतम । सिद्ध पद जाने में जो शुभ अर्थ

धर्माय रूप क्षयक धैर्ये सहायक भूत इ, उसे पा कर एवं उत्तरात्तर उसे बढ़ाकर, भय एवं उपद्रव रहित अटल सुम्नो का जा स्थान है वही तुम्हें जाना है। अतः हे गौतम ! धर्म आराधना करने में पल मात्र की भी टील मत कर ।

इस प्रकार निग्रन्थ की ये सम्पूर्ण शिक्षाएँ प्रत्येक मानव देह धारा को अपने लिए भी समझना चाहिए । और धर्म की आराधना करने में पल भर का भी प्रमाद कभी न करना चाहिए ।

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥



ॐ

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय ग्याहरवा)

भाषा-स्वरूप

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः-जा य सच्चा अवत्त्वा,
सच्चामोस, य जा मुसा ।
जा य बुद्धेदिऽद्याइरणा,
न त भायिज्ज षन्नव ॥१॥

छाया-या च सत्याऽवक्त या,
सत्यामृषा च या मृषा ।
या च बुद्धेर्नाचीर्णा,
न ता भापत प्रछाषान् ॥१॥

अवयाधः-हे इन्द्रभूति । (जा) जी (सच्चा) सत्य
भाषा है, तदपि षद् (अवत्त्वा) नहीं बालने योग्य (य)
और (जा) जी (सच्चामोषा) कुछ सत्य कुछ असत्य
ऐसी मिश्रित भाषा (य) और (मुसा) भूठ, इस प्रकार

(जा) जो भाषाएँ (बुद्धि) तीर्थकरों द्वारा (अणुइच्छा) अनाचाण हैं (त) उन भाषाओं को (पत्र) प्रशस्ति पुरुष (न भासिञ्ज) कभा नहीं बोलत ।

भाषार्थ - हे गौतम ! सत्य भाषा हाते हुए भी यदि भाव्य है तो वह बोलन के योग्य नहीं है, और कुछ सत्य कुछ असत्य ऐसी मिश्रित भाषा तथा बिलक्षण असत्य ऐसी जा भाषाएँ हैं जिनका कि तीर्थकरों ने प्रशंस नहीं किया और बोलने के लिए निषेध किया है, ऐसी भाषा बुद्धिमान् मनुष्य को कभा नहीं बोलना चाहिये ।

मूल.—असच्चमोस सच्च च, अणुवज्जमककस ।

समुपेहमसदिद्ध, गिर भासिञ्ज पन्न ॥२॥

ध्याया - असत्यामृण सत्याच,

अनवद्यामककशाम् ।

समुत्प्रेन्याऽनदिग्घा

गिर भापेत प्रज्ञायान् ॥२॥

अच्ययार्थः इन्द्रभूति ! (असच्चमोस) - यावद्दार्शनिक भाषा (त) और (अणुवज्ज) बध्य रहित (अककक) ककशता रहित (असदिद्ध) सदेह रहित (समुपेह) विचार कर ऐसी (सच्च) सत्य (गिर) भाषा (पक्ष) बुद्धिमान् (भासिञ्ज) बोलें ।

भाषार्थ - हे गौतम ! सत्य भा नहीं, असत्य भी नहीं

एसा व्यवहारिक भाषा जैग बह गौर आ रहा है आदि और
दिसा का कष्ट न पहुँचे बसा एव कष्ट बढोर तथा उदह
रहित ऐसी भाषा का भा सुद्धिमान् पुरुष समयानुसार विचार
कर बोलते हैं ।

मूल - तद्देव फरुसा भासा, गुरुभूश्रोवषादणी ।

सच्चवा वि सा न वत्तव्वा, जणा पावस्स आगमो ॥३॥

छाया तथैव परुषा भाषा, रुरु भूतोपघातिणी ।

सत्याऽपि सा न वत्तव्वा, यत पापम्यागम् ॥३॥

अ वयार्थ हे न द्रभूत । (तद्देव) इसा प्रकार
(फरुसा) कठोर । गुरुभूश्रोवषादणी) अनेकों प्राणियों की
नाश करने वाली (सच्चवा वि) सत्य है । तो भा (पथो)
जिससे (पवस्स) पाप का (आगमो) आगमन होता है
(सा) वह भाषा (वत्तव्वा) बोलने योग्य (न) नहीं है ।

भावार्थ हे यातम । आ मनुष्य कहनात हे उनके
लिए कठोर एव जिससे अनेकों प्राणियों की हिमा हा, एसी
सत्य भाषा भा बालने योग्य नहीं हानी है । यद्यपि वह परुष
भाषा है, तथापि वत्तव्वा करी भाषा है उसके बालने से
पाप का आगमन हाता है, जिससे आत्मना भारवान् बनती है ।

मूल - तद्देव काण काणे सि, पडम पडगे चि वा ।

वादिअ वा वि रोगि सि, तेण चारे चि नो वपा ॥४॥

छाया तथैव काण काण इति,

पण्डक पण्डक इति वा ।

व्याधिमन्त वाऽपि रोगीति,

स्तन चौर इति न वदत् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ -इन्द्रभूत । (तद्देव) वने हा (राम) वने से (वाणे) काना है (ति) एमा (वा) अथवा (पण्डक) नपुमक को (पण्डके) नपुमक है (ति) एमा (वा) अथवा (वाहिष्) व्याधिवाने से (रोगि) रोगी इ (ति) ऐमा और (तण) चौर को (चोरे) चार है (ति) ऐमा (नो) नही (वण) धोना चाहिए

मायार्थ -हे गौतम ! जो मनुष्य कहलाते है वे को को काना, नपुमक को नपुमक, व्याधि वाले को रोगी और चौर को चोर, एमा कमा नहीं बोलत है । क्योंकि वैसा बोलने में भाषा मल्ल ही मल्ल हो, पर एसा सोचने से उनका दिल दुश्मता है । इनालिए यह अथय भाषा है और इसे कमा न बोलना चाहिए ।

मूलः-देवाण मणुष्याण च, तिरिथाण च वुग्गहे ।

अमुगाण जथा होठ,मा वा होठत्ति नो वए ॥५॥

आया देवाण मणुजाना च,
तिरिथा च विप्रदे ।

अमुकाण जया भवतु,

मा वा भवत्विति नो वदेत् ॥ ५ ॥

अचयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (देवाण) दवतओं के (च) और (मणुयाण) मनुष्या के (च) और (तिरियाण) तिरियों के (युगहे) युद्ध में (अमुयाण) अमुक की (जयो) जय (होउ) हो (वा) अथवा अमुक की (मा) मत्त (होउ) हो (ति) एसा (नो) नहीं (वए) बोलना चाहिए ।

भाषाथ - हे गौतम ! देवता मनुष्य और तिरियों में जो परस्पर युद्ध हो रहा हो उस में भी अमुक की जय हो अथवा अमुक की पराजय हो ऐसा कभी नहीं बोलना चाहिए । क्योंकि एक का जय और दूसर की पराजय बोलने से एक प्रसन्न होता है और दूसरा नाराज होता है । और जो बुद्धिमान् मनुष्य, इनी जन हस्त हैं व किसी को दुस्त्र नहीं करते हैं ।

मूलः—तथैव सावज्जगुमोयणी गिरा,

अवधारिणी जा य परावधाइणी ।

से कोहलोहभयदास व माणवो,

न हासमाणो वि गिर वएज्जा ॥ ६ ॥

अथा—तथैव सावद्यापुमोदिनी गिरा,

अवधारिणी या च परोपघातिनी ।

ता क्रोधलोभभयदास्येभ्यो मानय ,

न हसन्नपि गिर वदेत् ॥ ६ ॥

अचयार्थ हे इन्द्रभूति ! (माणवा) मनुष्य (राघ-

माणा) ईसता हुआ (वि) भी (गिर) भाषा को (न) न
 (वएज्जा) बोले (य) आर (तदेव) वैसे ही (से) वह
 (कोह) क्रोध से (लोह) लोभ से (भयसा) भय से (साव
 जणुमोयणी) सारथ अनुमोदन के साथ (ओहपरिणी)
 निरित और (परोवघाइणी) दूसरे जीवों क हिंसा करने
 वाली, ऐसा (जा) जो (गिरा) भाषा है उसको न बोले ।

भावार्थ -हे गौतम ! बुद्धिमान् मनुष्य वह है जो वह
 वह ईसता हुआ भी कभी नहीं बोलता है और इसी तरह
 सावय भाषा का अनुमोदन करके तथा निश्चयकारा और
 दूसरे जावों को दु ख देने वाली भाषा कभी नहीं बोलता है ।

मूल.-अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अतरा ।

पिट्ठिमस न खाएज्जा, मायमोस विवज्जे ॥७॥

छाया -अपृष्ठो न भाषेत्, भाषमाणस्यान्तरा ।

पृष्ठमास न खादेत्, मायामृषा विधर्जयेत् ॥७॥

अव्ययार्थ -हे इन्द्रभूति ! बुद्धिमान् मनुष्यों को (भा
 समाणस्स) बोलते हुए के (अतरा) बीच में (अपुच्छिओ)
 नहीं पकने पर (न) नहीं (भासिज्ज) बोलना चाहिए और
 (पिट्ठिमस) चुगली भी (न) नहीं (खाएज्जा) खानी चाहिए ।
 एव (मायामोस) कण्ट युक्त असत् बोलना (विवज्जे)
 छोड़ना चाहिए ।

भावार्थ -हे गौतम ! बुद्धिमान् वह है, जो दूसर बोल

रहे हों उनके शान में डाढ़ पूड़ विना न बोन और जा
डाढ़ पशु में उनके अंगुणों को भी कभा न बे लता ह।
तथा जिसने कपट युक्त अर्था भाषा हो भा गरा के लिए
छोड़ रखा हो ।

मूल - सखा सहेउ आसाद कटया,

अश्रोमया उच्छदया नरेण ।

अणामप जो उ सहज्ज कटए,

वद्मए कएणसो म पुज्जो ॥८॥

ध्या - श्रुतया साहुमाशयाकटका

अयामया उ माहमो गरेण ।

अनाशया यस्तु सहेन कटकान्,

यान्मवान् कएणसर स पूजय ॥८॥

अ ध्याय - हे इ मूल ! (उच्छदया) उच्छाद
(गरा) मनुष्य (असाद) अशास (अश्रोमया) लाह
मय (कटया , कट) या तीर गहज) सन्न को (सहा)
समर्थ है । पर तु (कएणसर) धातु क द्वित्री म प्रकृ मरो
वो (कटका) कौट क समान (वद्मए) वचना हो
(अणामप) अना आशा स (जा । जो (पुज्ज) धन
करता है (स) वर (पुज्जो) ेष्ट है ।

भाषा - हे मौनम ! उच्छाद पूरक मनुष्य अथप्रसा
या आशा स लो, र एड के पार और कौटा तक हो पीडा

वो गुशी खुशी सहन कर जाते हैं । परन्तु उ ह वचन रूपी कण्टक सहन दोना बड़ा ही कठिन मालूम होता है । ता फिर आशा रहित होकर कठिन वचन सुनना तो बहुत ही दुष्कर है । परन्तु दिना किसी भी रसर की आशा के, चानों के द्विशों द्वारा कण्टक के समान वचनों को सुन कर जो मह लेता है, वय उसी को श्रेष्ठ मनुष्य समझना चाहिए ।

मूलः मुहुत्तदुम्खा उ हवति कटया,
अश्रमया ते वि तश्रो सुउद्धरा ।
वायादुरुत्ताणि दुरद्धराणि,
वैराणुवधीणि महोभयाणि ॥६॥

छाया मुहुत्तदु नास्तु भवन्ति कण्टका ,
अयोमयास्तेऽप तत सुद्धरा ।
वाचा दुरुत्ताणि दुरद्धराणि,
वैराणुवधीणि महाभयानि ॥६॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (अश्रमया) लोह निर्मित (कटया) कौटों से (उ) तो (मुहुत्तदुम्खा) मुहुत्त मात्र दुम् (हवति) होता ह । त वि) वह भी (तश्रो) उस शरार से (सुउद्धरा) सुख पूर्वक निकल सकता है । परन्तु (वैराणुवधीणि) वैर को बढ़ाने वाले शर (महोभयाणि) महाभय को उत्पन्न करने वाले , वायादुम्ताणि) कहे हुए कठिन वचनों क (दुरुद्धराणि) हृदय से निकलना मुश्किल है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! लोह निर्मित कण्टक तीर से तो कुछ समय तक ही तुम्हें दाता है, और वह भी शरीर से अच्छी तरह निघता जा सकता है । किन्तु कड़े हुए लोहण मार्मिक वचन वर को बड़ाते हुए नरकादि दुखों को उत्पन्न कराते हैं । और जावन पर्यन्त उन कड़े वचनों का हृदय से निकलना महान् कठिन है ।

मूलः-अवण्णवाय च परमुदस्स,

पच्चवस्सथो पडिणीय च भास ।

ओहारिणिं अप्पियकारिणिं च,

भास न भासेज्ज सया स पुज्जो ॥ १० ॥

छाया - अवण्णवाद च परामुदस्स,

प्रत्यक्षन प्रत्यनीका च भाषाम् ।

अवधारिणिमपियकारिणिं च,

भाषा न भापेत् सदा सः पूज्य ॥१०॥

अ-वषार्थ - हे इन्द्रभूति ! (परमुदस्स) उस मनुष्य के बिना मौजूदगी में (च) और (पच्चवस्स) उसके प्रत्यक्ष रूप में (अवण्णवाय) अवणावाद (भासं) भाषा को (सया) हमेशा (न) नहीं (भासेज्ज) बोलना चाहिए (च) और (पडिणीय) अपकार (ओहारिणिं) निधयकारी (अप्पियकारिणिं) अप्रियकारी (भास) भाषा को भा हमेशा नहीं बोलता हो (स) वह (पुज्जो) पूजनीय मानव है ।

भाषार्थ हे मातम । जो प्रत्यक्ष या परोक्ष में श्रवण गुण वाद के बचन कभी भी नहीं बोलता है । उस तू चोर है । पुस्त्यायीं पुस्त्य का कहना कि तू नपुमक है । ऐसी भाषा, तथा अप्रियकारी श्रवकारी निश्चयकारा भाषा जो कभी नहीं बोलता हो, वह पूजनाय मानव है ।

मूलः—जहा सुणी पूइकरणी, निकसिज्जइ सब्बसो ।

एव दुस्सीलपडिणीए, मुइरी निकसिज्जइ ॥ ११ ॥

छाया - यथा शुनी पूर्तिकर्णी,

नि कास्यते सवत ।

एव दुःशील प्रत्यनीक

मुखरिर्निः कास्यते ॥ ११ ॥

श्रवणार्थ हे इन्द्रभूति ! (जहा) जैसे (पूइकरणी) सदैव कान वालों (सुणी) बुद्धिया को (सब्बसो) सब जगह से (निकसिज्जइ) निकालत है । (ए) इसी प्रकार (दुस्साल) खराब आचाराण वाले (पडिणीए) गुद और धम से द्वेष करने वाले श्रव (मुइरी) थट सट बड़ बड़ाने वाले का (निकसिज्जइ) कुल में से बाहर निकाल देते हैं ।

भाषार्थ - हे मातम ! सदैव कानवाला बुद्धिया को सब जगह बुद्धिकार मिलता है और वह हर जगह से निकाला जाता है । इसी तरह दुराचरणीय एव धम से द्वेष करने वालों और मुँह से कटुवचन बालन वालों को सब जगह से

पुष्पात् । मलता है । आर वही से निवाल रिया जाना है ।

मूल - कण्डुडग चइत्ताण, विट्ट भुमइ सुधरे ।

एव शील चइत्ताण, दुस्सोने रमई मिण ॥ १२ ॥

काश कण्डुडग त्वक्त्वा,

विष्ण मूदक्त्वे शकर ।

एव शील त्वक्त्वा,

दु शील रमते मृग ॥ १२ ॥

अन्वयात् - द्रव्यम् । नसे (सुधरे) गूढर (कण्डुडग) धा के दूध को (चइत्ताण) छक पर (विट्ट) षट्ठा हा को (भुन) गाता है, (एव) इना तद्द (मिण) पत्तु के समाग मूल मजुध (मल) कच्छी प्रकृति को (चइत्ताण) छक कर (दुस्सोने , शराक प्रकृति ही में (रमई) आनंद मानता है ।

भावार्थः द्रव्यतम । निता प्रहार मुष्पर धा व क भाजन को छेड़ कर षट्ट हा गाता है, इसी तरह मूल मजुध सदाचार जन और मधुर भाषण आदि अच्छा प्रकृति को छोड़ कर दुःखान्तर सेवन करने तथा कष्टम पण करने ही में आनंद मानता रहता है, परन्तु उक्त मूर्ख मजुध को इस प्रकृति से अत में बड़ा परात्मान करना पड़ता है ।

मूल - आहृत्त चहालिय कट्टु,

१ निरुद्विज्ज कयाइ वि ।

कड कडेति भासेजा,

अकड णो कडेति य ॥ १३ ॥

छाया - कदाचिद्य चारुडालिक् कृत्वा,

न निहनुधीन कदापि च ।

एत एतमिति भवित,

अरुन णे एतमिति च ॥१३॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति (आदृष्य) कदाचित् (कडा लिय) क्रोध से झूठ भाषण हो गया हो तो झूठ भाषण (कट्ट) उसके उसको (कयाइ) कभी (वि) भी (१) १ (निरुद्धविउज छिपाना चाहिए (कड) किया हो तो (कडेति) किया है एसा (भासेजा) बोलना चाहिए (य) और (अरुड) नहीं किया हो तो (णो) नहीं (कडेति) किया ऐसा बोलना चाहिए ।

भावार्थ - हे गौतम ! कस्य किरा से क्रोध के आवेश में आकर झूठ भाषण हो गया हो तो उस का प्रायश्चित्त करने के लिए उसे कभी नहीं छिपाना चाहिए । कट्ट भाषण किया हो तो उसे स्वारु कर लेना चाहिए कि हां मुझे से हो तो गया है । और नहीं किया हां तो ऐसा कट्ट देना चाहिए कि मैंने नहीं किया है ।

मूलः-पडिणीय च बुद्धाण, वाया अदुव कम्मणा ।

आवी वा जइ वा रइस्से, णेव बुद्धा कयाइ वि॥१४॥

छाया प्रत्यनीक च बुद्धाना,

वाचाऽथवा कर्मणा ।

आविर्था यदि वा रदसि,

नैव कुर्यात् कदापि च ॥१४॥

अथयार्थे - हे इन्द्रभूति ! (बुद्धाण) तत्त्वज्ञ (च) और सभी साधारण मनुष्यों से (पडिणाय) शत्रुता (वाया) वचन द्वारा और (अटुव) अथवा (कम्मणा) कर्मों द्वारा (छावीया) मनुष्यों के देखते कपट रूप में (जद वा) अथवा (रदस्ये) एकांत में (वयाइ पि) कभी भी (एव) नहीं (कुर्यात्) करना चाहिए ।

भावार्थ हे गौतम ! क्या तो तत्वज्ञ और क्या साधारण सभी मनुष्यों के साथ कटु वचनों से तथा शरीर द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में कभी भी शत्रुता करना बुद्धि मत्ता नहीं कही जा सकती ।

मूल - जणवयसम्मयठवणा, नामे रूवे पटुच्च सत्त्वे य ।

ववहारभावजोगे, दसमे ओवम्म सत्त्वे य ॥१५॥

छा ॥ - जनपद् सम्यक्त्यस्थापना च,

नाम रूप प्रतीत्य सत्य च ।

व्यवहारभावे योगानि,

दशमौपमिश्च सत्य च ॥१५॥

अथयार्थे - हे इन्द्रभूति ! (जणवय) अपने अपने देश की (य) और (सम्मयठवणा) एकमत की स्थापना

की (नामे) नाम की (ह्य) ह्य की (पङ्क्त सन्धे) अपेक्षा से कही हुई (य) आर (व्यवहार) व्यावहारिक (भाव) भाव ली हुई (जोगे) यौगिक (य) और (दसमे) दशवीं (ओषम्म) औपमिक भाषा (सन्धे) सत्य है ।

भाषाध - हे गौतम ! जिस देश में जो भाषा बोली जाती हो, जिस में अनेकों का एक मत हो, जैसे एक से और भी वस्तु पैदा होती है, पर कमल ही को पक्क कहते हैं । जिसमें एम्मत है, नापने के गज और तोलने के बाट बर्गरह को जितना लम्बा और जितना बजन में लोगों ने मिलकर स्थापना कर रक्खा हो । गुण सहित या गुण गू-य जिसका जैसा नाम हो, वैसा उच्चारण करने में, जिसका जैसा वेप हो उसके अनुसार कहने में, और अपेक्षा से, जैसे एक की अपेक्षा से पुत्र और दूसरे की अपेक्षा से पिता उच्चारण करने में जो भाषा का प्रयोग होता है वह सत्य भाषा है । और ईधन क जलने पर भ चूहा जल रहा है, ऐसा व्यावहारिक उच्चारण एव ताते में पाँचों वर्णों के होते हुए भी “ हरः ” ऐसा भाव मग बचन और अमुक सेठ कोक पति है फिर मले दो चार हजार अधिक हो या कम हो, उसको वै कपति कहने में । एव दशवीं उपमा में जिन वाक्यों का उच्चारण होता है वह सत्य भाषा है । यों दस प्रकार का भाषाओं का ज्ञानी जों ने सत्य भाषा कही है ।

मूल.-कोहे माणै माया, लोभे पेज्ज तहेव दोसे य ।

हासे भए अक्खाइय, उवपाए निहिसिथा दसमा ॥१६॥

छाया -क्रोध मान माया,

लोभ राग तथैव द्वेषश्च ।

हास्य भय आर्यातिक

उपघातो निःश्रितो दशमा ॥१६॥

अ-घयाथ -हे इन्द्रभूति ! (कहे) क्रोध (माये)
मान (माया) कषट (लोभे) लोभ (पेच्च) राग (तदेव)
वेने ही (दोषे) द्वेष (य) आर (हासे) हँसी (य)
और (भए) भय और (अक्खाइय) कलिरत अशर्या
(दशमा) दशवीं (अक्खाए) उपघात के (निहिसिथा)
श्राधित कही हुइ भाषा असत्य है ।

भाषाथ -हे गोत्रम ! क्रोध, मान, माया, लोभ, राग,
द्वेष, हास्य आर भय से बोला जान वाली भाषा तथा काल्प
निक अक्षर्या और दशवी उपघात (हिंसा) के श्राधित जिस
भाषा का प्रयोग किया गया है, वह असत्य भाषा है । इस
प्रकार का भाषा बोलने से आत्मा की अयोग्यति होती है ।

मूलः-इणमन्न तु अजाण इहमेगेसिमाहिय ।

देवउत्त अय लोए, धमउत्त ति आवरे ॥१७॥

इसरेण कडे लोए, पहाणाइ तहावरे ।

जीवाजीवसमाउत्ते, पुइदुवस्ससमन्निए ॥ १८ ॥

सयमुणा कडे लोए, इति युच महेमिणा ।

मारेण सथुया माया,तेण लोए असासए ॥१६॥

माहणा समणा एगे, आह अडकडे जगे ।

असो तत्तमकासी य, अयाणता मुस वदे ॥२०॥

छाया इदमन्यत्त अज्ञान, इहैकैतदाण्यातम् ।

देघाप्तोऽय, लोक , ग्रहोत्त इत्यपरे ॥ १७ ॥

ईश्वरेण कृतो लोक प्रधानादिना तथाऽपरे ।

जीवाजीवसमायुक्त , सुखदुःखसमन्वित ॥१८॥

स्वयम्भुवा कृतो लोक , इत्युक्त महर्षिणा ।

मारेण सस्तुता माया,तेन लोकोऽशाश्वतः ॥१९॥

माहता श्रमणा एके, आदुरएडरुत जगत् ।

असौ तत्त्वमकार्षीत्, अजानतः मृषा वदति २०

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (इह) इस सभार में

(मेमेलि) कई एक (अथ) अथ (अज्ञाण) अज्ञानी (इण)

इस प्रकार (आदिय) कहते हैं, कि (अय) इस (जीवा

जीव समाउते) जीव और अजीव पदार्थ से युक्त (सुख

दुःखसमन्वित) सुख और दुःखों से युक्त ऐसा (लोए) लोक

(देवउरो) देवताओं ने बनाया है (आबरे) और दूसरे यों

कहते हैं कि (बभउरोरी,ग्रहा) ने बनाया है । कोई कहते हैं कि

(लोए) लोक (इसरेण) ईश्वर ने (कडे) बनाया है ।

(तहाबरे) तथा दूसरे यों कहते हैं, कि (पहाणाइ) प्रकृति

ने बनाया है । तथा नियति ने बनाया है । कोई बोलते हैं, कि (लोए) लोक (सभुया) विष्णु ने (कहे) बनाया है । फिर मार "मृत्यु" बनाइ । (मारण) मृत्यु से (माया) माया (सभुया) पैदा की (तण) इसी से (लोए) लोक (असासए) असासत है । (इति) ऐसा (महसिणा) महसियों ने (सुता) कहा है । और (एगे) कइ एक (माहणा) माहण (समणा) समणा (जगे) जगत् (अकडे) अकडे से उत्पन्न हुआ ऐसा (अह) कहते हैं । इस प्रकार (अघो) मद्गा ने (तरामवासी य) तत्व बनाया ऐसा कहने वाले (अयाणता) तत्व को नहीं जानत हुए (मुध) मूठ (वदे) कहत हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! इस ससार में ऐसे भी लोग हैं, जो कहते हैं, कि जड़ और चैतन स्वरूप एक छुट दुख युक्त जो यह लोक है, इसकी इस प्रकार की रचना देवताओं ने की है । कोई कहत है कि मद्गा ने सृष्टि बनायी है । कोई ऐसा भी कहते हैं कि इन्द्र ने जगत् का रचना की है । कोई यों बोलते हैं कि एत्व, रज, तम, गुण की सम अवस्था को प्रकृति कहते हैं । उस प्रकृति ने इस ससार का रचना का है । कोई यों भी मानते हैं, कि जिस प्रकार कौट तीक्ष्ण, मयूर के पख विचित्र रंगवाले, मज में भिठाए, लहसुन में दुर्गंध, फमल सुगंधमय स्वभाव से ही होते हैं ऐसे ही सृष्टि की रचना भा स्वभाव से ही होती है । कोई इस प्रकार कहते हैं, कि इस लोक का रचना में स्वयभू विष्णु अकेले थे । फिर

सृष्टि रचने को चिन्ता हुई जिससे शक्ति पैदा हुई । तदनंतर सारा ब्रह्मण्ड रचा और इतनी विस्तार वाली सृष्टि की रचना होने पर यह विचार हुआ कि इस का समावेश कहाँ होगा ? इस लिए जन्म हुआ को मारने के लिए यम बनाया । उस ने फिर माया को जन्म दिया । कोई यों कहते हैं, कि पहले ब्रह्मा ने अण्डा बनाया । फिर वह फूट गया । जिसके आधे का ऊर्ध्व लोक और अधे का अधालोक बन गया और उग में उभी समय मसुद्र, नदा, पहाड़, गाँव आदि सबों की रचना हो गयी । इस तरह सृष्टि को बनायी । ऐसा उनका कहना, हे मोक्षम ! सब से पृथक् है ।

मूल - सएहिं परियाएहिं, लोय बूया कटे सि य ।

तत्त ते ण विजाणति, ण विणासी कयाइ विार १ ।

छाया स्वके पर्याये लोक—

मधुघन कृतमिति च ।

सत्त ते ऽ विजानति,

१ विनाशी कदापि च ॥ २१ ॥

अ वयार्थः—हे इन्द्रभूति ! जो (सएहिं) अपनी अपनी (परियाएहिं) पर्याय कल्पना करके (लोय) लोक को अमुक अमुक ने (कटे सि) बनाया है, ऐसा (बूया) बोलते हैं । (ते) वे (तत्त) यथातथ्य तत्व को (ण) नहीं (विजाणति) जानते हैं । क्योंकि लोक (कयाइ वि) कभी भी (विणासा) नाशमान् (ण) नहीं है ।

आयोद्यः हे गौतम । जो लोग यह कहते हैं, कि इस सृष्टि को ईश्वर ने, देवताओं ने, ब्रह्मा ने तथा स्वयम् ने बनायी है, उनका यह कहना अपनी अपनी कल्पना मात्र है। वास्तव में मध्यातम्य बात को वे जानते ही नहीं हैं । क्योंकि यह लोक सदा अविनाशी है । न तो इस सृष्टि के बनने की आदि ही है और न अन्त ही है । हाँ, कालानुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है परन्तु सम्पूर्ण रूप से सृष्टि का नाश कभी नहीं होता है ।

॥ इति गेरुादर्शाऽध्यायः ॥



निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय धारहवा)

लेश्या-स्वरूप

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूल -किण्डा नीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तद्देव य ।

सुकलेसा य छट्टा य, नामाद् तु जद्वम ॥ १ ॥

छाया -रूपा नीला च कापोती च,

तेजः पद्मा तथैव च ।

शुक्लेश्या च पष्ठी च,

नामानि तु यथाक्रमम् ॥ १ ॥

अन्वयार्थ -हे इ इभूति । (किण्डा) कृष्ण (य)
 और (नीला) नील (य) और (काऊ) कापोत (य)
 और (तेऊ) तजो (तद्देव) तथा (पम्हा) पद्म (य)
 और (छट्टा) छठी (सुकलेसा) शुक्ल लस्या (नामाद्)
 य नाम (जद्वम्मे) यथा क्रम जाते ।

भावार्थ -हे आथ । पुराय पाप करते समय आत्मा
 के जैसे परिणाम होते हैं उसे महा लेश्या के नाम से पुकारेंग

यदि लक्ष्य का भागों में विभक्त हो जाये यथा वन से नाम
 यों हो । (१) कृष्ण (२) नील (३) कापाल (४)
 लज्जु (५) पद्म आदि (६) शुद्ध लक्ष्य । ह मत्तम । कृष्ण
 लक्ष्य का स्वरूप यों है —

मूलः—पञ्चासवप्पवत्तो, तीर्हि अगुत्तो हसु अविरथाय ।
 तिव्यारम्भपरिणुश्रो, सुदा सादस्सिथा नरो ॥२॥
 निद्वधसपरिणामो, निस्ससो अजिद्धिथो ।
 एअजागसमाटत्तो, विण्णलेस तु परिणमे ॥३॥

धारा -पञ्चासवप्रवृत्तस्त्रिभिरसु सपत्सु अविरतथा ।
 तीव्यारम्भपरिणुत सुदा सादस्सिथो नरो ॥२॥

(१) कृष्ण लक्ष्य वाला का भावना यों होती है कि
 अमुक को मार डालना काट डालना सरयानाश करना आदि
 आदि । (२) नील लक्ष्य का परिणाम ये है कि दूसरे
 के प्रति हाथ पर से हटाने के हों । (३) कापाल लक्ष्य
 भावना उठा मनुष्यों के है या कि नाक, कान आदि लिए
 आदि को कष्ट पहुँचाने में तत्पर हो । (४) सेना लक्ष्य के
 भाव यह है या दूसरे को ज्ञात घुँसा मुक्ती आदि से कष्ट
 पहुँचाने में अपनी बुद्धिमत्ता समझना हो । (५) पद्मलक्ष्य
 वाला का भावना इस प्रकार होती है कि कठोर शब्दों की
 घोषणा करने में आनन्द मानता हो । (६) शुद्धलक्ष्य के
 परिणाम वाला अपराध करने वाले के प्रति भी मधुर शब्दों
 का प्रयोग करता है ।

निर्व्वक्षपरिणाम , नृशसोऽ जितेन्द्रिय ।

पतद्योग समायुक्त कृष्णलेश्या तु परिणमेत् ॥३॥

अ-व-य-ार्-थ -हे इन्द्रभूति ! (पचासवर्षवत्तो) हिंसादि पाँच आधवों में प्रवृत्ति करने वाला (तीर्हि) मन बच राय पे तीनों योगों को घुर कामा में जाते हुए को (अशुतो) नहीं रोकनवाला (य) और (छष्टु) पट्काय जीवों की हिंसा से (अवरिश्रो) निवृत्त नहीं होने वाला (तिव्व रभव रिणश्रो) तीव्र है आरम्भ करने में लगा हुआ (रुदा) जुद्ध बुद्धि वाला, (साहस्विश्रो) अकार्य करने में साहसिक (निद्वधसपरिणामो) नष्ट करने वाले द्विताहित के परिणाम को और (निस्तसो) निशक रूप से पाव करने वाला (अजिह्दिश्रो) इन्द्रियों को न जीतने वाला (एवजोगस-माउत्तो) इस प्रकार के आचरणों से युक्त (नरो) मनुष्य, (रिगइलेष) कृष्ण लेश्या के (परिणामे) परिणाम वाले होते हैं ।

भावार्थ:-हे गौतम ! जिसकी प्रवृत्ति हिंसा, भूठ, चोरी व्यभिचार और गमता में अधिकतर फैली हुई हो, एव मन-द्वारा जो हर एक का घुरा बितवन करता हो, जो कटु और मर्म भेदी बोलता हो, जो प्रत्येक के साथ कपट का व्यवहार करने वाला हो, जो बिना प्रयोजन के भी पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति और अस काय के जावों की हिंसा से निवृत्त न हुआ हो, बहुत जीवों की हिंसा हो ऐसे महारभ के काय करने में तीव्र भावना रखता हो, हमेशा जिसकी बुद्धि नुच्छ

रहती हो, अकार्य करने में बिना किसी प्रकार का हिचकिचाइ के जो प्रवृत्त हो जाता है, जिसकी व भावों से पापाचारण करने में जो रत हो, इंद्रियों को प्रसन्न रखने में अनेक दुष्कार्य भी करता हो, ऐसे मार्गों में जिस कृपा भा आरगा की प्रवृत्ति हो वह आत्मा कृष्ण लेश्यावाली है। ऐसी लेश्या वाला फिर चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, मर कर नीचा गति में आवेगा। हे गौतम ! नील लेश्या का वर्णन यों है।

मूलः-इत्सा अभरिस अतवो,अविज्ज माया अहीरिया ।

गेही पओसे य सडे, पमत्ते रसलोलुप ॥ ४ ॥

सायगवेसण य आरगा अविरओ, खुदो सादहिसओ नरो ।

एअजोगसमाठत्तो, नीललेश तु परिणमे ॥ ५ ॥

इत्सा इत्थांउमपात्तप, अविद्या मायाऽहोक्ता ।

गृद्धि प्रद्वेषश्च शठ, प्रमत्तो रसलोलुप ॥ ४ ॥

सातामवेपक्खारभाद वेरत जुद्ध सादहिसको नर ।

एतद्योगसमायुक्त, नीललेश्या तु परिणमेत् ॥ ५ ॥

अ-वयाध -हे इ द्रभूति ! (इत्सा) इत्थां (अभरिस)

अस्यत्त मोघ (अतवो) अतप (अविज्ज) कुशास्त्र पठन

(माया) कपट (अहीरिया) पापाचार के सेवन करने में

निलज (गेही) गृद्धपन (य) और (पओसे) द्वेषभाव

(सडे) धम में मद स्वभाव (पमत्त) मदो-मत्तता (रस

लोलुप) रसलोलुपता (सायगवेसण) पात्रैलिक सुख की

अन्वेषणा (अ) और (आरम्भ) हिंसादि आरम्भ से (अवि
रञ्जो) अनिष्टान्ति । (सुदो) सुदभावना (साहसिञ्जो) अ
कार्य में साहसिकता (एशजोगसमाउत्ते) इस प्रकार के
आचरणों से युक्त (नरो) जो मनुष्य है, वे (नीललेश)
नील लेश्या को (परिणम) परिणामित हाते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! जो दूसरों के गुणों को सहन न
करके रात दिन उनसे ईर्ष्या करने वाला हो, बात बात में जो
क्रेष करता हो । खा पी पर जो सण्ड मुसण्ड बना रहता
हो, पर कमा भी तपस्या न करता हो, जिनसे अपने जन्म
मरण की वृद्धि हो ऐसे कुशास्त्रों का पठन पाठन करने वाला
हो, कपट करने में किसी भी प्रकार की कोर कसर न रखना
हो, जो मली बात कहने वाले के साथ द्वेष भाव रखता हो,
धर्म कार्य में शिथिलता दिखाता हो, हिंसादि महारम्भ से
तनिक भी अपने मन में न खींचता हों, दूसरों के अनेकों
गुणों की तरफ दृष्टिपात तक न करते हुए उस में जो एक
आद्य अवगुण हो उसी की और निहारने वाला हो, और
अकार्य करने में बहादुरी दिखाने वाला हों, जिस आत्मा का
ऐसा व्यवहार हो उसे नीललेशा कहते हैं । इस तरह की
भावना रखने वाला व उस में प्रवृत्ति करने वाला चाहे कोई
पुण्य हो या हों वह मर अधोगति ही में जायगा ।

मूल - वके वकसमापरे, नियदिल्ले अणुज्जुर ।

पलिउचगञ्जोवदिण, मिच्छदिट्ठी अणारिण ॥६॥

उष्णालग दुष्टवाद् य, तेण आवि य मच्छरी ।
एशजोगसमाउत्तो काऊनेस तु परिणमे ॥७॥

धारा - ब्रह्मो घनसमाचार, निरृतिमाननृनुक ।
परिक्षुचक औपधिक, मिथ्यादृष्टिरनाथ ॥६॥
उत्स्यार्थक दुष्टवादी च, स्तेनश्चापि च मत्सरी ।
एतद्योगसमायुक्त, कापोतलेश्या तु परिणमेत् ७

अवयवार्थ - दे इन्द्रभूति । (बड़े) बक भाषण करना
(बकसमाये) बक बक शिवा अंगीकार करना, (नियन्त्रित)
मन में कपट रक्षना, (अणुगुण) टड़पन धरना (पति
उचय) स्वभाव दोषों को ढँकना, (ओवदिए) सब कामों
में कपटता (मिच्छादिष्टी) मिथ्यात्व में अमिथ्यि रक्षना
(अणारिए) अनाथ प्रवृत्ति करना (य) और (तेण)
चोरी करना (अविनच्छरी) फिर मत्सरी रक्षना (एशजो
गसमाउत्तो) इस प्रकार के व्यवहारों से जा शुक हो बड़
(काऊनेस) कापोत लेश । को (परिणमे) परिणामित
होता है ।

भावार्थ - दे गौतम ! जो बोलने में सीधा न बोलता
हो, व्यापार भी जिसका टेढ़ा हो दूसरे को न जान पड़े ऐसे
मानसिक कपट से व्यवहार करता हो सरलता जिसके दिल
को छूकर भी न निकली हो, अपने दोषों को ढँकने की भर
पूर चेष्टा जो करता हो, जिसके दिन भर के घारे काय छल
कपट से भरे पड़े हों, जिसके मन में मिथ्यात्व की अमिथ्यि

यनी रहती हो, जो अमानुषिक कामों को भी कर बैठता हा, जो वचन ऐसे बोलता हा, कि जिस से प्राण मात्र को त्रास होता हो, दूसरों की वस्तु का चुरान में ही अपने मानव जन्म की सफलता शक्यता हो, मात्स्य से युक्त हो, इस प्रकार क व्यवहारों में जिस आत्मा की प्रवृत्ति हो, वह कापोत लेशी कहलाता है । एसा भावना रखन वाला चाहे पुंस्य हो या स्त्री वह मर कर अधोगति में जावेगा । हे गौतम ! तेजो लेश्या क सम्बन्ध में या हैं ।

मूलः—नीयाविती अचवने, अमाई अजुऊदले ।

विणीयविणए दत्ते, जोगव उवणणव ॥८॥

पियधम्मे ददधम्मेऽवज्जभीरू द्विएमए ।

एयजोगसमाउत्तो, तेऊलेस तु परिणमे ॥९॥

छाया नीचवृत्तिरचपल अमार्यकुतुदल ।

धिनीतधिनयो दा त योगयानुपघानवान ॥८॥

प्रियधर्मा ददधमा, अयधर्माऽद्वितैपिक ।

एनयोगसमायुक्तं, तेजोलेश्या तु परिणमेत् ॥९॥

अवयार्थ हे इ द्रभूति । (नीयाविती) जिसकी वृत्ति नम्र स्वभाव वाला हो (अचवले) अचपल (अमाई) निष्कपट (अजुऊदले) कुतुदल से रहित (विणीयविणए) अपने बड़ों का निवम करन में विनात वृत्तिवाला (दत्ते) इन्द्रिया को दमन करने वाला (जोगव) शुभ योगों को

लाने वाला (तपःशुभ्र) शारीर विधि से तप करने वाला । नियममे (तिसकी घम में प्रति हो, (दृष्ट करने) दृष्ट है मग धम में त्रिपदा (अथर्वभूमि) पार से धरनकाल (दिग्गण) दित को हँडो याना, मनु-य (तऊन) तमो लेहया का (तु परिणमे) परिणमिन होता है ।

आधार्य - हे आर्य । त्रिपदा प्रकृति नष्ट है, जो स्थिर पुदिवाला है, जो निरुद्ध है देवी मर्याद करो का त्रिपदा एतभाव नहीं है, बड़ी का विनय कर जिसने निर्माण की उपाधि प्राप्त करला है जो त्रिपदा है, मानसिक, वाचिक और धार्मिक इन तीनों मार्गों के द्वारा जो कभी सिद्धि का अहित न चाहता हो शारीर विधि विधान शुद्ध तपस्या करने में दस निरा रहता हो, धम में सदैव प्रेम भाव रहता हो, चाहे उष पर प्राणा से कष्ट ही क्यों न आ जाव, पर धम में जो दृष्ट रहता है, विधि आज को कष्ट न पहुँचे ऐसी भावा जो बोलता हो, और दित्तकारी मोक्ष धाम को जान के लिए शुद्ध जेया करने का मनेषणा जो करता रहता हो वह तेजो लेशी कहलता है । जो भाव इस प्रकार की भावना रहता हो वह मर कर ऊर्ध्वगते अथवा परलोक में उत्तम स्थान का प्राप्त होता है । हे गौतम । पञ्चनरपा का वचन यों है —

मूल - पयगुणोहमाथे य, मायाजोभे य पयगुण ।

पमतचित्ते दत्तप्य, जोमय उवहाण्य ॥१०॥

तदा पयगुवाहं य, उवसते जिहदिए ।

पयजोगसमाउत्तो, पम्हलेस तु परिणमे ॥११॥

ध्याया - प्रतनुक्रोधमानश्च, मायालोभो च प्रतनुकौ ।
 प्रशान्तचित्तो दा-तात्मा, योगधानुपधानधान् १०
 तथा प्रतनुवादी च, उपशान्तो जितेन्द्रिय ।
 एतद्योगसमायुक्त, पद्मलेण्या तु परिणमेत् ॥११॥

अन्वयाथ - हे इन्द्रभूति ! (पयणुकोहमाय) पतले
 हैं क्रोध और मान जिसके (अः) और (मायालोभे) माया
 तथा लोभ भा जिसके (पयणुए) अल्प ह, (पधतचित)
 प्रशान्त है चित्त जिसका (दतणा) जो आत्मा को दमन
 करता है, (जोगव) जो मन, वच, काया के शुभ योगों को
 प्रवृत्त करता ह, (उवहाणव) जो शास्त्रीय तप करता है,
 (तदा) तथा (पयणुवाद्) जो अन्न भापी है, और वह
 भी सोच विचार कर बोलता है, (य) और (उवसते)
 शान्त है स्वभाव जिसका, (य) और (जिइदिए) जो
 इन्द्रियों को जीतता हो, (एय जोगसमाउत्तो) इष्ट प्रकार
 की प्रवृत्ति वाला आ मनुष्य हो, वह (पम्हनेन) पद्म लेश्या
 को (तु परिणमे) परिणामित हाता है ।

भाषाथ - हे गौतम ! जिसका क्रोध, मान, माया, लोभ
 कम हैं, जो सदैव शान्त चित्त से रहता है, आत्मा का जो
 दमन करता है, मन वचन काया के शुभ योगों में आ अपनी
 प्रवृत्ति करता है, शास्त्रीय विधि से तप करता है, सोच विचार
 कर जो मधुर भाषण करता है, जो शरीर के अज्ञोपाज्ञों को

शांत रहता है । इंद्रियों को दर समय जा कापू में रहता है, वह परदेशा कहलाता है । इस प्रकार की भावना व एव प्रवृत्ति का जा मनुष्य अनुशीलन करता है, वह मनुष्य मर कर ऊर्ध्वगति में जाता है । हे गौतम ! शुद्ध लक्षणा व वचन यो ह ।

मूल-अट्टरदाणि वज्जित्ता, घम्मसुक्काणि म्हायए ।
 पसतचित्ते दतप्पा, समिए गत्ते य गुत्तिसु ॥१२॥
 सरागो वीयरागो वा, उवसत्ते जिह्दिए ।
 एयजोगसमाउत्तो, सुक्कनेस तु परिणमे ॥१३॥

छाया आत्तरौद्रे चर्जयित्वा,
 घर्मशुक्के ध्यायति ।
 प्रशांतचित्तो दातात्मा,
 समितो गुप्तध गुप्तिभिः ॥ १२ ॥
 सरागो वीतरागो वा,
 उवशा तो जितेन्द्रियः ।
 एतद्योगसमायुक्त,
 शुक्कलेशा तु परिणमेत् ॥ १३ ॥

अ-वयाध हे इन्द्रभूते । (अट्टरदाणे) आत छौ
 रौद ध्यानों की (वज्जित्ता) चौबहर (घम्मसुक्काणि) घर्म
 और शुद्ध ध्यानों को (म्हायए) जो नितरा करता ह

(पञ्चतचित्ते) प्रशान्त है चित्त जिसका (दत्तप्या) दमन की है अपनी आत्मा को जिसने (समिए) जो पांच समिति करके युक्त हो, (य) और (गुत्तिष्ठ) तीन गुप्ति से (गुत्ते) गुप्त है (सरागो) जो सराग (वा) अथवा (वीररागो) वीतराग समय रखता हो, (उवसते) शांत है चित्त और (जिद्दिए) जो जितेन्द्रिय है, (एयभोगसमाउत्तो) ऐसे आचरणों से तो युक्त है, वह मनुष्य (सुकलेष) शुक्ल लेश्या को (तु परिणमे) परिणमित होता है ।

भाषार्थ - हे आर्य ! जो आत्त और रौद्र ध्यानों को परित्याग करके उदैव धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान का चिन्तन करता है, क्रोध, मान, माया, और लोभ आदि के शान्त होने से प्रशान्त हो रहा है चित्त जिसका, सम्यक् ज्ञान दर्शन एवं चारित्र्य से जिसने अपनी आत्मा को दमन कर रक्खा है, चलने, बैठने, खाने, पीने, आदि सभी व्यवहारों में समय रखता है, मन, वचन, वादा की अशुभ प्रवृत्ति से जिसने अपनी आत्मा को गोपी है, सराग यद्वा वीतराग समय जो रखता है, जिनका चहरा शांत है, इन्द्रिय जय विषयों को विष समझकर उन्हें जिसने छोड़ रखे हैं, वही आत्मा शुक्ल लेशी है । यदि इस अवस्था में मनुष्य मरता है तो वह ऊर्ध्वगति को प्राप्त करता है ।

मूला-किरहा नीला कारु,

तिरिण वि एयाओ अहमलेसाओ ।

एयाहिं तिहिं वि जीवो,
दुगइ उववज्जइ ॥ १४ ॥

आया कृष्ण। नीला कापोता
तिस्सोऽप्येता अथमलेश्या ।
एताभिन्तिस्सुभिरपि जीव ,
दुग्गि सुवपयते ॥ १४ ॥

अथयार्थः-इ एदभूते । (किरदा । कृष्ण (नीला)
नील (काऊ) कापोत (एयाओ) वे (तिरिण) तानो
(वि) ही (अहमलेश्या) अथम लेश्याएँ हैं । (एयाहिं)
इन (तिहिं) तीनों (वि) ही लश्याओ से (जीवो) जाव
(दुगइ) दुगति को (उववज्जइ) प्राप्त करता ह ।

भावार्थ -इ सौतम ! कृष्ण नील, और कापोत, इन
तीनों को शानी जनों ने अथम लेश्याएँ (अथमभावनाएँ)
कही ह । इस प्रकार का अथम भावनाओं से जीव दुगति में
जाकर मदान् वष्टों को भोगता ह । अत ऐसी घुरी भावनाओं
को कभी भी ह्ययगम न होने देना, यही अष्ट माग है ।

मूनः-तेउ पम्हा सुक्का,
तिरिण वि एयाओ धम्मलेशाओ ।
एयाहिं तिहिं वि जीवो,
सुगइ उववज्जइ ॥ १५ ॥

दाया -तेजसी पद्मा शुक्ला,
तिस्रोऽप्येता धर्मलेश्याः ।

एताभिस्त्रिसुभिरपि जीव,
सुगतिमुपपद्यते ॥ १५ ॥

अन्ययार्थ -दे इन्द्रभूति ! (तेज) तेजो (पद्मा, पद्म
और (शुक्ला) शुक्ल (एयाओ) ये (त्रिषिण) तीनों (वि)
ही (धम्म लेश्या) धर्म लेश्याएँ हैं । (एयाहिं) इन
(तिहिं) तीनों (वि) ही लेश्याओं से (जीवो) जीव
(सुगद्) सुगति को (उपवज्जद्) प्राप्त करता है ।

भावार्थ -दे आर्य ! तेजो, पद्म, और शुक्ल, ये तीनों, ज्ञानी
जन द्वारा धर्म लेश्याएँ (धर्म भावनाएँ) कही गयी हैं । इस
प्रकार धर्म भावना रखने से वह जीव यहाँ भी प्रशस्त का
प्राप्त होता है, और मरने के पश्चात् भी वह सुगति ही में
जाता है । अतएव मनुष्य को चाहिए, कि वे अपनी भाव-
नाओं को सदा शुभ या शुद्ध रखें । जिससे उस आत्मा को
मोक्ष प्राप्त मिलने में विलम्ब न हो ।

मूल -अन्तोमुहुत्तमि गए, अतनुहुधमिं सेमए चैव ।

लेश्याहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छति परलोया ॥ १६ ॥

दाया अ तमुहुत्तं गते,
अन्तमुहुत्तं शेपे चैव ।

लेश्वाभि परिश्रुताभिः,

जीवा गच्छन्ति परलोकम् ॥१६॥

अथयाथा-दे इ श्भूनि ! (परिणवादि) परिश्रुत
हो गयीं हे (लेश्वादि) लेश्वा त्रिषके ऐशा (जीवा) जीव
(अतमुद्गृह्णन्ति) अतमुद्गृह्णन्ति (गच्छन्ति) होने पर (येन) और
(अतमुद्गृह्णन्ति) अतमुद्गृह्णन्ति (ऐशा) अथरेय रदने पर
(परलोक) परलोक को (गच्छन्ति) आते हैं ।

भावार्थ है अर्थ । मनुष्य और तिर्यगों के अन्तिम
समय में, योग्य वा अयोग्य, जिस किसी भी स्थान पर उन्हें
जाना होता है उषा स्थान के अनुसार उसकी भावना मरने
के अतमुद्गृह्णन्ति पहले आता है । और वह भावना उठाने अपने
जीवन में भले और बुरे कार्य किये होंगे उसी के अनुसार
अन्तिम समय में वैसी ही लेश्वा (भावना) उठती होगी
और स्वर्गलोक तथा नरक में रहे हुए देव और नेरिया मरने
के अतमुद्गृह्णन्ति पहले अपने स्थान अनुसार लेश्वा (भावना)
ही में मरेगे ।

मूल - तम्हा एयासि लेसाण,

अणुमाध वियाणिया ।

रूपसत्यासो वडिजरा

पसत्यासोऽहिद्विए मुणी ॥१७॥

छाया -तस्मादेतासा लेश्याना,

अनुभाव विज्ञाय ।

शप्रशस्तास्तु वर्जयित्वा

प्रशस्ता अधितिष्ठेन् मुनि ॥१७॥

अ-वयार्थ - (तम्हा) इसलिए (एयासि) इन (लेश्याण) लेश्याओं के (अणुभाव) प्रभाव को । (वयासि या) जान कर (अप्यसत्याथा) घुरा लेश्याथा (भावनाओं) को (वर्जिता) छाड़ कर (पठत्या) अच्छा प्रशस्त लेश्याओं को (मुणी) मुनि (अहिट्टिए) अगाकार कर ।

भावार्थ:-हे भले गुरे के फल जानने वाले ज्ञानी साधु जनो ! इस प्रकार छुओ लेश्याओं का स्वरूप समझ कर इनमें से घुरी लेश्याओं (भावनाओं) को तो कभा भी अपने हृ य तक में फटकने मत दा और अच्छी भावनाओं को सदैव हृदयगम करके रक्थो इसी में मानव जीवन का सफलता है ।

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥



ॐ निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय तेरहवा)

कपाय-स्वरूप

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः-क्रोधो ञ माणो ञ अणिगहीया,
माया अ लोभो अ पवड्डमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
मिच्छति मूलाइ पुणभवस्स ॥ १ ॥

एवा क्रोधश्च मानद्यानिवृद्धीतौ,
माया च लोभश्च प्रवर्धमानौ ।
चत्वार एते कृत्स्ना कपाया,
मिच्छन्ति मूलानि पुनर्भवस्य ॥ १ ॥

इयं वयार्थं -दे इदमूलं । (अणिगहीया) अनेम
हीत (क्रोधो) क्रोध (ञ) और (माणो) मान (पवड्ड
माणा) बहता हुआ (माया) कपट (अ) और (लोभो)
लोभ (एए ' ये (कसिणा) समूहों (चत्तारि) चारों ही

(कषाया) कषाय (पुण्यभवस्य) पुण्यजन्म रूप वृत्त के (मूलाद्) मूलों को (सिचति) सींचते है ।

भावाथ -हे शाय । जिसका निग्रह नहीं किया है ऐसा क्रोध और मान तथा बढ़ता हुआ कषय और लोभ ये चारों ही सम्पूर्ण कषाय पुन पुन जन्म मरण रूप वृत्त के मूलों को हरा मरा रखते हैं । अर्थात् क्रोध, मान माया और लोभ ये चारों ही कषाय दीर्घ काल तक समार में परिभ्रमण कराने वाले हैं ।

मूलः-जे कोदये होइ जगयभासी,

विश्रोसिय जे उ उदीरएज्जा ।

अधे व से दडपह गहाय,

अविश्रोसिए धासति पावकम्भी ॥२॥

ध्याया -य क्रोधनो भवति जगदर्धभाषी,

व्यपशमित यस्तु उदीरयेत् ।

अन्ध इव सदण्डपथ गृहीत्वा,

अव्यपशमित घृष्यति पापकर्मा ॥ २ ॥

अन्वयार्थ हे इन्द्रभूति । (जे) जो (कोदये) क्रोधी (होइ) होता है वह (जगयभासी) जगत् के अध को कहने वाला है (उ) और (जे) वह (विश्रोसिय) उपशान्त क्रोध को (उदीरएज्जा) पुन जागृत करता है । (व) जैसे (अधे) अधा (दडपह) लकड़ी (गहाय)

मदणु कर माग में पशुआ छ कष्ट पाता हुआ जाता है, एस दा (स) बह (अवेभोसिए) अनुपशांत (पावकम्मा) पाप करने वाला (धानति) चतुर्गति रूप मार्ग में कष्ट उठता है ।

भाषार्थ - इ भौतम । जिधने बात बात में क्रोध करने का स्वभाव कर रक्खा है घट जगत् क जीवों म अपने कर्मों से लूलापन अधापन बधिरता, आदि न्यूनताओं का अपना जिह्वा के द्वारा सामन रख देता है । और जो कलह उपशान्त हो रहा है, उता का पुन चतन कर जाता है । जैसे अधामनुष्य लकड़ी को लेकर चलत समय मार्ग में पशुओं आदि भ कष्ट पाता है एसे ही बह महात्माओं चतुर्गति रूप मार्ग म अत्र प्रहार के जन्म मारणों का दुख उठता रहता है ।

मूल - जे आवि अप्प वसुमति मत्ता,

सव्वाय वाय अपरिक्ख कुञ्जा ।

तवेण वाह सहिउ त्ति मत्ता,

अएण जणं पस्सति विवमूर्य ॥ ३ ॥

अथ यश्चापि आरमान वसुमान् मत्वा,

सख्या च वाक्षमपरीक्ष्य कुर्यात् ।

तपसा दाऽह सहित इति मत्वा,

अन्य जन पश्यति विम्बभूतम् ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः हे इन्द्रभूति ! (जे आवि) जो अत्र

मति है, वह (अप्य) अपनी आत्मा को (बहुमति) समय
वान् है, ऐसा (मत्ता) मान कर और (सत्ताय) अपने
को ज्ञानवान् समझता हुआ (अपरिपक्व) परमाय को नहीं
जान कर (वाय) बाद विवाद करता है । (अह) मैं
(तवेण) तपस्या करके (सद्दित्ति) सद्दित हूँ, ऐसा
(मत्ता) मान कर (अण) दूसरे (जण) मनुष्य को
(विवभूय) केवल आकार मात्र (पस्सति) देखता है ।

भावायं - हे आर्य ! जा अहम मतिवाला मनुष्य है,
वह अपने ही को समयवान् समझता है, और कहता है, कि
मेरे समान समय रखने वाला कोई दूसरा है ही नहीं । जिस
प्रकार मैं ज्ञानवाला हूँ, वैसा दूसरा कोई है ही नहीं, इस
प्रकार अपनी भ्रष्टता का डिङ्कारा पीटता फिरता है । तथा
तपवान् भी मैं ही हूँ ऐसा मान कर वह दूसरे मनुष्य को
शुण्य ही और केवल मनुष्याकार मात्र ही देखता है । इस
प्रकार मान करने से वह मानी, पायी हुई वस्तु से हीनावस्था
में जा गिरता है ।

मूलः-पुण्यद्वा जसोकामी, माणवम्माणकामण ।

एहु पसवद् पाव, मायासल्ल च कुव्वद् ॥ ४ ॥

छाया - पूजनार्थो यशस्कामी, मानसन्मानकामुक ।

एहु प्रसूते पाप, मायाशय्य च कुरुते ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (पुण्यद्वा) ज्यों की त्यों
अपनी शोभा रखने के अर्थ (जसोकामी) यश का कामी

और (माणसम्मारण) मान सम्मान का (कामए) चाहने वाला (बहु) बहुत (५ व) पाप (पमवइ) पैदा करता है (च) और (मायासङ्ग) कपट, शल्य को (कुम्भइ) करता है ।

भावार्थ है गौतम ! जो मनुष्य पूजा, यश, मान और सम्मान का भूखा है वह इन की प्राप्ति के लिए अनेक तरह के प्रवचन करके अपने लिए पाप पैदा करता है और साथ ही कपट करन में भी वह कुत्र कम नहीं उतरता है ।

मूलः—कसिण पि जो इम लोग,
पडिपुणण दलेज्ज इक्कस्स ।
तेण्णावि से न सतुस्से,
इइ दुप्परए इमे आया ॥५॥

धाराः कृत्स्नमपि य इम लोक,
प्रतिपूर्णं दद्यादेकस्मै ।
तेनापि स न सतुप्येत्,
इति दु पुरकोऽयमात्मा ॥५॥

अ-व-य-ार्थ -दे इन्द्रभूति (जो) यदि (इक्कस्स) एक मनुष्य को (पडिपुणण) धन धान से परिपूर्ण (इम) यह (कसिण पि) सारा ही (लोग) लोकर (दलेज्ज) दे दिया जाय तो (तेण्णाव) उस से भी (से) यह (न) नहीं (सतुस्से) उत्तोपिक होता है । (इइ) इस प्रकार से (इमे)

यह (आया) आत्मा (दुष्पूरण) इच्छा से पूरा नहीं हो सकता है ।

भावार्थः-हे गौतम ! वैश्रमण्य देव किसी मनुष्य को हारे, पत्ते, माणिक, मोती तथा धन धान में भरी हुई सारी पृथ्वी दे देवे ता भी उससे उसको संतोष नहीं हो सकता है । अतः इस आत्मा की इच्छा को पूरा करना महान् कठिन है ।

मूल -सुवर्णरूपस उ पर्वया भवे,

सिया हु केलाससमा असखया ।

नरस्य लुद्धस्य न तेहि किंचि,

इच्छा हु आकाशममा अणतिआ ॥६॥

छाया -सुवर्णरूपयो पर्वता भवेयु ,

स्यात्कदाचित्खलु केलाशसमा असंखया ।

नरस्य लुद्धस्य न तै किंचित् ,

इच्छा हि आकाशममा अणतिका ॥६॥

अन्वयार्थ दे इदमूति । (केलाससमा) केलाश पर्वत के समान (सुवर्णरूपस्य) मोने, चांदी के (अम खया) अगणित (पर्वया) पर्वत (हु) निश्चय (भवे) हो और वे (सिया) कदाचित् मिल गये, तदपि (तेहि) उस से (लुद्धस्य) लोभा (नरस्य) मनुष्य की (किंचि) किंचित् मात्र भी तृप्ति (न) नहीं होती है, (हु) क्योंकि (इच्छा) तृष्णा (आकाशसमा) आकाश के समान

(अणतिया) अनन्त है ।

भावार्थ : हे गौतम ! कैलाश पर्वत के समान लम्बे चौड़े अक्षय्य पर्वतों के जितने सोने चांदी के ढेर किसी लोभी मनुष्य को मिल जाय तो भी उसकी तृष्णा पूर्ण नहीं होती है । क्योंकि जिस प्रकार आकाश का अन्त नहीं है, उसी प्रकार इस तृष्णा का कभी अन्त नहीं आता है ।

मूल - पुढवी साली जवा चैव, हिरण्य पशुभिस्सह ।

पडिपुण्ण नालमेगस्स, इह विज्जा तव चरे ॥७॥

व्याख्या - पृथिवी शालिष्यवाश्चैव, हिरण्य पशुभि सह ।

प्रतिपूर्णं नालमेव स्मै, रति विदित्वा तपश्चरेत् ॥७॥

अर्थ - हे इन्द्रभूति ! (शालि) शालि (जब) सहित (चैव) और (पशुभिस्सह) पशुओं के साथ (हिरण्य) सोने वाली (पडिपुण्ण) सम्पूर्ण भरी हुई (पुढवा) पृथ्वी (एगस्स) एक की तृष्णा को बुझाने के लिए (नाल) समथयान् नहीं है । (इह) इस तरह (विज्जा) जान कर (तव) तप रूप मार्ग में (चरे) विवरण करना चाहिए ।

भावार्थ - हे गौतम ! शालि, जब सोना, चांदी और पशुओं से परिपूर्ण पृथ्वी भी किसी एक मनुष्य का इच्छा को तृप्त करने में समथ नहीं है । ऐसा जान कर तप रूप मार्ग में घूमते हुए लोभदशा पर विजय प्राप्त करना चाहिए । इसी से आत्मा को तृप्ति होती है ।

मूल - अहं वयद् कोहेण, माणेण अहमा गई ।

माया गइपटिम्भाओ, लोहाओ दुहओ भय ॥८॥

छाया - अघोव्रजति क्रोधेन, मानेनाधमा गनि ।

मायया सुगतिप्रतिघात लोभाद् द्विधा भयम् ॥

अ-घयार्थ - हे इ द्रभूति ! आत्मा (कोहेण) काय से (अह) अधोगति में (वयद्) जाता है (माणेण) मान से उस को (अहमा) अधम (गइ) गति मिलता है (माया) पण्ट से (गइपटिम्भाओ) प्रच्छी गति का प्रतिघात होता है । (लोहाओ) लोभ से (दुहओ) दोनों भव सम्बन्धी (भय) भय प्राप्त होता ।

भावार्थ - हे आर्य ! जब आत्मा क्रोध करता है, तो उस क्रोध से उसे नरक आदि स्थानों की प्राप्ति होती है । मान करने से वह अधम गति को प्राप्त करता है । माया करने से पुरुषत्व या देवगति अदि अच्छी गति मिलने में रुकावट होती है और लोभ से जीव इष्ट भव एवं पर भव सम्बन्धी भय को प्राप्त होता है ।

मूलः—कोहो पीइ पण्णासेइ, माणो विणयनासणो ।

माया मित्राणि नासेइ, लोभो सर्वविणासणो ॥९॥

छाया - क्रोध प्रीति प्रणशयति, माणो विनयनाशन ।

माया मित्राणि नाशयति, लोभः सर्वविनाशनः ॥९॥

अम्ययार्थ - हे इन्द्रभूति । (क्रोधो) क्रोध (पीड)
 प्रीति को (पणासेह) नाश करता है (माणो) मान (विणय)
 विनय का (नासणो) नाश करने वाला है । (माया) कपट
 (मित्राणि) मित्रता को (नासेद्) नष्ट करता है । और
 (लोभो) लोभ (मद्य) छारे सद्गुणों का (विणासणो)
 विनाशक है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! क्रोध ऐसा घुरा है, कि वह पर
 स्पर की प्रीति को क्षण भर में नष्ट कर देता है । मान विनय
 भाव को कभी अपनी ओर मारि देने तक भी नहीं देता । कपट
 से मित्रता का भंग हो जाता है, और लोभ सभी गुणों का
 नाश कर देता है । अतः क्रोध, मान, माया और लोभ इन
 चारों ही दुर्गुणों से अपनी अत्मा को बड़ा भवदा बचाते
 रहना चाहिए ।

मूलः—उवसमेण हृष्ये क्रोध,

माण मद्भवया जिणे ।

माय मज्जवभावेण,

लोभ सनोसओ जिणे ॥१०॥

ध्याया -उपशमेन हृयात् क्रोध,

मान मादधेन जयत् ।

मायामाजवभावेन,

लोभ सतोपतो जयेत् ॥१०॥

अच्यार्थ -हे इन्द्रभूत ! (उवगोण) उपरांत
 "चुमा" से (छेद्) शोध का (तणे) नाश कर (मरुपया)
 नम्रता से (गण) मान को (जिणे) लत (मयजव) मरल
 (मरण) भावना मे (माया) कपट को और (अतोपथा)
 अतोप से (लाभ) लाभ का (जिणे) परित करना
 चाहिए ।

भावार्थः हे आद्य ! इस शोध रूप तण्डाल को चुमा
 छ दूर भगाओ और विनम्र गारों मे इस मान का मद् नाश
 करो । इसी प्रकार मरलता से कपट को और अताप से लोग
 को पराजित करो । तभी यह मोक्ष प्राप्त होगा जहाँ पर हि
 गये बाद वापिस दुष्टों में ध्यान का काम नहीं ।

मूल - असक्लस्य जीविय मा पमायए,
 जरोवर्णायस्म ह्यु तस्थि ताणु ।
 एअ वियाणादि जणे पमत्ते,
 क नु विहिंसा अजया गदिति ॥११॥

छाया असक्लस्य जीवित मा प्रमादी ,
 जरोवर्णितस्य एतु तस्थि प्राणम् ।
 एअ विजानीदि जना प्रमत्ता ,
 किं नु विहिंस्य अयना गमिष्यति ॥१२॥

अच्यार्थ -हे इन्द्रभूति ! (जीविय) यह जावन
 (असक्लस्य) अपरकृत है । अतः (मा पमायए) प्रमाद

मल को (हु) पशोकि (उलोषणीयरप) वृद्धावस्था वाले
 पुत्र को किधी की (ताण) शरण (मरिष) गही है (एअ)
 एका वृ (वियाण हि) अच्छी तरह से जान ले (पमते)
 ओ प्रमादी (विदिता) द्विमा करने वाले (अत्रया) अग्निने
 द्रिय (अणे) मनुष्य है, वे (पु) नेषो (क) चिषन्धी
 शरण (गहिंति) प्रदण करेंगे ।

माशार्थः-हे गौतम ! इस मानव जीवन के दूट भागों
 पर १ तो पुन इसकी सधि हो सकती है, आर न यह बढ़
 ही सकता है । अत प्रमावरण करने में प्रमाद मत करा ।
 यदि कई वृद्धावस्था में किरा का शरण प्राप्त करना चाहे तो
 इस में भी यह असफल होगा है । भला फिर ओ प्रमादी और
 दिषा वान वान अग्निद्रिय मनुष्य है, वे परलोक में किरा
 का शरण प्रदण करेंगे ? अर्थात् वही के होन वाले दुस्त्रो से
 उन्हें कीन पुत्रा सकगा ? कई भी बचान वाला नहीं है ।

मून -वित्तेण ताण्णे न लभे पमत्ते,

इमम्मि लोए अदुवा परत्था ।

दीपप्पण्ट्ठेव अणुत्तमोदं,

नेयाउअ दहुमदहुमेव ॥ १२ ॥

झाया विस्सेन प्राण न लभेत् प्रमत्त ,

अस्मिन्नाकेऽधया परत्त ।

दीपप्रणष्ट इवान तमोद ,

नैयायिक दृष्ट्याऽप्यदृष्ट्वेष ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (पमत्ते) वह प्रमादी मनुष्य (इमम्मि) इन (लोए) लोक में (अद्दुवा) अथवा (परत्था) परलोक में (वित्तेण) द्रव्य से (ताण) प्राण (शरण) (न) नहीं (लभे) पाता है (अणुत्तमाहे) वह अनन्त मोहवाला (दीपण्णट्ठय) दीपक के नाश हो जाने पर (ने ऽ याउअ) न्यायकारी मार्ग को (दट्ठुमदट्ठुमेव) देखने पर भी न देखने वाले के समान है ।

भावार्थ - हे गौतम ! धर्म साधन करने में आलस्य करने वाले प्रमादी मनुष्यों की इस लोक और परलोक में द्रव्य के द्वारा रक्षा नहीं हो सकती है । प्रत्युत वे अनन्त मोही पुरुष दीपक के नाश हो जाने पर न्यायकारी मार्ग को देखते हुए भी नहीं देखने वाले के समान हैं ।

मूलः-सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी,

न बीससे पडिए आपुपरणे ।

(*) जैसे धातु हूँडने वाले मनुष्य दीपक को लेकर पर्वत की गुफा की ओर गये और उस दीपक से गुफा देख भी ली, परन्तु उस में प्रवेश होने पर उस दीपक की उन्हीं को ही पर्वत न की । उनके आलस्य से दीपक बुझ गया, तब तो उन्हीं अन्धेरे में इधर उधर भटकते हुए प्राणान्त कष्ट पाया । इसी तरह प्रमादी जीव धर्म के द्वारा मुक्ति पथ को देख लेने पर भी उस धर्म की द्रव्य के लोभ पर फिर उपेक्षा कर बैठते हैं । यहाँ ये जन्मजन्मांतरों में प्राणान्त जैसे कष्टों को अनेकों बार उठाते रहेंगे ।

घोरा मुहुत्ता अमल शरीर,

भारद्वयक्षी व चरद्वयमत्तो ॥१३॥

वाचा -सुतेषु चापि प्रतिबुद्धमीधी,

न विश्वमेत् परिद्वत आशुमत्तः ।

घोरा मुहुत्ता अमल शरीर,

भारद्वयक्षीव चराद्वयमत्त ॥१३॥

अवयवार्थः-हे इन्द्रभूति ! (आशुमत्त) तीक्ष्ण बुद्धि वाला (परिबुद्धमीधी) इन्द्र्य निद्रा रहित तत्वों का जानकार (परिद्वत) परिद्वत पुरुष (सुतेषुयावी) इन्द्र्य और भाव से जो चाते हुए प्रमादी मनुष्य है, उनका (न) नहीं (वससे) विचार कर, अनुकरण करे, क्योंकि (मुहुत्ता) समय आयुक्षण करने में (घारा) भयङ्कर है। और (अमल) शरीर भी (अमल) बल रहित है। अतः (भारद्वयक्षीव) भारद्वयक्षी की तरह (अममत्ता) प्रमाद रहित (चर) समय में विचारण कर।

भाषा - हे गतम ! इन्द्र्य निद्रा से जाग्रत तीक्ष्ण बुद्धिवाले परिद्वत पुरुष भी होते हैं, व इन्द्र्य और भाव से नोद लनेवाले प्रमादी पुरुषों के आवरणों का अनुकरण नहीं करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं, कि समय जो है वह मनुष्य का आयु कम करने में भयङ्कर है। और यह भी नहीं है कि यह शरीर मनुष्य का सामना कर सके। अतएव जिस प्रकार भारद्वयक्षी अपना बुद्धि चुपन में प्रायः प्रमाद नहीं करता

है उधी तरह तुम भी प्रमाद रहित होकर समयी जीवन
भितान में सफलता प्राप्त करो ।

मूलः-जे गिद्ध कामभोगेषु, एगे ऊडाय गच्छद् ।

न मे दिष्टे परे लोए, चक्रुद्विष्टा इमा र्द ॥१४॥

छाया यो गृह्यः कामभोगेषु, एक कूडाय गच्छति ।

न मया दृष्ट परलोए, चक्रुद्विष्टे रति ॥१४॥

अन्वयार्थः इ इन्द्रभूति । (जे) जो (एगे) कोई
एक (कामभोगेषु) काम भोगों में (गिद्ध) अशक्त होता
है, वह (कूडाय) हिता और मृया भावा को (गच्छद्)
प्रसन्न होता है, फिर उनसे पूछने पर वह खोता है, कि (मे)
मेन (परलोए) परलोक (उ) नहीं (दिष्टे) देखा है ।
(इमा , इम (१४) पीठालिख सुख का (चक्रुद्विष्टा) प्रत्यक्ष
आसों से देख रहा है ।

भावार्थ - हे आर्य । आ काम भोग में संदेव उान
रहता है वह हिंसा भुंठ आदि छ वचा हुआ नहीं रहता है ।
यदि उनसे कहा जाय कि हिंसाद कम करोगे तो नरक में
दुख उठाभोग और गरहः करोगे ता हर । म दिव्य सुख
भोगोगे । एषा कहने पर वह प्रमादः बाल उठता है कि मैंने
कोई भी स्वर्ग नरक नहीं देखे है, कि जितके लिए इन प्रत्यक्ष
काम भोगा का आनंद छै इ बेहू ।

मूलः-दृष्ट्यागथा इमे कामा,

कालिन्ना जे अणागया ।

को जाणू परे लोए,

अत्थि वा नत्थि वा पुणो ॥१८॥

छाया: इस्तागता इमे कामा ,

कालिका येऽनागताः ।

को जानाति परं लोके ,

अस्ति वा नास्ति वा पुन ॥१८॥

अ-धयाथ -हे धर्म तत्वज्ञ । (इमे थ (कामा) काम भोग (इत्यागया) इस्तगत हो रहे हैं और इ हे त्यागने पर (जे) जो (अणागया) आगमा भव में सुख होगा, यह तो (कालिन्ना) भविष्यत् की बात है (पुणो) तो फिर (को) कौन (जाणू) जानता है (परेलाए) परलोक (अत्थि)हे (वा) अथवा (नत्थि) नहीं है ।

भाषार्थ -अज्ञाना नास्तिक इस प्रकार कहने है कि हे धर्म के तत्व को जानने वालों ! ये काम भोग जो पलङ्ग हर में मुझे मिल रहे हैं । धार अि हे त्याग देने पर आगमा भव में इस से भी बढ़ कर तथा अधिक सुख प्राप्त होगा, एसा तुम कहते हो, परन्तु यह तो भविष्यत् की बात है । और फिर कौन जानता है कि नरक स्वर्ग और मोक्ष है या नहीं ?

मूलः-जणेषु सद्धि होवत्तामि,

इह वाने पगम्मइ ।

कामभोगाणुराणु,

केस सपडिवज्जइ ॥ १६ ॥

छाया -जनेन सार्द्धं मधिप्यामि,

इति बाल प्रगटमते ।

कामभोग्यानुगमेण,

फलेश स सम्पतिपद्यते ॥१६॥

अ-वयार्थ -हे इन्द्रभूति । (जसेण सद्धि) इतो मनुष्यों के साथ मेरा भी (होकझामि) जा होना होगा, सो द्यागा, (इइ) इस प्रकार (बाले) वे अज्ञानी (पगबगइ) बालने ह, पर वे अशिर (कामभोगाणुराणु) काम भोग के अनुराग के कारण (कस) दुख ही को (सपडिवज्जइ) प्राप्त हान हें ।

भावार्थ -हे गौतम । वे अज्ञानी जन इस प्रकार फिर बोलते हैं, कि इतने दुष्कर्मी लोगों का परलोक में जो होगा, वह मेरा भा हो जायगा । इनने सब के सब लोग क्या मूर्ख हैं ? पर हे गौतम । अशिर में वे काम भोगों के अनुरागी लोग इस लोक श्वर परने क में महान् दुखा को भोगत हैं ।

मूल.-तत्रो से दड समाइमइ,

तमेसु यापरेसु य ।

अट्टाप व अणट्टाण,

मूयगाम विहिंसइ ॥ १७ ॥

द्याया - ततो दण्ड समारभते प्रमेषु स्थाघरेषु च ।

अर्थाय चानर्थाय भूतमाय विद्विःस्ति ॥ १७ ॥

अ यथार्थ - हे इन्द्रभूते । यों स्वर्ग नरक अग्नि का अगमभारना मान करके (तथा) उग्रह बाद (स) वह मनुष्य (ससप्त) शम (अ) और (भावसु) स्थावर जीवों क विषय में (अट्टाए) प्रयाजन से (व) अथवा (अणुट्टाए) बिना प्रयोजन से (इह) मन, वचन, काया के दण्ड को (समारभ) समारभ करता है । अर (भूतमाय) प्राणियों क समूह का (विद्विःस्ति) बंध करता है ।

भाषार्थ - हे श्याम । नास्तिक लोग प्रलय भोगों का छोड़ कर भविष्यत् का कौन आरा करे इस प्रकार कह कर, अपने ग्लिह का कर्म बना लेते हैं । फिर वे इलते चलते प्रस जावों और स्थावर जावों की प्रयोजन से अथवा बिना प्रया जन से, हिंसा करने के लिए, मन, वचन, काया के योगों को प्रारम्भ कर अवश्य जावों की हिंसा करते हैं ।

मूल - दिसे बाले मुसागई, मारुल्ले पिसुणे सडे ।

भुजमाणे सुर मस, सेयमेश्च ति मरुई ॥१८॥

द्याया - हिंस्रो बालो मृपाधादी,

मायी च पिशुन शठ ।

भुञ्जान सुरा मस,

श्रेयो मे इदमिति मयते ॥ १८ ॥

अवयार्थ - हे इन्द्रभूति ! स्वर्ग नरक को न मानकर
 वह (हिंसे) हिंसा करने वाला (बाल) अज्ञानी (मुसावाद)
 फिर भूँठ बोलता है (माइल) कपट करता है, (विमुण्णे)
 निंदा करता है (रुठ) दूरों को ठगने का कस्तूर करता
 रहता है (सुर) मदिरा (मउ) माष (भुजमाणे) भोगता
 हुआ (सेयमेथ) श्रेष्ठ है (ति) ऐसा (मज्जइ) मानता है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! स्वर्ग नरक आदि की अवस्था
 बना करके वह अज्ञाना जात्र हिंसा करने के साथ ही साथ
 झूठ बोलता है, प्रत्येक बात में कपट करता है । दूरों की
 निंदा करने में अपना जावन अर्पण कर बैठता है । दूरों को
 ठगने में अपना धारा बुद्धि खच कर देता है । और मदिरा
 एवं मांस खाता हुआ भा अपना जावन श्रेष्ठ मानता है ।

मूल - कायसा वयसा मत्त,
 वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
 दुहओ मल सच्चिणइ,
 सिमुणागु व्व मट्ठिय ॥ १६ ॥

छाया - कायेन वचसा मत्त,
 वित्ते गृद्धश्च र्थीषु ।
 द्विधा मल सच्चिनोति,
 शिशुनाग इव मृत्तिकाम् ॥ १६ ॥

अवयार्थ - हे इन्द्रभूति ! व नास्तिक लोग (कायण)

काम से (वायना) वचन से (मते) गर्वाचिन होने वाला (वित्त) धन में (य) और (इत्पिमु) स्त्रियों में (मिष्ट) आसक्त हा वह मनुष्य (दुदधो) राम द्वेष के द्वारा (मल) कम मल को (सन्विण्ड) दृक्छटा करता है (स्व) जैसे (सिधुणागु) शिशुनाग ' अलक्षिया " (मदिथ) मिष्टी से लपटा रहता है ।

भायार्थ हे आर्य ! मन वचन और कर्मा से सब करने वाला ये नारितक नाम धन आर स्त्रियों में आसक्त हो कर रामद्वेष से वह बर्षों का अपना आत्मा पर लव कर रहे हैं । पर उन बर्षों के उ य काल में, जैसे आगिया मिष्ट से उत्पन्न हो कर, फिर मिष्टी ही से लिपटाता है, चि तु स्व को आतापना से मिष्टी के सुग्ने पर वह अलक्षिया महारू बट उठता है उभा तरह वे नारितक लोग भी अ म अ मा तरों से महान् बर्षों को उठवेंगे ।

मूल - तथो पुष्टो आयनेण,

गिलाणो परिनप्पह ।

पभीओ परलागस्स,

क्कमाणुप्पेहि अप्पणो ॥ २० ॥

छाया - नतः स्पृष्ट आतकेन,

श्लान परितप्यते ।

प्रमीत परलोकात्,

कर्मापुप्रेक्षयात्मा ॥ २० ॥

अवयवार्थ हे इन्द्रभूति । कम बाध लेने के (तश्चो) पश्चात् (आस्यन्नेण) असाध्य रोगों से (पुट्टो) घिरा हुआ बद्ध नास्तिक (गिलाणो) उलानि पाता है और (परलो गस्म) परलोक के भय से (पमाश्चो) डरा हुआ (अण्णो) अपने किये हुए (कम्माणुप्पेदि) कर्मों को देख कर (परि तप्पइ) खेद पाता है ।

भाषाथ - हे गौतम ! पहले तो ऐसे नास्तिक लोग विषयों के सोलुप हो कर कर्म बाध लते हैं फिर जब उन कर्मों का उदय काल निकट आता है तो असाध्य रोगों से घिर जाते हैं । उस समय उन्हें बद्ध उलानि होती है । नर्कादि के दुखों से वे बड़े घबराते हैं और अपने किये हुए धुरे कर्मों के फलों को देख कर अत्यन्त खेद पाते हैं ।

मून - सुआ मे नरए ठाणा, अमीलाण च जा गई ।

बालाण हूरकम्माण, पगाढा जत्थ वेयणा ॥२१॥

छाया - युतानि मया नरकस्थानानि,

अशीलाना च या गति ।

वालाना हूर कर्माणा,

प्रगाढा यत्र घेदना ॥ २१ ॥

अवयवार्थ - हे इन्द्रभूति ! वे बोलते हैं, कि (जत्थ) जहाँ पर उन (हूरकम्माण) हूर कर्मों के करने वाले (बालाण) अज्ञानियों को (पगाढा) प्रगाढ़ (वेयणा) बेदना होती है । मैं (नरए) नरक में (ठाणा) कुम्भी,

वैतरणी, आदि जो स्थान हैं, वे (गुच्छा) सुने हैं, (च) और (अक्षीलाण) दुराचारियों को (जा) जो (गद) नारकाय गति होती है उध गी सुना है ।

भाषा - हे अय ! नास्तिकजनक नरक और स्वर्ग किसी को भी न मान कर सूख पाप करते हैं । जब उन कर्मों का उदय काल निश्चय आता है तो उनको कुछ असह्यता मालूम होने लगती है । तब वे बोलते हैं कि सब है, हमने सत्वर्षों द्वारा सुना है, कि नरक में पापियों के लिए कुम्भिनियों, वैतरणी नदी आदि स्थान हैं और उन दुष्करियों को जा नारकाय गति होती है, वहाँ कूकर्मों अज्ञानियों को प्रगाढ़ वेदन होती है ।

मूल - सव्य वि लक्ष्मि गीत्र,

सव्य नृद विद्विष्य ।

सव्ये आहरणा भारा,

सव्ये कामा दुःखावदा ॥२२॥

ध्याय - सर्वे विलपित गीत

सर्वे नृदय विद्विष्यतम् ।

सव्येण्यभरणानि भारा,

सर्वे कामा दुःखावदा ॥२२॥

अव्ययार्थ हे इद्रभूते ! (सव्य) घारे (गीत्र) गीत (वि लक्ष्मि) विलाप के समान है । (सव्य) घारे

(नट्ट) टुल्य (विडविध्व) विडम्बना रूप है । (सध्व) सारे (आदरणा) आभरण (भारा) भार के समान हैं । और (सवे) सम्पूर्ण (कामा) काम भोग (दुहावदा) दुख प्राप्त कराने वाले हैं ।

भावार्थः—हे गौतम ! सारे गीत विलाप के समान हैं । सारे टुल्य विडम्बना क समान हैं । सारे रत्न जाकेत आभरण भार रूप हैं । और सम्पूर्ण काम भोग जन्म जन्मांतरों में दुख देने वाले हैं ।

मूल.—जहेह सीहो व मिश्र गहाय,

मच्चू नर नेह ह्य अन्तकाले ।

न तस्स माया व विश्वा व भाया,

कालमि तम्भसट्ठा भवति ॥२३॥

ध्याया यथेह सिह इय मृ । गृहीत्वा,

मृत्युर्नर गयात ह्य त काल ।

न तस्य माता वा पिता वा अत्ता,

काल तस्याशधरा भवान्त ॥ २३ ॥

अवयवार्थ —हे इ द्रभूति । (इह) इय सधार में (जहा) जैसे (सीहो) सिह (मिश्र) मृग का (गहाय) पकड़ कर उधका अ त कर डालता है (व) वेने ही (मच्चू) मृत्यु (ह्य) निधय करके (अ त काले) आयुष्य पूरा होने पर (नर) मनुष्य को (नेह) परलोक में ले जाकर पटक देती

है। (कान्मि) उक्त काल में (माया) माता (या)
 अथवा (विद्या) पिता (य) अथवा (माया) माता
 (सम्मसहरा) उक्त के दुःख का अर्थ मात्र भी बँटारो वाले
 (न) नहीं (भवेति) होता है।

मायाय -दे अथ । वित प्रचार उिह माया दुष्ट मृत
 को पकड़ कर उगे मार डालता है। इसी तरह मृत्यु भा मृत्यु
 का अर्थ कर डालती है। इस समय उक्त के माया पिता
 माइ अन्ति कोई भी उक्तके दुःख का बँगारा करके मायादार
 नहीं बनते। अर्थात् निम्नी आत्मा में ये मृत्यु का कुछ भाग दे
 कर मृत्यु से उगे बचा नहीं रहता है।

मृता -इम च मे अत्यि इम च नत्यि,

इम च मे किञ्चमिम अकिञ्च ।

त एवमेव लालप्पमाण,

हरा हरति वि कदं पमाए ॥ २४ ॥

ध्यायाः-इदं च मेऽस्ति, इदम् च नास्ति,

इदं च वृत्त्यमिदमवृत्त्यम् ।

तमेधमेध लालप्पमान,

हरा हरन्तीति कथं पमाद्ः ॥ २४ ॥

अन्यथायाः-दे इदंभूते । (इमं) यह (मे) मेरा
 (अत्यि) है, (य) अथ (इम) यह पर (मे) मया (नत्यि)
 नहीं है, यह (किञ्च) करने योग्य है (य) और (इम)

यह व्यापार (अकिञ्च) नहीं करने योग्य है, (एवमेव) इस प्रकार (लालप्पमाण) बोलनेवाले प्रमादियों क (त) आयु को (हरा) रात दिन रूप चोर (हरति) हरण कर रहे हैं (ति) इसलिए (कह) कैसे (पमाए) प्रमाद कर रहे हो ?

भावार्थ -हे गौतम ! यह मेरा है यह मेरा नहीं है यह काम करने का है और यह बिना लाभ का व्यापार आदि मेरे नहीं करने का है । इस प्रकार बोलने वालों का आयु तो रात दिन रूप चोर हरण करत जा रहे ह । फिर प्रमाद क्यों करते हो ? अथात् एक और मेरे तेरे की कल्पना और करने न करने के संकल्प चालू बने रहते हैं और दूसरा और काल रूपी चोर जीवन को हरण कर रहा है अतः शत्रु ही सावधान हो कर परमार्थ साधन में लग जाना चाहिए ।

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥



दते हैं (बह) जेठे (सेठे) काम पढ़ी (बह्य) बन्
 का (हरे) हरण कर ल जाता है (एष) इधी तरह (आठ
 क्षयम्भि) उम के बीत जाने पर (तुष्ट) मानव जीवन
 टूट जाता है ।

भावार्थ:-हे पुत्रो ! देखा कितनेक तो बाल्य में ही
 तथा कितनेक बृद्ध वस्था में अपने मानव शरीर के छेद कर
 यदा से चल बसत है । फिर कितनेक गर्भावस्था में ही मरण
 को प्राप्त हो जात है । जैसे, काम पढ़ी अज्ञानक बट्टर को आ
 दरोचता है, वैसे ही न मालूम किशु समय आयु के क्षय
 हो जाने पर शत्रु प्राणों को हरण कर लगी । अर्थात् आयु
 के क्षय होने पर मानव जीवन ही शून्यता टूट जाता है ।

मूलः-मायादि विवादि लुप्यद्,
 नो सुखदा सुगई य पेच्चमो ।

एयाद् भयाद् पेदिय',

आरभा त्रिमेज्ज सुज्वए ॥ ३ ॥

षाया -मातृभि पितृभिलुप्यते,
 नो सुखभा सुगतिश्च प्रत्य तु ।

एतानि भयानि मेदय,

आरम्भाद्विरमेत्सुवत ॥ ३ ॥

अर्थवार्थ:-हे पुत्रो ! माता पिता के मोह में फँस कर
 आ धर्म नहीं करता है, यह (मायादि) माता (विवादि)

पिता के द्वारा ही (लुप्पद्) परिभ्रमण करता है (य) और उसे (पेचवधो) परलाक में (सुगई) सुगति मिलना (सुलहा) सुलभ (न) नहीं है । (एयद्) इन (मयाद्) भयों को (पेहिया) देख कर (आरभा) हिंसादि आरंभ से (विर मेज्ज) निवृत्त हो वही (सुव्वए) सुनतवाला है ।

भावार्थ - हे पुत्रो ! माता पितादि कौटुम्बिक जनों के मोह में फँस कर जिसने धर्म नहीं किया, वह उन्हीं के कारण ससार के चक्र में अनेक प्रकार के कष्टों को उठाता हुआ भ्रमण करता रहता है, और जन्म जन्मान्तरों में भी उसे सुगति का मिलना सुलभ नहीं है । अतः इस प्रकार ससार में भ्रमण करने से हानि वाले अनेकों कष्टों को देखा कर जो हिंसा, भ्रूट चोरी, व्यभिचार आदि कामों से विरक्त रहे वही मानव जीवन को सफल करने वाला सुव्रती पुरुष है ।

मूलः-जमिणं जगती पुढो जगा,
कम्मोहिं लुप्पति पाणियो ।
सयमेव कडेहिं गाहइ,
णो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्टव ॥४॥

छाया - यदिद जगति पृथक् जगत्,
कमभिलुप्यन्ते प्राणिन ।
स्वयमेव कृतैर्गाहते नो,
तस्य मुच्येत् अरपृष्ट ॥ ४ ॥

अन्यथा च -दे पुत्रो ! (गमिष्ये) जो दिशा से निवृत्त नहीं होते हैं उनको यह होता है, कि (जगती) छहार में (गमिष्ये) ये प्रणा (पुत्रो) पृथक् पृथक् (जगती) पृथगी आदि स्थानों में (यन्मेदि) क्यों ही (लुपति) भ्रमण करते हैं । क्योंकि (सयमश्च) आने (वदति) चिन्ते हुए क्यों के द्वारा (मादद) नरकादि स्थानों को प्राप्त करत हैं । (हरष) उन्हे (अनुद्वय) कम हाशं अब तू भोगे बिना (यो) नहीं (सुधम) क्षरते हैं ।

मावाचो-दे पुत्रो ! जो दिशादि से मुँह नहीं मोड़ने हैं, वे इस छहार में, पृथगी, पानी, नरक और विषय आदि अनन्त स्थानों और यंत्रियों में क्यों के साथ घूमते रहत हैं । क्योंकि उन्होंने स्वयमेव ही एष कार्य चिन्ते हैं, कि जिन क्यों के भाग बिना उनका छुट जाना कभी हो ही नहीं सकता है ।
मूल -विरता धीरा समुद्रिषा,

कोटकायरियाद्दीपिसणा ।

पाणे तु दणति सव्वसो,

पावाधो विरयाभिनिव्वुदा ॥ ५ ॥

दाया -विरता धीरा समुद्रिषता ,

प्रोधकातरिकाद्दीपोपणा ।

प्राणात्र माति सर्वस ,

पावाधिरता अभिनिवृताः ॥ ५ ॥

अवयार्थ - हे पुत्रो ! (विरया) जो पौत्रलिक सुखों से विरक्त है और (समुद्रिया) सदाचार के सेवन करने में साधन है (कोहकायरियाइ) क्रोध, माया और लप लक्षण से मान एवं लाभ को (पीसणा) नाश करने वाला है, (उब्बसो) मन, वचन, काया, से जो (पण) प्राणों को (ण) नहीं (हणति) इनता है (पावाओ) हिंसाकारी अनुष्ठानों से जा (विरयाभिनब्बुडा) विरक्त है और क्रोधादि से उपशांत है चित्त जिसका, उस को (वीरा) वीर पुरुष कहते हैं ।

भावार्थ - हे पुत्रो ! मार काट या युद्ध करके कोई वीर कहलाना चाहे तो वास्तव में वह वीर नहीं है । वीर तो वह है जो पौत्रलिक सुखों से अपना मन मोड़ लेता है, सदाचार का पालन करने में मदैव सावधानी रखता है, क्रोध, मान, माया, और लोभ इन्हें अपना आंतरिक शत्रु समझ कर, इनके साथ युद्ध करता रहता है और उस युद्ध में उन्हें नष्ट कर विजय प्राप्त करता है, मन, वचन, और काया से किसी तरह दूसरों के हक में बुरा न हो, ऐसा दमैसा ध्यान रखता रहता है, और हिंसादि आरम्भ से दूर रह कर जो उपशांत चित्त में रहता है ।

मूल - जे पारिभवेई पर जण,

ससारे परिवर्त्तई मह ।

अदु इक्षिणिया ठ पाविया,

इति सन्धाय मुणी र्मु मज्जई ॥६॥

धारा - य परिभवति पर जग,

भसारे परिषत्ते महत् ।

अत इङ्गिनिजा तु पारिका,

इति सन्धाय मुनिर्मायतिः ७३

अन्यवार्थाः-६ पुत्रो । (ज) ओ (पर) एगरे(अण)
मनुष्य को (पारिभवई) अवज्ञा से देखना है, वह (धरारे)
धरार में (मह) आदर (परिवर्तई) परिभ्रमण करता है
(अणु) इग्निए (पारिका) पारिनी (इङ्गिनिजा) निदा
को (इति) ऐसी (सन्धाय) जान कर (मुणी) धारु
पुत्र (ण) नहीं (मज्जई) अभिमान करे ।

भावार्थाः-६ पुत्रो । ओ मनुष्य अपने से आति, कुम,
बल हय अदि में म्यून हो, उसकी अवज्ञा या निन्दा करने
से, वह मनुष्य दीप काल तक धरार में परिभ्रमण करता
रहता है । जिस वस्तु को पाकर निन्दा की थी, वह पारिनी
निन्दा उषसे भा अपिक हीनावस्था में पटकनेवाली है । ऐसा
जान कर धारु अन न सो कभी दूसरे को निन्दा ही करते हैं,
और उ, पार्यो हुइ वस्तु ही का कभी गव करते हैं ।

मूला-जे इह सायाणुगनरा,

अजम्भोषधना कामेहिं मुच्छिथा ।

विषयेण सम पगग्निथा,

न विजाणति समाहिमाहित ॥७॥

छाया -य इह सातानुगनरा,
अध्युपपन्ना कामैमूर्च्छिता ।

कृपणेन मम प्रगर्भिता ,
न विजाणति समाधिमारयातम् ॥७॥

अवयवार्थ -हे पुत्रो (इह) इस ससार में (जे) जो
(नरा) मनुष्य (सायाणुग) श्रद्धि रस माता के अज्मो
ववन्न) साथ (कामेदि) काम भोगों स (मुच्छित्या)
मोहित हो रहे हैं, और (क्विण्ण सम) दीन सराख (पण
त्तिया) घेठ ह वे (आहित) कहे हुए (समाधि) समाधि
मार्ग को (न) नहीं (वि जाणति) जानते हैं ।

भावार्थ -हे पुत्रो ! इस ससार में अनेक प्रकार के
वैभवों से युक्त जो मनुष्य है, वे काम भोगों म प्राप्त हो
कर कायर की तरह मोलते हुए, धर्माचरण में हठीलापन
दिमाने हैं, उ हें ऐसा समझा कि वे वातराग के कहे हुए
समाधि मार्ग को नहीं जानते हैं ।

मूल:-अदक्खुव दक्खुवाहित्य,

सदहपु अदक्खुदसणा ।

हदि हु सुनिरुद्धदसणे,

मोहसिज्जण कडेण कम्पुणा ॥ ८ ॥

छाया -अपरय इष पश्यव्याययात्,
धन्दस्य अपश्यक् दृशना ।

एहो हि सुनिरुद्धशना,
मोहाभायेन वृतेन कर्मणा ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ -हे पुत्रो ! (अर्धतुल्य) तुम अपने कर्मों को देखो जा रहे हो । (दशगुणाद्विय) जिनके देखा है उनके वाक्यों में (सरहस्य) धंदा रक्षो और (हादि अर्धतुल्यशना) हे ज्ञान शून्य मनुष्यों । प्रदण कर्मा कंतराग के कह हुए चागमों को । परलाकादि नहीं है, ऐसा कहने वालों के (माद्विजिण) मोहवश (कडेण) अपने लिए हुए (कम्पुण) कर्मों द्वारा (दणण) सम्पत् ज्ञान (सुनिरुद्ध) अर्थात् सरहस्य बना है ।

भावार्थ - हे पुत्रो ! कर्मों के शुभाशुभ फल दात हुए भी जो उसकी नास्तिकता बताता है, वह अर्थात् ही है । ऐसे को कहना पड़ता है, कि जिन्होंने प्रत्येक रूप में अपने के वाक्यों के बल से स्वर्ग नरकादि देखे हैं, उनके वाक्यों को प्रमाण मूल्य वह माने और उनके कह हुए वाक्यों को, प्रदण कर उनके अनुसार अपनी प्रकृति बनावे । हे ज्ञान शून्य मनुष्यों ! तुम कहते हो कि वर्तमान काल में जा होता है, वही है और सब ही नास्तिक है । ऐसा कहने से तुम्हारे पिता और पितामह का भी नास्तिकता सिद्ध होगी । और जब इन को ही नास्तिक होगी, तो तुम्हारी उत्पत्ति कैसे हुई ? पिता के

पिता पुत्र की कभी उत्पत्ति हो ही नहीं सकती । अतः भूत काल में भी पिता था, ऐसा अवश्य मानना होगा । इसी तरह भूत और भविष्य काल में नरक स्वर्ग आदि के होने वाले सुख दुःख भी अवश्य हैं । कर्मों के शुभाशुभ फल स्वरूप नरक स्वर्ग आदि नहीं हैं, ऐसा जा कहता है, उसका सम्यक् ज्ञान मोक्षदा विये हुए कर्मों से ढँका हुआ है ।

मूल - गार पि अ आवसे नरे,

अणुपुत्र पाणैदि सजए ।

समता सब्वत्थ सुव्वते,

देवाण गच्छे सलोगय ॥ ६ ॥

छाया - अगारमपि च वसधर,

आनुपर्या प्राणेषु सयतः ।

समता सर्वत्र सुव्रतः,

देवाना गच्छेत्सलोकताम् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ हे पुत्रो ! (गार पि अ) पर में (आवसे) रहता हुआ (नरे) मनुष्य भी (अणुपुत्र) जो धर्म धर्म आदि अनुक्रम से (पाणैदि) प्राणों की (सजए) यत्ना करता रहता है (सब्वत्थ) सब जगह (समता) समभाव है जिसके ऐसा (सुव्वते) सुव्रतवान् गृहस्थ भी (देवाण) देवताओं के (सलोगय) लोक को (गच्छे) जाता है ।

भावार्थ हे पुत्रो ! जो गृहस्थावास में रह भी धर्म

धवण करके अपनी शक्ति के अनुसार अपने तथा परायों पर सब जगह समभाव रखता हुआ प्राणियों का दिशा नहीं करता है वह गृहस्थ भी इन प्रकार का व्रत अच्छी तरह पालता हुआ स्वयं को जाता है । भविष्य में उसके लिए मोक्ष भा भिक्षु ही है ।

॥ श्रीसुधर्मोवाच ॥

मूल - अमर्विसु पुरा वि भिवस्तुतो,

आणसा वि भवति सुव्रता ।

एवाह गुणाह आहु ते,

कासवस्त अणुधम्मचारिणो ॥१०॥

छाया - अमवन् पुराऽपि भिक्षुषु,

आणमिष्या अपि सुव्रता ।

एतान् र खानाहुस्ते,

काश्यपस्यानुधमचारिणः ॥१०॥

अत्रयाथ - हे (भिवस्तुतो) भिक्षुधो ! (पुरा) पहले (अमर्विसु) हुए जा (वि) आर (आणसा वि) भविष्यत् में होंगे व सब (सुव्रता) सुव्रता होने से जिन (भवति) होत हैं । (ते) व सब जिन (एवाह) इन (गुणाह) गुणों को एवसे (आहु) कहत है । क्योंकि, (कासवस्त) महावीर भगवान के (अणुधम्मचारिणो) वे धर्माचारी है ।

भाषार्थः - हे भिक्षुधो ! जो पीते हुए क्षाल में तीर्थकर

हुए हैं, उनके और भावेष्यत में होंगे उन सभी तीर्थकरों के, कथनों में अंतर नहीं होता है। सभी का मत्त्व एक ही सा है। क्योंकि वे सुनती होने से राग, द्वेष रहित जो जिन पद है, उसको प्राप्त कर लेते हैं और सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हैं। इसी से ऋषभदेव और भगवान् महार्जर आदि सभी 'ज्ञान दशन चारित्र्य से मुक्ति होता है, ' ऐसा एक ही सा कथन करते हैं।

॥ श्रीऋषभोवाच ॥

मूल - त्रिविधेण वि पाण मा हण्ये,
 आयहिते अणियाण सवुडे ।
 एव सिद्धा अणतसो,
 सपह जे अणागयाधरे ॥११॥

छा॥ त्रिविधेनापि प्राणान् मा हन्यात्,
 आरमाहितोऽनिदान सवृत ।
 एव सिद्धा अनन्तश,
 सप्रति ये अनागत अपरे ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः- हे पुत्रो । (जे) जा (आयहिते) आत्म
 दित के लिए (त्रिविधेण वि) मन, वचन, कर्म से (पाण)
 प्राणों को (मा हण) नहीं हनते (अणियाण) निदान रहित
 (सवुडे) इन्द्रियों को गोप्ये (एव) इस प्रकार का जावन
 करने से (अणतसो) अनन्त (सिद्धा) मोक्ष गये हैं और

(सप्तमः) वर्तमान में जा रहे हैं (अणामयावरो) और अनागत अथात् भविष्यत् में जावेंगे ।

भावार्थः हे पुत्रो ! जो आत्म हित के लिए एकेन्द्रिय हो लेकर पञ्चिन्द्रिय पर्यन्त प्राणा मात्र की मन, वचन आदि काम से हिंसा नहीं कात है, और अपनी इन्द्रियों को विषय वासना की ओर घूमन नहीं दते हैं, बस, इसी मृत के पालन करते रहने से भूत काल में अनन्त आनन्द प्राप्त पहुँचे है । और वर्तमान में जा रहे हैं । इसी तरह भविष्यत् काल में भी जावेंगे ।

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः—सबुज्जम्हा जतयो माणुसत्त,

दट्टु भय वालिमेण अलभो ।

एगतदुवत्ते जरिए व लोए,

सकम्पुणा विपरियासुवेइ ॥ १२ ॥

छाया -सयुष्यध्वम् जतयो । मानुसत्त,

दट्टुवा भय वालिशेनालभ ।

एकान्तदु स्राज्जवरित इव लोए,

स्थकमणा विपर्यासमुपैति ॥ १२ ॥

अथ वार्थ - (जतयो) हे मनुष्यो ! त्वम् (मानुसत्त) मनुष्यता को (सबुज्जम्हा) अरुद्धा तरह जानो । (भय) नरकादि भय को (दट्टु) देख कर (वालिमेण) मूर्खता के

कारण विवेक को (अलभो) जो प्राप्त नहीं करता वह (सकम्पुणा) अपने किये हुए कर्मों के द्वारा (जरि व) ज्वर से पीड़ित मनुष्यों का भाति (एगत दुःखे) एकांत दुःख युक्त (लोए) लोक म (विपरियासुवेइ) पुन पुन जन्म मरण को प्राप्त होता है ।

भाषार्थः-हे मनुजा ! दुर्लभ मनुष्य भव को प्राप्त कर के फिर भी जो सम्यक् ज्ञान आदि को प्राप्त नहीं करते हैं, और नरकादि क नाना प्रकार के दुःख रूप भयों के होते हुए भा मूर्खता के कारण विवेक को प्राप्त नहीं करते हैं वे अपने किये हुए कर्मों के द्वारा ज्वर से पीड़ित मनुष्यों की तरह एकांत दुःखकारी जो यह लोक है, इस में पुन पुन जन्म मरण को प्राप्त करते हैं ।

मूलः-जहा कुम्भे सअगाइं, सण देहे समाहरे ।

एव पावाइ मैधावी, अजम्पेण समाहरे ॥१३॥

छाया -यथा कुर्म स्वाज्ञानि स्वदेहे समाहरेत् ।

एव पापानि मेधार्था, अध्यात्मना समाहरेत् ॥१३॥

अन्वयार्थ है धार्थ । (जहा) जैसे (कुम्भे) कलुआ (सअगाइ) अपने अज्ञानों को (सण) अपने (देहे) शरीर में (समाहरे) चिकोड़ लेता है (एव) इसी तरह (मैधावी) पण्डित जन (पावाइ) पापों को (अजम्पेण) अध्यात्म ज्ञान से (समाहरे) सहार कर लेते हैं ।

भाषार्थ - हे आर्य ! जैसे कछुआ अपना अहित होता हुआ देख कर अपने अङ्गोपाङ्गों को अपने शरीर में सिंकोष लेता है, इसी तरह परिदुत जन भी विषयों की ओर जाती हुई अपनी इन्द्रियों को अत्यधिक ज्ञान से सङ्चित कर रखते हैं ।

मूलः-साहरे हत्यपाए य, मणु पचिर्दियाणि य ।

पावक च परिणाम भासा, दोस च तारिसा ॥१४॥

ध्यायाः-सहरेत् हस्तपादौ वा, मन पञ्चेन्द्रियाणि च ।

पापक च परिणाम भाषादोष च तादृशम् ॥१४॥

अन्वयार्थः-हे आर्य ! (तारिस) कछुए की तरह ज्ञानी जन (हत्यपाए य) हाथ और पावों की व्यथ चलन क्रिया को (मणु) मन की चपलता को (य) और (पचिर्दियाणि) विषय की ओर घूमती हुई पावों ही इन्द्रियों को (च) और (पावक) पाप क हेतु (परिणाम) आने वाले अभिप्राय को (च) और (भासादोस) तावय भाषा बोलने को (साहरे) रोक रखते हैं ।

भाषार्थः-हे आर्य ! जो ज्ञानी जन हैं वे कछुए की तरह अपने हाथ पावों को सङ्चित रखते हैं । अर्थात् उनके द्वारा पाप कम नहीं करते हैं । और पावों की ओर घूमते हुए इस मन के वेग को रोकते हैं । विषयों का ओर इन्द्रियों को भोकने तक नहीं देते हैं और बुरे भाषों को हृदय में नहीं

आने देते । और जिस भाषा से दूसरों का बुरा होता हो, ऐसी भाषा भी कभा नहीं बालत हैं ।

मूल:-एय खु ग्याणियो सार, ज न हिंसति कचण ।

अहिंसा समय चेत्, एतावत् त्रियाणिया ॥१५॥

छाया एतत् प्रलु ज्ञानिन सार,
यन्न हिंस्यति कञ्चनम् ।

अहिंसा समय चैव

एतावती विश्वानिता ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ - हे आर्य ! 'खु' निराश करके (ग्याणियो) ज्ञानियों का (एय) यह (सार) तत्व है, कि (ज) जो (कचण) किसी भी जाव की (न) नहीं (हिंसति) हिंसा करत (अहिंसा) अहिंसा (चेत्) ही (समय) शास्त्रीय तत्व है (एतावत्) वष, इतना । (त्रियाणिया) विश्वान है । यह यथेष्ट ज्ञानीजन है ।

भावार्थ हे आर्य ! ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उन ज्ञानियों का सारभूत तत्व यही है, कि वे किसी जाव की हिंसा नहीं करते । व अहिंसा ही को शास्त्राय प्रधान विषय समझते हैं । वास्तव में इतना जिस सम्यक् ज्ञान है वही यथेष्ट ज्ञानी जन है । बहुत अधिक ज्ञान सम्पादन करके भी यदि हिंसा को न छोड़, तो उनका विशेष ज्ञान भी अज्ञान रूपा है ।

मूल -सबुज्झमाणे उणरे मत्तीम,

पावाड अप्याण निवट्टएज्जा ।

हिंसप्पसूयाइ दुहाइ मत्ता,

वेराणुवधीणि महम्मयाणि ॥१६॥

श्राय - स बुद्धयमानस्तु नरो मतिमान्,

पापादात्मानं विषत्तयेत् ।

हिंसाप्रसूनाणि दुःखानि मत्वा,

वैरानुषधीनि महामयानि ॥१६॥

अवयाध - हे श्राय । स बुद्धयमानः सत्यो को जानने वाला (मतीम) बुद्धिमान् (गुरे) मनुष्य (हिंसप्पसूयाइ) हिंसा से उत्पन्न होने वाल (दुहाइ) दुखों को (वेराणुवधीणि) कर्मबधहतु (महम्मयाणि) महाभयकारी (मत्ता) मान कर (पावाड) पारसे (अप्याण) मरना आत्मा को (निवट्ट एज्जा) निवृत्त करत रहत है ।

भाषाध - हे श्राय । बुद्धिमान् मनुष्य वही है, जो सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करता हुआ हिंसा से उत्पन्न होने वाले दुखों को कर्म बध का हेतु और महाभयकारी मान कर, पापों से अपनी आत्मा को दूर रखता है ।

मूल - आयगुणे सया दते,

विन्नसेए अणासवे ।

जे धम्मं सुद्धमकलाति,

पण्डिपुत्रमण्डलिस ॥ १७ ॥

छाया - आत्मगुप्त सदा दान्त ,
छिन्नशोकोऽनाश्रव ।

यो धर्मं शुद्धमाप्स्यति,
प्रतिपूणमर्नादृशम् ॥१७॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (जे) जो (आत्मगुप्ते)
आत्मा को गोपता हो (सदा) हमशा (दन्त) इन्द्रियों का
दमन करता हो (छिन्नमोए) ससार के शोकों को मूदने
वाला या इष्ट वियोग आदि के शोक से रहित और (अणा
श्रवे) मूलन कम बधन रहित जो पुष्ट हो, वह (पण्डिपुत्र)
परिपूण (अण्डलिस) अनन्य (शुद्ध) शुद्ध (धम्म) धम
को (अश्रवणति) कहता है ।

भावार्थ हे गतम । जो अपनी आत्मा का दमन
करता है, इन्द्रियों के विषयों के साथ जो विजय को प्राप्त
करता है, ससार में परिभ्रमण करने के हेतुओं को नष्ट कर
हालना है, और नवीन कर्मों का बध नहीं करता है, अथवा
इष्ट वियोग और अनिष्ट वियोग आदि होने पर भी जो शोक
नहीं करता समभावी बना रहता है, वही ज्ञानी जन हित
कारी धम मूलक तत्त्वों को कहता है ।

शूलः-न कम्मणा कम्म खवेति बाला,

अकम्मणा कम्म खवेति पीस ।

मेधाविणो लोभमयावतीता,
सतोसिणो नो पक्वैति पाव ॥१८॥

जाना न कमणा कर्म क्षरयति पाता ,
अकर्मणा कर्म क्षपयति घीरा ।
मेधाविनो लोभमद्व्यतीता ,
सन्तोषिणो नोपकुचन्ति पापम् ॥ १८ ॥

अवयवार्थ -हे इन्द्रभूति ! (बाला) जो अज्ञानी जा
है वे (कम्मुणा) हिंसादि कर्मों से (कम्म) कर्म को (न)
नहीं (खर्वेति) नष्ट करते हैं, नि तु (धारो) बुद्धिमान्
मनुष्य (अकम्मुणा) अहिंसादिको स (कम्म) कर्म
(खर्वेति) नष्ट करते हैं, (मेधाविणा) बुद्धिमान् (लोभम
या) लोभ तथा मद से (वताता) रहित (सतासिणो)
सतोषी होते हैं, वे (पाव) पाप (नो पक्वैति) नहीं करते हैं ।

भावार्थ -हे गौतम ! हिंसादि के द्वारा पूर्व संचित
कर्मों को हिंसादि ही से जो अज्ञानी जीव नष्ट करना चाहते
हैं, यह उन ही भूत है । प्रत्युत कर्मनाश के बदले उनके पाप
कर्मों का बंध हाता है । क्योंकि सून से भोगा हुआ कपड़ा
सून ही के द्वारा कभी साफ नहीं होता है, बुद्धिमान् तो वही
हैं, जो हिंसादि के द्वारा बंधे हुए कर्मों से अहिंसा, सत्य दत्त
महावय, आकिंचन्य आदि के द्वारा नष्ट करते हैं । और वे
लोभ और मद से रहित होकर सतोषी हो जाते हैं । वे फिर
भविष्यत्क में नवान पाप कर्म नहीं करते हैं । यथा 'लोभ

शब्द राग का सूचक और 'मद द्वेष का सूचक है । अतएव लोम मया शब्द का अर्थ राग द्वेष समझना चाहिए ।

मूल - ढहरे य पाणे बुह्ढे य पाणे,

ते आत्तओ पासइ सव्वलोए ।

उव्वेहती लोगभिण महत,

बुद्धेऽपमत्तेसु परिव्वएज्जा ॥१६॥

ध्याया - टिमश्च प्राणो वृद्धश्च प्राण ।

स आत्मघत् पश्यति सर्वलोकान् ।

उत्प्रेक्षते लोकमिम महान्तम् ,

बुद्धोऽपमत्तेषु परियजेत् ॥ १६ ॥

अ चयार्थ - हे इन्द्रमूर्ति ! (ढहरे) छोटे (पाणे) प्राणी (य) और (बुह्ढे) बड़े (पाण) प्राणी (ते) उन सभी को (सव्वलोए) सर्पे लोक में (आत्तउ) आत्म घत् (पासइ) जो देखता है (इण) इस (लोग) लोक को (महत) बड़ा (उव्वेहता) देखता है (बुद्धे) वह सत्यज्ञ (अपमत्तेषु) आलस्य रहित समय में (परिव्वएज्जा) गमन करता है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! चींटियों, मकोड़े, कुचुके, आदि छोटे छोटे प्राणी और गाय, भैंस, हाथी, बकरा आदि बड़े बड़े प्राणी आदि सभी को अपने आत्मा के समान जा समझता है । और महान लोक को चराचर जीव के जन्म मरण

से अशा द्रव देण कर ओ बुद्धिमान् मनुष्य समय में रत
रहता है । वही मोक्ष में पहुँचने का अधिकारी है ।

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥



निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय पद्रहवा)

मनोनिग्रह

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः-एगो जिए जिया पच,

पच जिए जिया दस ।

दसहा उ जिणित्ताण,

सव्वसत्तु जिणापइ ॥१॥

छाया -एकस्मिन् जिते जिताः पञ्च,

पचसु जितेषु जिता दश ।

दशधा तु जित्या,

सर्वशत्रून् जयाम्यहम् ॥१॥

अन्वयार्थ -हे मुनि ! (एगे) एक मन को (जिए) जीतने पर (पच) पाँचों इन्द्रिया (जिया) जीत ली जाती हैं और (पंच) पाँच इन्द्रियाँ (जिए) जीतने पर (दस)

एक मन पांच इंद्रियों और चार कणाय, यों दणों (विद्या)
 ज्ञात लिये जाते हैं । (दणदा उ) दणों को (विद्विता)
 ज्ञात कर (गु) वाक्यालङ्कार (सम्प्रभू) सभी शत्रुओं
 को (मह) मे (विद्या) ज्ञात जाता है ।

आधार्य हे मुनि ! एक मन का अंत लन वर पांचों
 इंद्रियों पर विषय प्राप्त करली जाती है । और पांच इंद्रियों
 को ज्ञात लेने पर एक मन पांच इंद्रियों और क्रोध, मान
 मया, लोभ ये दणों ही ज्ञात लिये जाते हैं । और, इन दणों
 को ज्ञात लेने से, सभी शत्रुओं को ज्ञात जा सकता है ।
 इसीलिए सब मुनि और गुरुद्वयों के लिए एक बार मन को
 ज्ञात लेना प्रेरक है ।

मूलः—मणो मादसिभो भोमो, दुदृस्तो परिधावर्द ।

त सम्भ तु निगिरुहामि, धम्मसिक्खाद् कथमा॥२॥

मया -मन सादसिक भोम,
 दुदृभव परिधावति ।

त सम्भत् तु निगृह्यामि,
 धमशिष्यायै कथयाम् ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—हे मुनि (मणो) मन बदा (सादसिभो)
 सादसिक और (भोमो) भयकर (दुदृस्त) दुष्ट पाद की
 तरह इधर उतर (परिधावर्द) दौड़ता है (त) उसको (धम्म
 सिक्खाद्) धम इय शिष्या से (कथय) जातिवत अत्र की

तरह (सम्म) सम्यक् प्रकार से (निमित्तहामि)गृहण करता हूँ।

भावार्थ -हे मुनि ! यह मन अनर्थों के करी में बड़ा साहायिक और भयकर है। जिस प्रकार दुष्ट घोड़ा इधर उधर दौड़ता है, उसी तरह यह मन भी ज्ञान रूप लगाम के बिना इधर उधर चकर मारता फिरता है। ऐसे इस मन को धर्म रूप शिवा से जातिवत घोड़े की तरह मने निग्रह कर रक्खा है। इसी तरह सब मुनियों का चाहिए, कि व ज्ञान रूप लगाम से इस मन को निग्रह करते रहें।

मूलः-सच्चामोसा तद्देव य, सच्चामोस तद्देव य ।

चतुर्थी असच्चमोसा य, मणगुती चउध्विहा ॥३॥

छाया -सत्या तथैव मृषा च सत्यामृषा तथैव च ।

चतुर्थ्य सत्यामृषा तु, मनोगुप्तिश्चतुर्विधा ॥३॥

अ-वयवार्थ -हे इन्द्रभूति ! (मणगुता) मन गुप्ति (चउध्विहा) चार प्रकार की है (सच्चा) सत्य (तद्देव) तथा (मोसा) मृषा य) आर (सच्चमोसा) सत्यमृषा (य) आर (तद्देव) वेधे ही (चतुर्थी) चौथी (असच्चमोसा) असत्यमृषा है।

भावार्थ -हे गौतम ! मन चारों ओर घूमता रहता है।

(१) सत्य विषय में (२) असत्य विषय में, (३) कुछ सत्य और कुछ असत्य विषय में (४) सत्य भी नहीं असत्य भी नहीं ऐसे असत्यमृषा विषय में प्रवृत्ति करता है। जब यह मन

अथवा कुछ सत्य और कुछ असत्य, इन दो विभागों में प्रवृत्ति करता है तो महान् अनर्थों को उपाशन करता है । उन अनर्थों का भार स आत्मा अपने गति में जाती है । अतएव असत्य और मिथ्य को और धूनत हुए इस मन को निमज्ज कर के रखना चाहिए ।

मूलः-सरभसमारभे, आरभाम्मिय तद्देव य ।

मण्य पवत्तमाण तु, निमसिज्ज जय जई ॥४॥

दायाः-सरभं समारभ, आरभे च तथैष च ।

मनः प्रवत्तमान तु, नियतयेद्यत्त यत्ति ॥४॥

अ-र्याथ -दे इन्द्रभूति ! (जय) यत्नवान् (जई) योत्ता (सरभसमारभे) किसी का भारने क सम्बन्ध में और पीडा देने के सम्बन्ध में (य) और (तद्देव) वषे ही (आरभाम्मि) द्विषक परिणाम के निश्चय में (पवत्तमाण तु) प्रवृत्त होते हुए (मण्य) मन को (निमसिज्ज) निवृत्त करना चाहिए ।

भावार्थ -दे नीतम ! यत्नवान् साधु हो या गृहस्थ

(*) नियतिज्ज ऐसा भी कहीं कहीं आता है, ये दोनों शुद्ध है । क्योंकि क ग घ ङ आदि वर्णों का जोष करने में अ " अवशेष रह जाता है । उस जगह अवर्णों में अति " हम सूत्र से " अ " की जगह " य " का आदेश होता है ऐसा अन्यत्र भी समझ लें ।

हो, चाहे जो हो, किन्तु मन के द्वारा कमा भी ऐसा विचार तक न कर, कि अमुक को मार दारूँ या उसे किसी तरह पीड़ित कर दूँ। तथा उसका सबस्व नष्ट कर दालूँ। क्योंकि मन के द्वारा ऐसा विचार मात्र कर लेने से वह आत्मा मग्न पतकी बन जाता है। अतएव हिंसक अशुभ परिणामों भी और जाते हुए इस मन को पीड़ा घुम ओ, और निग्रह कर कर रक्खा। इता तरह कम से घने की ओर घूमते हुए, बवन और काया को भा निग्रह करक रक्षो।

मूलः—प्रथममलका,

इत्थीओ सयणाणि य ।

अच्छदा जे न भुजति,

न से चाइ ति बुच्चइ ॥ ५ ॥

छाया -वस्त्रगन्धमलद्वारं,

श्रिय शयनानि च ।

अच्छन्दो ये न भुजति,

न ते त्यागिन इत्युच्यते ॥ १॥

अ प्रथम -हे इन्द्रभूति ! (वस्त्रगन्धमलकार) वस्त्र, सुगन्ध, मूषण (इत्योद्यो) झिक्को (य) और (सयणाणि) शय्या बेगैरह को (अच्छदा) पराधीन होने से (जे) जो (न) नहीं (भुजति) भोगते हैं (से) ये (चाइ) स्त्री (न) नहीं (ति) ऐसा (बुच्चइ) कहा है।

भाषार्थ हे अथ । सम्यक् परिभाषा अवस्था में, या
 पुरुष्य का नामपदक अवस्था वैश्व अवस्था में, अवशा रवान
 होन पर कई प्रकार क ब्रह्मिवा अथ सुगम इव अदि भूत
 यत्पर एव गिरी और शब्द अति क उपन करने का ओ
 मग द्वारा केवल इच्छा मात्र ही करता ह, परन्तु उन वस्तुओं
 को पराधीन होने से भाग नहीं नष्टा दे, उक्त एवं ही मदी
 वदते ह, क्योंकि उक्त ही इच्छा नहीं गिरी वह मनोप
 र्यागी नहीं बता दे ।

मूल - जे य क्त विद् भोए,

लदे वि विट्टिबुवइ ।

सादाणे चयइ भोए,

से हु चाइ ति युवइ ॥ ६ ॥

भाषा - यद्य का तान् प्रियान् भोगान् ,

सन्धागि वि पृष्ठीं उते ।

स्वाधीमान् त्यजति भोगान् ,

स हि स्वार्गाः पुच्यते ॥ ६ ॥

अवयाध हे इ दमूति । (क्त) पु र (विद्)

मन भोदक (लद) पाये हुए (भोए) भोगों का (वि) भी

(जे) ओ (विट्टिबुवइ) पीठ से देने, यही नदी, ओ (भोए)

भोग (सादीणे) स्वाधीन है उ दे (चयई) छोड़ देता दे ।

(हु) नियम (से) वह (चाइ) स्वाधी है (ति) ऐसा

(सुच्छद) कहते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! जो गृहस्थाश्रम में रह रहा है, उसको सुन्दर और प्रिय भोग प्राप्त होने पर भी उन भोगों को पीठ दे देता है, यही नहीं, स्वाधीन होते हुए भी उन भोगों का परित्याग करता है । बड़ा निश्चय रूप से सुच्छदा त्यागी है ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं ।

मूल - समाए पेहाए परिध्वयतो,

सिया मणो निस्सरई बदिद्धा ।

“न सा मह नो वि अह पि तीसे,”

इच्चेव ताओ विणएज्ज राग ॥७॥

छाया - समाया प्रेक्षया परिव्रजत ,

स्यान्मनो निःसरति बहि ।

न सा मम नोऽप्यह तस्या ,

इत्येव तस्या विनयेत् रागम् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (समाए) समभाव से (पेहाए) देखता हुआ जो (परिध्वयतो) सदाचार सेवन में रमण करता है उस समय (सिया) कदाचित् (मणो) मन उसका (बदिद्धा) समय जीवन से बाहर (निस्सरई) निकल जाय तो विचार करे, कि (सा) वह (मह) मेरी (न) नहीं है । और (अह पि) मैं भी (तीसे) उस का (नो वि) नहीं ही हूँ । (इच्चेव) इस प्रकार विचार कर

मायार्थ दे चार्थ । सम्पूर्ण परित्याग अवस्था में, या
 गृहस्थ का सामाजिक अवकाश वीर्य अवस्था में, यवशा त्याग
 होने पर कई प्रकार के बर्दिया वस्त्र, सुगन्ध, इत्र आदि भूषण
 वस्त्रों एवं श्रियो और शयन आदि के सेवन करने की जो
 मन द्वारा केवल इच्छा मात्र ही करता है, परन्तु उन वस्तुओं
 को पराधान होने से भाग नहीं सँभलता है, उसे त्यागी नहीं
 कहते हैं, क्योंकि उसकी इच्छा नहीं मिटी वह मनमिथक
 त्यागी नहीं बना है ।

मूल-जे य कत विष्ट भोए,

लद्धे वि विट्टिहुव्वइ ।

साहीणे चयइ भोए,

से हू चाइ ति वुच्चइ ॥ ६ ॥

छाया -यद्य का तान् प्रियान् भोगान् ,

सुखानपि वि पृष्ठाकु रते ।

स्वाधीनान् त्यजति भोगान् ,

स हि त्यागीत्युच्यते ॥ ६ ॥

अ-वयाध -दे इन्द्रभूति । (कत) सुन्दर (विष्ट)
 मन मोहक (लद्ध) पाये हुए (भोए) भोगों को (वि) भी
 (जे) जो (विट्टिहुव्वइ) गीठ दे देवे, नहीं नहीं, जो (भोए)
 भोग (साहीणे) स्वाधीन हैं उन्हें (चयइ) छोड़ देता है ।
 (हू) निश्चय (से) वह (चाइ) त्यागी है (ति) ऐसा

(चुच्चद) कहते हैं ।

भाषार्थः—हे गौतम ! जो गृहस्थाश्रम में रह रहा है, उसको सुन्दर और प्रिय भोग प्राप्त होने पर भी उन भोगों को पीठ दे देता है, यही नहीं, स्वाधीन होते हुए भी उन भोगों का परित्याग करता है । वही निश्चय रूप से सच्चा त्यागी है ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं ।

मूल —समाण पेहाए परिव्रयतो,

सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।

“न सा मह नो वि अह पि तीसे,”

इच्चेव ताओ विणएज्ज राग ॥७॥

छाया —समया प्रेक्षया परिव्रजत ,

स्यामनो नि सरति बहि ।

न सा मम नोऽप्यह तस्या ,

इत्येव तस्या धिनयेत रागम् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ —हे इन्द्रभूति ! (समाए) समभाव से (पेहाए) देखता हुआ जो (परिव्रयतो) सदाचार सेवन में रमण करता है , उस समय (सिया) कदाचित् (मणो) मन उसका (बहिद्धा) समय जीवन से बाहर (निस्सरइ) निकल जाय तो विचार करे, कि (सा) वह (मह) मेरी (न) नहीं है । और (अह पि) मैं भी (तीसे) उस का (नो वि) नहीं ही हूँ । (इच्चेव) इस प्रकार विचार कर

(तापो) उच्छे (राग) स्नेह भाव को (विघ्न) दूर करना चाहिए ।

भाषायाः—हे श्याम ! सभी आवों पर समगुण रख कर आत्मिक ज्ञानादि गुणों में रमण करते हुए भी प्रमाद वरा यह मन कभी कभी खसमी जीवन से बाहर निकल जाता है क्योंकि हे गौतम ! यह मन बड़ा चलत है वायु की गति से भी अधिक तीव्र गतिमान है, अतः जब सुख के मन मोहक पदार्थों की ओर यह मन चला जाय, उस समय यों विचार करना चाहिए कि मन की यह श्रुत है, जो तांशारिक प्रवच की ओर घूमता है। श्री, पुत्र, धन वधैरह सम्पत्ति मेरी नहीं है। और मैं भी उन का नहीं हूँ। ऐसा विचार कर उस सम्पत्ति से स्नेह भाव को दूर करना चाहिए। जो इस प्रकार मन का निग्रह करता है, वही उत्तम मनुष्य है।

मूल — पाण्डित्यमुसावाया अदत्तमेहुणपरिगहा विरभो ।
रईमोयणविरभो, जीवो होइ अणासवो ॥८॥

श्यामः प्राणियधमृपावाद —
अदत्तमिधुनपरिग्रहेभ्यो विरत ।

रात्रिभोजनविरत,
जीवो भवति अनाथवः ॥ ८ ॥

अभ्ययार्थ हे इन्द्रमूर्ति ! (जीवो) जो जीव (पाण्डित्यमुसावाया) प्राणियध, मृपावाद (अदत्तमेहुणपरिगहा)

चोरी, मैथुन और ममत्व से (विरम्यो) विरक्त रहता है ।
और (राश्मोपण विरम्यो) रात्रि भोजन से भी विरक्त रहता
ह, वह (अणामवो) अनाधर्य (होइ) होता है ।

भावार्थ - हे गौतम ! आत्मा ने चाहे जिस जाति व
पुन में जन्म लिया हो, अगर वह हिंसा, भूँड, चोरी, व्यभि
चार, ममत्व और रात्रि भोजन से पृथक् रहता हो तो वही
आत्मा अनाधर्य * होता है । अर्थात् उस के भावी नवीन
पाप रुक जात हैं । और जो पूर्व भवों के अचित्त कर्म हैं, वे
यही भोग करके नष्ट कर दिये जाते हैं ।

मूल - महा तलागस्य,
सन्निरुद्धे जलागमे ।
उत्सिचणाए तपणाए,
कमेण सोसणा भवे ॥ ६ ॥

छा। यथा महातलागस्य,
सन्निरुद्धे जलागमे ।
उत्सिचनेन तपनेन,
क्रमेण शोषणा भवेत् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूते ! (महा) जैसे (महा
तलागस्य) बड़े भारी एक तालाब के (जलागमे) जल के

आन के माग को (अलिदद) रोक देने पर, फिर उध में
 वा रहा हुआ पानी (अलिदद) उनीचन में तथा (नर
 ए) एध के अतय से (कम्प) अमरा (अलिदद)
 उध का रो-एध (मर) होगा है ।

आयार्थः-दे आय । निम प्रकर एध बने मागे ताज न
 के अल अलि के मार्ग का रोक देने पर नहीन अल उध ता
 माव में नही आ सकता है । फिर उध ताज न में रहे हुए
 अल को दिधी प्रकार उनीच कर ब दर निदान देने के अथवा
 एध के अतय से अमरा वह अरोवर एध आता है । अर्थात्
 फिर उध तालाव में पानी नही रह सकता है ।

मू०.-२४ तु सजयस्त्वापि,
 पापकर्मनिरासवे ।

भवकेदिसविय कम्म,

तवमा निज्जरिउज्ज् ॥१०॥

दाया एध तु सयतस्त्वापि,

पापकर्मनिरासवे ।

सयकटिसञ्चित कम्म,

तपसा मिज्जरियते ॥१०॥

अ-वपाधा हे इन्द्रभूति । (एव) इस प्रकार (पाव
 कम्मनिरासवे) अर्थात् नवान पाव कर्मों का आना रुक गया
 है, ऐसे (सजयस्त्वापि) सयमी जीवन बिताते वाले के

(भवकोटिसचिय) करावों भवों के पूवापाजित (कम्म) कर्म (तवसा) तप द्वारा (निज्जरिज्जइ) छुप हो जाते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! जैसे तालाब में नवीन आते हुए पानी को रोक कर पहले के पानी को उलावने से तथा आ तप से उसका शोषण हो जाता है । इसी तरह मयमी जन्मन बिताने वाला यह जीव भी हिंसा, भ्रूठ, चारी व्यभिचार, और ममत्व द्वारा आते हुए पाप को रोक कर जो करोड़ा भवों में पहले संचित किये हुए कर्म हैं उन को तपस्या द्वारा छुप कर लेता है । तात्पर्य यह है कि आगामी कर्मों का सवर और पूर्वकृत कर्मों की निजरा दी कर्म छुप मोक्ष का कारण है ।

मूल - सो तवो दुविहो वुत्तो,

बाहिरिभितरो तइ ।

बाहिरो छन्विहो वुत्तो,

एवमन्निभितरो तरो ॥ ११ ॥

छाया - तत्तपो द्विविधमुक्त्त,

बाह्यमाभ्या तर तथा ।

बाह्य पद्द्विविधमुक्त्त,

एवमाभ्यन्तर तप ॥११॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (सो) वह (तवो) तप (दुविहो) दो प्रकार का (वुत्तो) कहा गया है । (बाहिर

विगतता तदा) ब्रह्म तथा आम्बुमता (बहिरो) बन्धु तप
(सुम्बिदो) त प्रधार का (गुप्तो) कहा है । (एव) इमी
प्रधार (अन्विता) आम्बुमर (तथा) तप भी है ।

भाषार्थ - हे आम्बु ! जिस तप न, पूष छपिन कम नष्ट
दिय जाते हैं, वह तप दो प्रधार का है । एक बन्धु और दूसरा
आम्बुमर । बन्धु क द प्रधार है । इही तपद आम्बु मर के
भी द प्रधार है ।

मूल - अणुसणुमूणोपरिणा,

भिक्षापरिणा य रसपरिचाभो ।

कायकिनेसो मलीगुया,

य मज्जो तपो दोर ॥ १२ ॥

भाषा - अणुसणुमूणोपरिणा,

भिक्षापरिणा य रसपरिचाभो ।

कायकिनेसो मलीगुया,

य मज्जो तपो दोर ॥ १२ ॥

अन्वयाद्यः - हे इन्द्रभूति ! ब्रह्म ता के त भेद यो
है — (अणुसणुमूणोपरिणा) अणुसणु, ऊनोपरिणा (य)
और (भिक्षापरिणा) भिक्षापरिणा (रसपरिचाभो) रस
परिचाभ (कायकिनेसो) काय किनेस (य) और (मली
गुया) जो इन्द्रियों को ब्रह्म में करना । यह छा प्रधार का
(मज्जो) बन्धु (तपो) तप (दोर) है ।

भाषाथ - हे गौतम ! एक दिन, दो दिन यों छे ।
 महाने तक भोजन का परित्याग करना, या सर्वथा प्रकार
 भोजन का परित्याग कर के सधारा कर ले उसे अनशन
 तप कहते ह । भूख सहन कर कुछ कम खाना, लम्को ऊर्ण
 दश तप कहते ह । अनैमित्तिक भोजी होकर नियमानुक्त
 भाग करके भोजन खाना बद्ध भिक्षाचर्यी नाम का तप है
 घी, दूध, दही, तेल और मिष्ठान आदि का परित्याग कर
 बद्ध रस परित्याग तप है । शात व ताप आदि को सहन कर
 वाय जेश नाम का तप है । और पाँच दोषों को वश
 करण एव क्रोध, मान, माया, लोभ पर विनय प्राप्त कर
 मन वचन धार्या के अशुभ योगों को रोकना यह छटा सत
 नता तप है । इन तरह बाह्य तप के द्वारा आत्मा अपने
 सचित कर्मों का क्षय कर सकती है ।

मूल - प्रायश्चित्त विणश्रो,

वेयावच्च तद्देव सज्ज्माश्रो ।

भाण च विउस्सग्गो,

एसो अग्गित्तरो तरो ॥ १३ ॥

छाया - प्रायश्चित्त विनय ,

वैयावृत्य तथैव स्वाध्याय ।

* (Giving up food and water for some time
 or permanently)

ध्यान व द्युरसंग ,

एतदाभ्यन्तर तप ॥ १३ ॥

अन्यधर्म -दे इन्द्रभूति । अ भ्यन्तर तप के छ भेद
या हैं । (चापरिदत्त) प्रायश्चित्त (विष्णुधर्म) विनय (वेदा
वचन) वैवाण्ण्य (तरेण) धरो ही (सज ज्ञानो) स्वाध्याय
(शास्त्रो) ध्यान (च) और (विद्विग्मो) द्युरसंग (एषो)
यह (अर्द्धभूतरो) आभ्यन्तर (तपो) तप है ।

भावार्थ -दे आर्य । यदि भून स कई ममता हो
गया हो तो उसकी आलोचक के पास आलोचना करके
शिष्टा प्रहण करना, इस को प्रायश्चित्त तप कहने हैं । विनय
भावों मय अपना रद्द गहन बना लना, यह विनय तप
कहलाता है । वेदा धर्म क महत्त्व को समझकर वेदा धर्म
का सेवन करना वैवाण्ण्य नामक तप है इसी तरह शास्त्रों
का मनन पूर्वक पठन पाठन करना स्वाध्याय तप है । शास्त्रों
में बताये हुये तपों का बारीक दृष्टि से मनन पूर्वक विन-
यन करना ध्यान तप कहलाता है, और शरीर से सबथा
ममत्व को परित्याग कर देना यह छठ द्युरसंग तप है । यों
ये छ प्रकार के आभ्यन्तर तप हैं । इन मारह प्रकार के तप
में से, जितने भी बात सके, उतने प्रकार के तप करके पूव
सञ्चित करोहो जर्मों के कर्मों को यह और सहज ही में नष्ट
कर सकता है ।

मूलः—रूपेषु जो गिद्धिमुवेद तिव्य,

अकालिञ्च पावद् से विणास ।

रागाडरे से जद् वा पयगे,

आलोअलोले समुवेद् मच्चु ॥ १४ ॥

ध्याया -रूपेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रा,

अकालिक प्राप्नोति स विगशम् ।

रागातुर स यथा वा पतङ्गा,

आलोकलोल समुपति मृत्युम् ॥१४॥

अन्वयार्थ -हे हृदभूति ! (जो) जो प्राणी (रूपेषु) रूप देखने में (गिद्धि) गृद्ध को (उवेद्) प्राप्त होता है (से) वह (अकालिञ्च) असमय (तिव्व) शीघ्र ही (विणास) विनाश को (पावद्) पाता है (जद् वा) जैसे (आलो अलोले) देखने में लोलुप (से) वह (पयगे) पतग (रागा डरे) रागातुर (मच्चु) मृत्यु को (समुवेद्) प्राप्त होता है ।

भावार्थ:-हे गौतम ! जैसे देखने का लोलुपी पतग जलते हुए दीपक का लौ पर गिर कर अपनी जीवन लाला समाप्त कर देता है । वैसे ही जो आत्मा इन चक्षुओं के वश बर्ती हो निपय सेवन में अत्यन्त लोलुप हो जाती है, वह शीघ्र ही असमय में अपने प्राणों से हाथ धो बैठती है ।

मूल:-सदेसु जो गिद्धिमुवेद् तिव्व,

अकालिञ्च पावद् से विणासं ।

समाधौ हरिणमिव च मुद्गे,

हृदे शक्तिर्ये ममुने, मन्वु ॥१६॥

द १ - शब्देषु वा गतिमुक्तिं लीला,

अनामिषं प्र पाति स विनाशम् ।

समानुरो हरिणमृग इव मुग्ध ,

शब्देऽनृतः समुपैति मृत्युम् ॥१७॥

स पयाध - दे १३म् । । (२३) २५ (२४ ३०)

समानुर (मुद्ग) मुग्ध (गद्ग) श के शिखर ग (अतिसी)
अनामिष (हारिणमिष) हरिण (मनु) मृग्यु च (मनुसा)
प्रसक्तता है वा ही (वा) अ मत्ता (मद्ग) र र
वपय (गिद्ग) हृद्गे वा (मुग्ध) प्रसक्तता है (म)
व (अकालम) अवमय (निष) शिखर ही (मत्ता)
विनाश (व र) पाती है ।

भावार्थ है अथ । वाग म व गवनन, दिव शक्ति
त वा अनामिष शोचिन्व च शिखर में अनामिष ऐमा जा
दिग्गु दे यद, केनन लोचिन्व के वहरती हो कर अरत
शरण को चटना है । उसी तरह ओ अनामिष शोचिन्व के
शिव में ललुग हाती है, यद शिखर ही अमवय में मनु हा
प्रसक्त हो जाती है ।

मूल.-गधेषु चो गिद्धिमुनेश्च ति व,

अनामिष पावह से विनाश ।

रगाउरे ओमहिगघगिद्धे,
सपे विलाशो विव निकलमते ॥१६॥

दाश - गन्धेषु यो गृद्धिसुपति नोद्या,
अशालिक प्राप्नोति स विनाशम् ।

रगानुर औषधगघगृद्ध ,
सर्पो विलाशिर नि प्रामन् ॥१६॥

अथयार्थ - इ ६ द्रुमूति । (आशहि १४ गिद्धे) नाग
दमनी औषध की गधु, मरा (रगाउरे) रगानुर (गघे)
सर्प (विलाशो) विल से बाहर (निकलमते) निकलने पर
नष्ट हो जाता है (विव) ऐसी ही (ग) जीव (गधेषु)
गध में (गिद्ध) गृद्धिपने को (उवद्) प्राप्त होता है (से)
वद् (अशालिक) असमय ही में (तिब्ध) शीघ्र (विनाश)
विनाश को (पावद्) प्राप्त होता है ।

भावार्थ हे गौतम ! जैसे न गदमनी गध का लोलुप
ऐसा जो रगानुर सर्प है, वद् अपने बिल से बाहर निकला
पर गृधु को प्राप्त होता है । जैसे ही जो चार गध विषयक
पद्यों में जान हो जाता है वद् शीघ्र ही असमय में अपनी
आयु का अन्त कर बैठता है ।

मूलः-रसेसु जो गिद्धिसुवेद् तिब्ध,
अशालिञ्च पावद् से विणास

रागाडरे बटिसविभिन्नकए,

मच्छे जहा आभिसयोगगिद्ध ॥१७॥

दादा रक्षेपु यो गृद्धिगुपैति मीमा,

अकालिक प्राप्नोति न विनायम् ।

रागातुरो बटिशयिभिन्नकए,

मस्यो यथाऽऽभिसयोगगृद्ध ॥१७॥

अस्यवाधा-दे इत्यन्ति । (जहा) असे (आभिस
योगगिद्धे) मीमा मच्छे ५ इत्येव मे सातुः एवा (रागाडरे)
रागातुर (मच्छे) मच्छे (बटिसविभिन्नकए) मीमा वा
आटा लगा हुआ ऐसा आ तीरग बांटा उठ से विषहर गट
हो जाता है । ऐं ही (जो) जो आव (रोग) रस में
(गिद्धि) गृद्धिवन को (उवद) प्रप्त होता है, (चे) वह
(अकालिक) अकाल में ही (तिन्न) शत्रु (विनाश)
विनाश को (पावड) प्रप्त होता है ।

मावाध हे मोचन । निष्ठ प्रकार मीमा मच्छे के इत्येव
में सौलुः ओ रागातुर मच्छे है वह मच्छे वरवा को प्रप्त
होता है एते ही जो अरवा इष्ट रसेदिव के वरावर्तों हो कर
अत्र त गृद्धिवन को प्राप्त हाती है वह अकालिक ही में द्रव्य
आर भाव प्राणों से राहत हो जाता है ।

मूत्र - पासरन जो गिद्धिगुवद् तिन्न,

अकालिक पावड से विनाश ।

रागाउरे सीयजलावसन्ने,
गाहगहीए महिसे व रण्णे ॥१८॥

छाया स्पर्शेषु यो गृद्धिमुपैति तौवा
अकालिश्च प्राप्नाति स विनाशम् ।

रागातुरः शीतजलावसन्नः
प्राद्गृहीतो महिष इवारण्ये ॥१८॥

अ-वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (व) जैसे (रण्णे) अरण्य में (सीयजलावसन्ने) शीतजल में बैठे रहने का प्रलोभी एना जो (रागाउरे) रागातुर (महिसे) भैंसा (गाहगहीए) मगर के द्वारा पकड़ लेने पर मारा जाता है, ऐस ही (जो) मनुष्य (फासन्न) त्वचा विषयक विषय के (गिद्धि) गृद्धि पन को (उवद्) प्राप्त होता है (से) वह (अकालिश्च) अक्षमय ही में (तिष्ण) शीघ्र (विणाम) विनाश को (पावद्) पाता है ।

भावार्थ -जैसे घड़ी भारी नदी में त्वचेन्द्रिय के बराबरी होकर और शीतल जल में पैठकर आनन्द मनाने वाला वह रागातुर भैंसा मगर से जब घरा जाता है, तो सदा के लिए अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है । ऐस ही जो मनुष्य अपनी त्वचेन्द्रिय अन्य विषय में लोलुप होता है, वह शीघ्र ही अक्षमय में नाश को प्राप्त हो जाता है ।

हे गौतम ! जब इस प्रकार एक एक इन्द्रिय के बराबरी

होकर मा भे प्रणी अन्ता प्राणत कर कर्णे ह, तो भग
 दाही कथा कर्णे होत अे वीरो इन्द्रो को प ह्य उनके
 विवर मे ल तुा हो रह है ? अत वीरो इन्द्रो पर विवर
 ५१ करत ही मनु प माव वा पाम कर्णप र्थ र अेष्ट घन है ।

॥ इति पथदशोऽध्यायः ॥



निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय सोलहवा)

आवश्यक कृत्य

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः-समरेषु अगारेषु,
सधीषु य मदापहे ।
एगो एगित्थिए सद्धि,
एव चिट्टे ए सलवे ॥ १ ॥

छाया -समरेषु, अगारेषु,
सन्धिषु च मदापये ।
एक एकस्त्रिया सार्धे,
नैव तिष्ठेण मतोपेत् ॥ १ ॥

अ-चयाध -हे इन्द्रभूति ! (समरेषु) लुहार की शान्ता में (अगारेषु) घरों में (सधीषु) दो मकानों की बीच की सधि में (य) और (मदापहे) मोट पय में (एगो) अकेला (एगित्थिए) अकेली स्त्री के (सद्धि) साथ (एव)

म तो (बिट्टे) सदा ही रहे और (स) म (पहले) वहाँ
जाय करे ।

भाषार्थः हे गौतम ! तुम्हारे की शून्य शान्ता में, या
पके हुए लएकदो में, तथा दो मछनों के बाब में और जहाँ
अनको मार्ग थापर मिलत हो वहाँ अकेला पुरय अकेली
औरत के साथ म कभी सदा ही रहे और म कभी कई उस
से वातालाय ही करे । य सब स्वान उपलक्षण मात्र है
सात्यके यह है कि कहीं भी पुरय अकेली स्त्री के बात नच
न करे ।

मूल - सायु सुदभ गाविं, दित गोण ह्य गय ।

सद्विभ कलद जुद दूरभो परिवज्जय ॥२॥

टीका:-श्वान सुतिका गा दत्त गोण ह्य गजम् ।

सद्विभ कलद युद, दूरतः परिवजयेत ॥२॥

अ वयार्थः-हे इन्द्रभूति (सायु) श्वान (सुदभ)
प्रसूता (गाविं) यो (दित) मतवाला (गोण) बेल
(ह्य) घोडा (गय) हाथी, इन को और (सद्विभ) पालछों
के फीदाएवन (कलद) शक्युद की जगह (जुद) शक्य
युद की जगह आदि को (दूरभो) दूर ही से (परिवज्जय)
घोड देना चाहिए ।

भाषार्थः हे अर्भ ! जहाँ श्वान, प्रसूता माय, मतवाला
बेल, हाथा, पके लके हों या परस्पर लक रहे हों वहाँ श्वानी

जन को नहीं जाना चाहिए । इसी तरह जहाँ बालक खेल रहे हों या मनुष्यों में परस्पर वाक् युद्ध हो रहा हो, अथवा मम्र युद्ध हा रहा हो, ऐसी जगह पर जाना बुद्धिमानों के लिए दूर से ही त्याज्य है ।

मूल - एगया अचेलए होइ,
सचेने आवि एगया ।

एअ धम्महिय गुच्चा,
शाणी सो परिदेवए ॥ ३ ॥

छाय एकदाऽचेलको भवति,
सचेलको घाप्येकदा ।
एत धर्मे हित छात्वा,
ज्ञानी नो परिदेवेत ॥३॥

अन्ययार्थ - हे इन्द्रभूते ! (एगया) कभी (अचेलए) बम्र रहित (होइ) हो (एगया) कभी (सचेल-आवि) बम्र सहित हो, उस समय समभाव रखना (एअ) यह (धम्महिय) धर्म हितकारी (गुच्चा) जान कर (शाणी) ज्ञानी (ए) नहीं (परिदेवए) खेदित होता है

भावार्थ - हे गोतम ! कभी ओढ़ने को बम्र हो या न हो, उस अवस्था में समभाव से रहना, बस इसी धर्म को हितकारी जान कर योग्य बम्रों के होने पर अथवा बम्रों के बिलकुल अभाव में या फटे दूटे बम्रों के सद्भाव में ज्ञानी

जन सभी रोद नहीं पाते ।

मूल - अफोउग्रा परे गिबतु,
 न ठेसि पडिसजले ।
 सरिसो होइ बालाय,
 तम्हा गिबतु न सजखे ॥४॥

हाफा - आभोयेत् पर भिद्यु,
 न तस्मै प्रतिसज्यलेत् ।
 सदयो भवति बालाना,
 तस्माद् भिगुर्न सज्यलेत् ॥४॥

अन्वयार्थः-दे इन्द्रभूति । (परे) कोई दूसरा (गिबतु) भिद्यु का (अफोउग्रा) निराकार परे (ठेसि) उस पर वह (न) न (पडिसजले) क्रेष करे, क्योंकि क्रेष करने से (तम्हा) इगनिए (गिबतु) भिगु (न) न (सजखे) क्रेष करे ।

भावार्थः-दे आव । भिद्यु या साधु या शानी बही दे जो दूसरों के द्वारा निराकरण होन पर भी उन पर बन्ने में क्रेष नहीं करता । क्योंकि क्रेष करने से शानी जन भी मूल क सदय बहलता है । इसलिए बुद्धिमान भेठ मनुष्य को चादिए रि, वह क्रेष न करे ।

मूल - समण सजथ दत,
 दयेज्जा को वि करथइ ।

नस्य जीवस्य नासो चि,
एव पेहिज्ज सजए ॥५॥

छाया -अमण सयत दान्त,
इ यात् कोऽपि कुत्रचित् ।
नासित जीवस्य नाश इति,
एव प्रेक्षेत सयत ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (को वि) कोई भी मनुष्य (कत्पइ) कहीं पर (सयत) जीवों की रक्षा करने वाले (दत्त) इंद्रियों को दमन करने वाले (समण) तपस्वियों को (हणोज्जा) ताड़ना करे, उस समय (जावस्य) जीव का (नासो) नाश (नस्य) नहीं है (एव) इस प्रकार (सजए) वह तपस्वी (पेहिज्ज) विचार करे ।

भाषाार्थ -हे गौतम ! सम्पूर्ण जीवों की रक्षा करने वाले तथा इन्द्रिय और मन को जीतने वाले, ऐसे तपस्वी ज्ञानी मनों को कोई मूर्ख मनुष्य कहीं पर ताड़ना आदि करे तो उस समय वे ज्ञानी यों विचार करें कि जीव का तो नाश होता ही नहीं है । फिर किसी के ताड़ने पर व्यर्थ ही क्रोध क्यों करना चाहिए !

मूलः-वानाण्य अकाम तु, मरण्य असइ भवे ।

पडिआण्य सकाम तु, लकोसेण सद भवे ॥६॥

छाया -वालानामकाम तु, मरण्यमसकृद् भवेत् ।

परिदत्तानां स्वयाम तु, उत्तरायण सृष्ट् भवेत् ॥६७॥

अ-य-यार्थ - हे दद्रुगृहे । (बाताय) अज्ञानियों का (अशाम) निष्काम (मरण) मरण (तु) तो (अक्षर) बार बार (भव) हाता दे । (तु) और (परिदत्त) परिदत्तो का (स्वयाम) स्वयं नदित (मरण) मरण (उत्तरेण) उत्तर (एव) एक बार (भव) होता दे ।

भावार्थ:- हे शैतम ! दुष्कर्म करने वाले अज्ञानियों के तो बार बार अम्मना और मरना पड़ता है और जो ज्ञाना है ने अपना जीवन ज्ञान पूर्वक उदाहार मय बना कर मरते हैं वे एक ही बार में मुक्ति प्राप्त हो पहुँच आते हैं । दा शान अठ भव से तो उपादा अ म मरण करत ही नहीं दे ।

मूलः-सत्यमदण विषमवक्ष्य च,

जलण च जलपवेशो य ।

अथाचारमदसेवी,

जन्ममरणानि वधति ॥७॥

दामा - शत्रुमदण विषमवक्ष्य च,

जलण च जलपवेशो य ।

अनाचारमदसेवी च,

जन्ममरणानि वधते ॥७॥

अ-य-यार्थ - हे इन्द्रभूति ! जो आत्मघात के लिए (शत्रुमदण) शत्रु मरण करे, च) और (विषमवक्ष्य)

निप भक्षण करे (च) और (जलण) अग्नि में प्रवेश करे (जलपवेशो) जल में प्रवेश करे (य) और (अणायार भक्षेवी) नहीं सेवन करने योग्य सामग्री की इच्छा करे । ऐसा करने से (जन्मणमरण णि) अनेकों जन्म मरण हो ऐसा कर्म (बधति) बांधता है ।

भावार्थ - हे गौतम ! जो आत्म हत्या करने के लिए, तलवार, चरखी, कटारी, आदि शस्त्र का प्रयोग करे । या अफीम, सखिया मोरा, बछनाम, हिरकणी आदि का उपयोग करे, अथवा अग्नि में पड़ कर, या अग्नि में प्रवेश कर या कुआ, बावड़ी, नदी, तालाब में गिर कर मरे तो उसका यह मरण अज्ञान पुरुष है । इस प्रकार मरने से अनेक जन्म और मरणों की वृद्धि के सिवाय और कुछ नहीं होता है । और जो मर्यादा के विरुद्ध अपने जीवन को क्लृपित करने वाली सामग्री ही को प्राप्त करने के लिए रात दिन जुटा रहता है, एते पुरुष की आयुष्प पूण होने पर भी उसका मरण आत्म हरया के समान ही है ।

मूल - अह पचोर्द्धि ठाणोर्द्धि, जर्द्धि सिक्खा न लब्धोर्द्धि ।

थमा कोडा पमाण, रोगेणालस्तपण य ॥८॥

छाया - अथ पञ्चभि स्थाने, ये शिजा न सभ्यते ।

स्तम्भात् क्रोधात् प्रमादेन, रोगेणालस्येन च ॥९॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (अह) उसके बाद

(लेहिं) भिन (पवहिं) पाँच (ठलेहिं) कारणों से
 (भिपता) शिष्या (न) नही (अन्वह) पाता है, वे भी
 हैं । (भया) मान मे (काहा) क प ये (पमाएण) प्रमद
 म (रोणालक्षणएण) राम मे और आलव मे ।

भाषार्थः-हे आत्मा ! भिन पाँच कारणों से इस आत्मा
 को ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, वे क्यों है - जैसे जल मे, मान
 करने से, विद्ये हुए अस्मत् ज्ञान का स्वरूप नहीं कहे
 नवीन ज्ञान प्राप्त जनि से, रोणी अत्रहवा व और आलवपणे ।

मूल - अहं अहं टाणेहिं, भिनवासीले ति बुचवह ।

अहंसिसे सया दते, न म मन्नुदाहरे ॥ ६ ॥

तसाल न विसीले अ, १ सिमा अहने लुर ।

अण्डणे सचवरप, सिक्तासीले ति बुचवह ॥ १०

व्याख्य - अथापि स्थानैः, शिष्याः शील इत्युच्यते ।

अहसनशाल सदा दान्त, न च ममोदाहर उदा

नाशालो न विशालः, १ स्यादति लोलुप ।

अप्राधन सत्यरत्न, शिष्याः शील इत्युच्यते ॥ १० ॥

अ तथापि हे शब्दभूते ! (अह) अह (अहं)

आह (ठलेहिं) तथा कारणों से (सिक्तासीले) शिष्या

प्राप्त करने वाला होता है (नि) ऐडा (बुचवह) कहा है ।

(अहंसिसे) ईश्वर न हो (मया) हमेशा (दते) शिष्यों

को दमन करने वाला हो (य) और (मम्म) मग भावा
 (१) नहीं (उदाहरे) बोलता हो (असीले) सर्वथा शील
 रहित (न) नहीं हो (अ) और (विषाले) शील दूषित
 करने वाला (न) न हो (अइलोलुए) अति लोलुपी (न)
 न (सिम्मा) हो, (अक्कोइणे) क्राध न करने वाला हो
 (सच्चरण) सत्य में रत रहता हो, बह (सिक्खासीले)
 ज्ञान प्राप्त करने वाली होता है (ति) ऐसा (चुच्चइ)
 कहा है ।

भाषार्थ - हे सौतम ! अगर किसी को ज्ञान प्राप्त करने
 की इच्छा हो तो वह विशेष न हूँसे सदैव खेल नाटक
 दगैरह देखने आदि के विषयों से इन्द्रियों का दमन करता
 रहे, किसी की मार्मिक बात को प्रकट न करे, शीलमान् रह,
 अपना आचार विचार शुद्ध रखे, अति लोलुपता से सदा
 दूर रहे, क्रोध न करे, और सत्य का सदैव अनुयायी बना
 रहे, इन प्रकार रहने से ज्ञान की विशेष प्राप्ति होती है ।

मून -जे लक्खण सुविण पउजमाणे,
 निमित्तकौऊइलसपगादे ।

कुहेइविज्जासवदारजीवी,

न गच्छइ सरण तम्मि काले ॥११॥

छाशा. यो लक्षण स्वप्न प्रयुज्जान ,

निमित्तकौतूहलसप्रगाढ ।

कुटेष्टक विद्यान्त्रयद्वारजीर्वा,

न गच्छति शरण तस्मिन् काले ॥१॥

अर्थ-दे इन्द्रभूति । (जे) जो साधु हो कर (रात्रमण) छौ, पुरुष के हाथदि की रेखाओं के लक्षण और (सुविण) स्वप्न का फलादेश बतान का (पत्रमण) प्रयोग करत हौ एव (निमित्तकोऊ, लक्षणगाढ) भावी फल बताने तथा कौतूहल करने में या पुत्रोत्पत्ति क साधन बताने में आच्छ हो रहा हो इसी तरह (कुटेष्टविद्याप्रवचनद्वारजीर्वा) मन्त्र, तत्र, विद्या रूप आध्व क द्वारा जात्रा निवाह करता हो वह (तस्मिन् काल) कर्णोदय काल में (शरण) दुःख में बचने के लिए किसी का शरण (न) नहीं (गच्छति) पाता है ।

अर्थ-दे गौतम । जो सब प्रश्न छोड़ करके साधु हो गया ह मगर फिर भी वह आ पुरुषों क हाथ व पैरों की रेखाएँ एव तिल, मस आदि क भल घुरे फल बताता है, या स्वप्न के शुभाशुभ फलादेश को भी कहता है एव पुत्रोत्पत्ति आदि क साधन बताता है, इसी तरह मन्त्र तत्रादि विद्या रूपा आध्व के द्वारा जात्रा का निवाह करता है तो उस के अत्र समय में, जब वे कम फल स्वरूप में आकर लगे होंगे उस समय उसके कोई भी शरण नहीं होंगे, अर्थात् उस समय उसे दुःख से कोई भी नहीं बचा सकेगा ।

मूल - पठति नरए घोरै, जे नरा पावकारिणा ।

दिव्य च गद् गच्छति, चरिता धम्ममारियं ॥१२॥

ध्याया -पतन्ति नरके घरे, ये नरा पापकारिण ।

दिव्या च गतिं गच्छति चरित्या धर्ममार्यम् ॥१२॥

अ-वयाथ -दे इन्द्रभूत ! (जो) जो (नरा) मनुष्य
(पापकारिणो) पाप करने वाले हैं वे (घरे) महा भय
कर (नरए) नरक में (पडते) जा कर गिरते हैं । (च)
और (आरिय) शदावार हा प्रधान (धम्म) धर्म को
जो (चरिता) अगोकार करते हैं, वे मनुष्य (दिव्य) भेष्ट
(गद्) गति को (गच्छति) जाते हैं ।

भावार्थ -दे आर्य ! जो आत्माएँ मानव जन्म को पा
करके हिंसा, भ्रूँठ, चोरी, आदि दुष्कृत्य करती हैं वे पापा
हमाएँ महाभयकर जहाँ दुख हैं ऐसे नरक में जा गिरेंगी ।
और जिन आत्माओं ने अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य आदि
धर्म को अपने जीवन में पूरा समझ कर लिया है, वे आत्माएँ
यहाँ से मरने के पीछे जहाँ स्वर्गीय सुख अधिकता से होते
ह, ऐसे भेष्ट स्वर्ग में जाती ह ।

मूल:- बहुआगमनिय्याणा,

समाहितप्पायगा य गुणगही ।

एएण कारणेण,

अरिहा आलोयण सोड ॥ १३ ॥

छाया - बहुधागमविज्ञाना ,

समाध्युत्पादकाश्च गुणमादिणः ।

एतेन कारणेन,

अहां आलोचना थोतुम् ॥ १३ ॥

अथयार्थः-हृद्भूति ! (बहुधागम विज्ञाना) बहुत शास्त्रों का जानने वाला हो (समाधिउत्पायना) कहने वाले को समाधि उत्पन्न करने वाला हो (य) और (गुण मादी) गुणमाही हो (एण) इन (कारणेण) कारणों से (आलोचना) आलोचना को (सोऽ) धुनन के लिए (अरिहा) योग्य है ।

भावार्थ - हे आर्थ ! आ तारेक बात उसके सामने प्रकट हो जाय जो, कि बहुत शास्त्रों को जानता हो । आ प्रकाशक को सात्वता देने वाला हो, गुणमाही हो । उसी के सामने अपने हृदय की बात सुने दिन से काने में काई आगति नही है । क्योंकि इन बातों से युक्त मनुष्य ही आ लोचक के योग्य है ।

मूलः-भावणायोगसुद्ध्या, जले नौरिवाप्याता ।

नाथा व तीरसम्पन्ना, सर्वदुःखात् तिष्ठति ॥१४॥

छाया - भावना योगसुद्धात्मा जले नौरिवाप्याता ।

नौरिव तीरसम्पन्ना, सर्वदुःखात् मुक्त्यति ॥१४॥

अथयार्थ दे हृद्भूति । (भावणा) सुद्ध भावना

रूप (जोगबुद्ध्या) साग से शुद्ध हो रही है आत्मा जिनकी ऐसे पुरुष (जले छाया व) नौका के समान जन के ऊपर उठे हुए हैं । ऐसा (अहिया) कहा गया है । (नावा) जैसे नौका अनुकूल वायु से (तीरसम्पन्ना) तीर पर पहुँच जाती है । व । वस ही नौका स्व शुद्धात्मा के उपदेश से जाव (सध्वदुःखा) सर्व दुःख से (तउट्टइ) मुक्त हो जाते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! शुद्धभावना रूप ध्यान में हो रही है आत्मा निमल जिनकी, ऐसी शुद्धात्माएँ ससार रूप समुद्र में नौका के समान हैं । ऐसा ज्ञानिशा न कहा है । वे नौका के समान शुद्धात्माएँ आप स्वयं तार जाती हैं और उनके उपदेश से अन्य जीव भा चरित्रवान् हो कर सर्व दुःख रूप ससार समुद्र का अन्त करके परले पार पहुँच जाते हैं ।

मूलः-सब्रणे नाणे विण्णाणे, पच्चमत्ताणे य सज्जे ।

अणाइए तवे चेत्त वोदाणे, अकिरिया सिद्धी ॥ १५ ॥

छाया - श्रवण ज्ञान विज्ञान प्रत्याख्यान च समय ।

अनाश्रव तपश्चैत्र, इयवदानमक्रिया सिद्धि ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! ज्ञानी जनों के समय से (सबणे) धर्म ध्वण होता है । धर्म ध्वण से (नाणे) ज्ञान होता है । ज्ञान से (विण्णाणे) विज्ञान होता है । विज्ञान से (पच्चमत्ताण) दुराचार का त्याग होता है । (व)

और त्याग से (उत्तमे) समयमा जावन हाता है । तपमी जावन से (अष्टादश) अनाधरी होता है (चैव) और अनाधरी होने से (सव) तपवान् होता है । तपवान् होने से (वेदाणे) पूव सचित कर्मों का नाश होता है और कर्मों के नाश होने से (अकिरिया) क्रिया राहत होता है । और तावय क्रिया राहत होने से (सिद्धि) सिद्धि की प्राप्ति होती है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! तप्यक् ज्ञानियों की शक्ति से धर्म का प्रवण होता है, धर्म के प्रवण से ज्ञान की प्राप्ति होती है । ज्ञान से विशेष ज्ञान या विज्ञान होता है । विज्ञान से पापों के करने का प्रत्याख्यान होता है । प्रत्याख्यान से तपमी जीवन का प्राप्त होती है । तपमी जीवन से अनाधर्य अथवा आते हुए मशीन कर्मों की रोक हो जाती है । फिर अनाधर्य से जीव तपवान् बनता है । तपवान् होने से पूव सचित कर्मों का नाश हो जाता है । कर्मों के नाश हो जाने से सवय क्रिया का आगमन भी बंद हो जाता है । जब क्रिया मात्र रुक गयी तो फिर बस, जाव का मुक्ति ही मुक्ति है । यों, सदाशरी पुरुषों की शक्ति करन से उत्तरात्तर सद्गुण है । सद्गुण प्राप्त होते हैं । यहाँ तक कि तपमी मुक्ति का जाती है ।

मूनः-अवि से हासमासज, इता गुदीनि मलति ।

अन बालस्र सगेण, येर तद्दति अप्पणो ॥१६॥

छाया अपि स हास्यमासज्य, इ ता नन्दीति मन्यते ।
अल बालस्य सङ्गेन, वैर वधत आत्मन ॥१६॥

अ-वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (अवि) और जो कुसम करता है (से) वह (हानमामज्ज) हास्य आदि में आशक्त हो कर (इत्ता) प्राणियों की हिंसा ही में (नन्दीति) आनंद है ऐसा (मन्त्रति) मानता है । और उस (बालस्य) अज्ञानों की आत्मा का (वैर) कर्म वध (वड्डाते) बढ़ता है ।

भावार्थ - हे गौतम ! सत्पुरुषों की सगति करने से इस जाव को गुणों की प्राप्ति होती है । और जो हास्यादि में आसक्त होकर प्राणियों की हिंसा करके आनंद मानते हैं । ऐसे अज्ञानियों की सगति कभी मत करो । क्योंकि ऐसे दुराचारियों का ससग से शराब पीना, मांस खाना, हिंसा करना भूँठ खोलना चोरी करना, अविचार का सेवन करना आदि दुष्कर्म बढ़ जाते हैं । और उन दुष्कर्मों से आत्मा को महान् वध होता है । अतः मोक्षानिलाधियों को अज्ञानियों की सगति कभी भूल कर भी नहीं करनी चाहिए ।

मूल - आवन्सय अबस्स करणिज्ज,

धुवनिग्गहो विसाही अ ।

अज्जभयण्णक्खवग्गो,

नाथो आराहणा मग्गो ॥ १७ ॥

दाया आयश्चकमचदय करणौयम्,
ध्रुवनिप्रह विशोधितम् ।

अध्ययनपदकथनाः,

श्रेय आराधना मार्ग ॥ १७ ॥

अथपार्थ -दे इन्द्रभूति ! (ध्रुवनिप्रह) सर्व इन्द्रियों को निप्रह करत वाला (विशोदी अ) अत्मा को विशेष प्रकार से शाशित करने वाला (नाथो) स्वाम के हांटे के समान (आराहणा) जिससे वीतरा । के वचनों का पालन हो एना (मगो) मोक्ष मार्ग रूप (अजगयणद्वन्द्वगा) छ वग ' अध्ययन' है, पढ़ने के जिसके एना (आवहय) आवश्यक प्रतिकरण (अवस्य) अरय (कहणित्त) करन योग्य है ।

भाषाथ हे गौतम ! हमारा इन्द्रियों के विषय को रोकने वाला, और अपवेत्र आत्मा को भी निर्मल बनाने वाला, स्वामकारी, अपने जीवन को साधक करने वाला और मोक्ष मार्ग का प्र रोक रूप छः अध्ययन है पढ़ने के जिस में ऐसा आवश्यक सूत्र साधु साध्वी तथा गृहस्थों को सद्व प्राल काल और सायकाल दोनों समय अवश्य करना चाहिये । जिसके करने से अपने नियमों के बिहृद्ध दिन रात भर में भूल स किये हुए पापों का प्रायश्चित्त हा जाता है हे गौतम वह आवश्यक यों है ।

मूल.-सावज्जज्ञो गविरिई,

उक्तित्वा गुणवधो च पठिषती ।

स्त्रलिम्बस निन्दया,

वणतिगिच्छ गुणधारणा चैव ॥१८॥

ध्याया -सावधयोग धिरति ,

उत्तीत्तन गुणयतश्च प्रतिपत्ति ,

स्त्रलिम्बस्य निन्दना,

वणतिगिच्छा गुणधारणा चैव ॥ १८ ॥

अथ यथार्थ -हे इ इभूति । (सावज्जमोगविरह) सावध योग से निवृत्ति (उक्तित्वा) प्रभु का प्रार्थना (य) और (गुणवधो) गुणवान् गुरुओं को (पठिषति) विधि पूर्वक नमस्कार । (स्त्रलिम्बस) अपने दोषों का (निन्दना) निरोद्धण (वणतिगिच्छ) द्विद के समान लगे हुए दोषों का प्रायश्चित्त प्रदण करता हुआ निवृत्ति रूप शोषधि का सेवन करना (चैव) और (गुणधारणा) अपनी शक्ति के अनुसार त्याग रूप गुणों को धारण करना ।

आचार्यः-हे गौतम ! जहाँ हरी बनस्पति थोड़ियाँ कुथुए बहुत ही छोटे जाव बगैरह न हो ऐसे एकांत स्थान पर कुछ भा पाप नहीं करना, ऐसा निश्चय करके, कुछ समय के लिए अपने चित्त को स्थिर कर लेना, यह आवश्यक का प्रथम अध्ययन हुआ । फिर प्रभु की प्रार्थना करना, यह द्वितीय अध्ययन है । उसके बाद गुणवान् गुरुओं को विधि पूर्वक

हृदय से नमस्कार करना यह सागरा अभ्यसन है । दिवे हुए पाशो की ब्यालोचना करना चौदा अभ्यसन और उषका प्रद यित प्रदृष्ट करना पौचषा अभ्यसन और दृष्टे चार यथा शक्ये त्याग की वृद्धि करे । इस तरह पञ्चपर्यक हमेशा दोनों समन करता रहे । यह षण्णु और परशो का निमम है ।

मूल - जो समो सव्वभूरसु, तसेसु यावोसु य ।

तरस सामाद्य होइ, इइ केवलिभासिय ॥१६॥

दाया:-या समः सर्वभूतेषु, प्रसेषु रथायरेषु च ।

तस्य सामायिक भवति इति केवलिभाषितम् ॥१६॥

अथपार्थ - हे इन्द्रभूनि ! (जो) जो मजुष्य (तथेसु) प्रथ (य) और (यावोसु) रथावर (सव्वभूरसु) समस्त प्राणियों पर (समो) समभाव रखने व ला है । (सस्य) उसके (सामाद्य) सामयिक (होइ) होती है (इइ) ऐसा (केवली) कीतराग ने (भासिय) कहा है ।

आथाथ:-इ गौतम । त्रिस मजुष्य का हरावनस्थति आदि जीवों पर तथा द्रिहान फिरते प्राणी मात्र के ऊपर सम भाव है अथात् सूक्ष्म चूभान में अपने को कष्ट होता है । ऐसे ही कष्ट दुष्टों के लिए भी समगता है । यत्र, उनी की सा मायिक होती है ऐसा कीतरागों ने प्रातिव दन किया है । इस तरह सामायिक करने वाला मोक्ष का पाधिक पा जाता है ।

मूल.-तिरिण्यसु सहस्ता सच सयाइ,

तेहृत्तरि च ऊसासा ।

एस मुहृत्तो दिष्टो,

सव्वेहिं अणतनाणीहिं ॥२०॥

ध्याया -श्रीणि सहस्राणि सप्तशतानि,

त्रिसप्ततिश्च उच्छ्वासा ।

एषो मुहृत्ता दृष्ट,

सर्वरत्न ज्ञानिभिः । २०॥

अ-वयवार्थः-हे इन्द्रभूति ! (त्रिणिण्यसहस्रा) तीन ह्रस्व (सप्तसयाद्) सातसौ (च) और (तेहृत्तरि) तिहृत्तर (ऊसासा) उच्छ्वासों का (एस) यह (मुहृत्ते) मुहृत्त होता है । ऐसा (सव्वेहिं) सभी (अणतनाणीहिं) अनन्त ज्ञानियों के द्वारा (दिष्टो) देखा गया है ।

भावार्थः-हे गौतम ! ३७७, तीन ह्रस्व सात सौ तिहृत्तर उच्छ्वासों का समूह एक मुहृत्ता होता है । ऐसा सभी अनन्त ज्ञानियों ने कहा है ।

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय सत्रहवा)

नर्कस्वर्ग निरूपण

॥ श्रीमत्पापुषाज ॥

गूल -नेरइया सतविदा, पुडवीसु सतसु भये ।

रयणामासफराभा, शालुयाभा य आदिभा ॥१॥

पकाभा धूमामा, तमा तमतमा सदा ।

इइ नेरइया एए, सतदा परिकिचिया ॥ २ ॥

वामा -नेरयिकाः सतयिधा , पृथिवीषु सतसु भयेषु ।

रराभा शकैराभा,शालुकाभा च आख्याता ॥१॥

पडाभा धूमामा, तम तमस्तम तथा ।

इति नेरयिका एते, सतधा परिकीर्तिताः ॥२॥

अ-वयवार्थ -दे इन्द्रभूते । (नेरइया) गरुड (वराह)

सात अलग अलग (पुडवीसु) पृथ्वी मे (भये) होन च

(सतविदा) सात प्रकार क (आदिभा) कहा गया है ।

(रयणाभासकराभा) रत्न प्रभा, शंकराप्रभा (५) और (बालुयाभा) बालु प्रभा (पकाभा) पक प्रभा (धूमाभा) धूमप्रभा (तमा) तम प्रभा (तदा) वैसे ही तथा (तमत्तमा) तमत्तमा प्रभा (इह) इस प्रकार (एए) ये (नेरइया) नरक (सतदा) सात प्रकार के (परिकिरिआ) कहे गये हैं ।

भावार्थ -हे गौतम ! एक से एक भिन्न होने से नरक को ज्ञानी जनों ने सात प्रकार का कहा है । वे इस प्रकार हैं । (१) बेदुर्य रत्न के समान है प्रभा जिसकी उसको रत्न प्रभा नाम से पहला नरक कहा है । (२) इमी तरह पापाण, बूल, बर्दम, धूम के समान है प्रभा जिसकी उसको यथाक्रम शंकरा प्रभा (३) बालुका प्रभा (४) पक प्रभा और (५) धूम प्रभा कहते हैं । और जहाँ अंधकार है उसको (६) तम प्रभा कहते हैं । और जहाँ विशेष अंधकार है उसको (७) तमत्तमा प्रभा मानवा नरक कहते हैं ।

मूल -जे केइ बाला इह जीवियट्टी,

पावाइ कम्माइ करति रुदा ।

ते घोररूवे तमिसधयारे,

तिब्बाभित्तवे नरए पडति ॥ ३ ॥

छाया -ये केऽपि बाला इह जिवितार्थिन ,

पापानि कर्माणि कुर्वति रुद्रा ।

ते घ रूपा तमिस्राभ्यकारे,

सांभ्राभिताये मरके पतन्ति ॥ ३ ॥

अथपार्थ - दे इन्द्रभूति ! (१६) इय संभार में (३)
 को (३६) दिनक (अविद्युत्) पारमय अं इन क अर्थ
 (भाषा) अज्ञानी लोग (६१) रौद्र (वा ६) पार
 (इन्द्राह) कर्मों को (करने) करन है । (ते) वे (पार
 रूप) अत्यन्त भयानक और (तमिस्राभ्यकारे) अत्यन्त अंध
 कार युक्त, एव (विध्यागिताव) हीन है तादृश विषयों ऐसे
 (मरए) मरक में (पतन्ति) जा गिरते हैं ।

भाषार्थः दे गौतम ! इय संभार में अनेक ऐसे जीव
 हैं, जिसे अपने पारमय आवरण के लिए महारहिता अर्थात्
 पार कर्म करते हैं । इत्यादिपुं वे महार भयानक और अत्यन्त
 अंधकार युक्त तीव्र अन्तःप दायक मरक में जा गिरते हैं
 और वहाँ तक अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करते रहते हैं ।

मूल - तित्य तसे पाणिणोः यावो या,

जे हिंसती आयसुह पदुचव ।

जे लूमए होइ अदचहारी,

ए सिबलती सेयविस्त किंवि ॥४॥

भाव :- तीव्र ब्रह्मान् प्राणिनः स्थापरान् वा,
 यो दिनस्ति आरमसुप प्रतीत्य ।
 यो लूपको भयन्ति अदचहारी,

न शिस्तते सेवनीयस्य किञ्चित् ॥ ४ ॥

अन्यथाथ - हे इन्द्रभूति ! (जे) जो (तसे) प्रस
(या) और (याबरे) स्यावर (पाणियो) प्राणियों का
(तिव्व) तीव्रता से (हिंसता) हिंसा करता है, और
(आयसुह) आत्म सुख के (पडुच्च) लिए (जे) जो
मनुष्य (लूमए) प्राणियों का उपमर्दक (होइ) होता है ।
एव (अदत्तदारी) नहीं दी हुई वस्तुओं का हरण करने
वाला (किञ्चि) थोड़ा सा भी (सेयविस्स) अगोकार करने
योग्य व्रत के पालन का (ण) नहीं (धियस्सती) अभ्यास
करता है । वह नरक में जाकर दुख उठता है ।

भावार्थ - हे गौतम ! जो मनुष्य, हलन चलन करने
वाले अथात् प्रस तथा स्वापर जवों की निर्दयता पूर्वक
हिंसा करता है । और जो शारीरिक पौद्रलिक सुखा के लिए
जीवों का उपमदन करता है । एव दूमरों की चार्जे हरण
करने ही में अपने जीवन की सफलता समझता है । और
किसी भा व्रत को अगोकार नहीं करता, वह यहा से मर
कर नरक में जाता है । और स्व कृत कर्मों के अनुसार वहां
नाजा भाति के दुस्व भागता है ।

मूलः-धिदति चालस्स खुरेण नक्,

उट्टे वि धिदति दुवेवि करणे ।

जि-ग विणिकस्स विहत्थिमिच्च,

गलति ते सोणिश्रपूयमस,
पञ्जोइया खारपइद्धियगा ॥ ६ ॥

धारा -ते तिप्पमाना तलसम्पुटइध,
रात्रि दया तत्र स्तनति घाला ।

गलति ते शोणितपूतमास,
प्रद्योनिता चार प्रदिग्घागा ॥ ६ ॥

अवयार्थ -हे इद्रमृति ! (तत्प) वहाँ नरक में (ते) वे (तिप्पमाणा) रुधिर मारते हुए (घाला) अज्ञानी (राइ दिथ) रात दिन (तलसम्पुड) पवन से प्रेरित ताल रुद्धों के सूखे पत्तों के शब्द के (ध्व) समान (यणति) आकदन का शब्द करते हैं । (ते) वे नारकाय जीव (पञ्जाइया) अग्नि से प्रज्वलित (खारपइद्धियगा) चार से जलाये हुए अग जिससे (सोणिश्रपूयमस) रुधिर, रमी और मास (गलति) मारते रहते हैं ।

भावार्थ हे गौतम ! नरक में गये हुए उन हिंसादि महान् आरम्भ के करने वाले नारकीय जीवों के नाक, कान आदि काटलेने से रुधिर बहता रहता है और वे रात दिन बड़े आकदन स्वर से रोते हैं । और उस छेदे हुए अग को अग्नि से जलाते हैं । फिर उसके ऊपर लवणादिक चार को द्रिट-कते ह । जिस से और भी विशप रुधिर, पूय और मास मारता रहता है ।

गुन -रटिरे पुणो वचनगमुदिगभगे,

मिन्नुणमगे परिवणवठा ।

पयति य येरइए पुनते,

सजीवमच्छे व अयोक्खञ्जे ॥ ७ ॥ ३

दादा -रटिरे पुमो पव ममुञ्जिताज्ञान्,

मिमासमाज्ञान् परिवसयत्ता ।

पयति ीगविण्णन् रुदुरत्त,

सजीवमाख्यागिवायः वटांटे ॥ ७ ॥

अथार्थ -दे इन्द्रमूर्ति । (पुणो) गिर (वचन)

दुग्ध मल से (उगुरिच्छेन) मिगठा हुआ है अथ मिगठा

और (मिन्नुणमगे) गिर अिनका येग हुआ है ऐसे मारकीय

औरों का गुण निहानते है और (गटिरे) उधी गुन के तपे

हुए कषादे में उधे दाल कर (परिवणवत्ता) इधर उधर

दिगाते हुए परमाधामी (पयति) पछने है । तब (येर

इए) मारकीय आव (अयोक्खञ्जे) लोद के कषादे में

(सजीव मच्छेन) सजीव मच्छी को तरह (पुनते) लव

पकाते हैं ।

अथार्थ है गौतम ! अिन अरमाओं न करने शरीर को

आशाम पहुँचान के निरु हर तरह से करनेको प्रहार के औरो

की दिगा की है, व अरमाएँ मरुट में आ कर अर उतरत

होती है, तब परमाधामी देव दुग्ध गुण वापुओं से लिगट

हुए उन नारकाय आत्माओं के शिर छेदन कर उन्हें के शरीर से मूल निकाल उन्हें तप्त कड़ाहे में डालते हैं । और उन्हें खूब ही उबाल करके जलाते हैं । अगुर कुमारों के ऐसा करने पर वे नारकीय आत्माएँ उस तपे हुए कड़ाहे में तप्त तपे पर डाली हुई अजीब मछली की तरह तड़फड़ाती हैं ।

मूल - नो चैव ते तत्र मसीभवति,

ण मिज्जती तिव्वाभिवेयणाए ।

तमाणुभाग अणुवेदयता,

दुक्खति दुक्खी इह दुक्खेण ॥८॥

छाया - नो चैव ते तत्र मसीभवति,

१ प्रियते तीव्राभीवेदनाभिः ।

तदनुभागमनुवेदयन्तः,

दु खयति दु खिन इह दुष्टतेन ॥८॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (तत्र) नरक में (ते) वे नारकीय जीव पकाने से (नो चैव) नहीं (मसी भवति) भस्म होते हैं । और (तिव्वाभिवेयणाए) तीव्र वेदना के (न) नहीं (मिज्जती) मरते हैं । (दुक्खी) वे दुखी जीव (दुक्खेण) अपने किये हुए दुष्कर्मों के द्वारा (तमाणुभाग) उसके फल को (अणुवेदयता) भोगते हुए (दुक्खति) कष्ट उठाते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! नारकीय जीव उन परमाधम

दक्षिण के द्वारा पश्चिमे ऊपर पर न ही भाग्य हुए ही होते है
 कारण उस मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु
 ही मे मरते है । वि-नु करके विवे हुए हुए मनु के मनु के
 २ मने हुए मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु ।

मूल - अक्षयानिनिमित्तमेव,

नरिय सुह दुवममेव अणुबद्ध ।

मरण नैरुपाय,

अक्षयानिनिमित्तमेव ॥ ६ ॥

प्रायः आक्षयानिनिमित्तमेव,

नरिय सुह दुवममेव अणुबद्धम् ।

मरण नैरुपाय,

अक्षयानिनिमित्तमेव ॥ ६ ॥

अक्षयार्थः-हे इन्द्रभूति ! (अक्षयानिनि) मनु दिव
 (पश्चिम) मरते हुए (नैरुपाय) मरण के बिना
 को (मरण) मरण में (अक्षय) जीव (निमित्तमेव)
 मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु
 मनु है । मरण के (दुवममेव) हुए ही (अणुबद्ध) अणु
 बद्ध हो रहा है ।

मायार्थ - हे गौतम ! मरण मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु मनु
 मनु के एक पल भर भी मरण नहीं है । एक हुए के बाद
 मरण हुए उनके लिए तैयार रहता है ।

मूल - अद्भीय अद्उण्ड,

अद्तण्डा अद्क्लुडा ।

अद्भय च नरए नेरयाण,

दुक्खसयाइ आवेस्साम ॥ १० ॥

छाया - अतिशीतम् अत्युष्ण,

अतितृपाऽति क्षुधा ।

अतिभय च नरके नैरयिकाणाम् ,

दुःखशतान्यविधामम् ॥ १० ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (नरए) नरक में (नेर याण) नारकीय जीवों का (अद्भीय) अति शीत (अद्उण्ड) अति उष्ण (अद्तण्डा) अति तृष्णा (अद्क्लुडा) अति भूख (च) और (अद्भय) अति भय (दुक्खसयाइ) सन्तुष्टों दुःख (आवेस्साम) विधाम रहित भोगना पड़ता है ।

माधाय - हे गौतम ! नरक में रहे हुए जीवों को अत्यन्त ठण्ड ठण्ड भूख तृष्णा और भय आदि सैकड़ों दुःख एक के बाद एक लगातार रूप से वृत्त कर्मों के फल रूप में भोगने पड़ते हैं ।

मूल - जं जारिस पुब्बमकासि कम्म,

एतमेव आगच्छति सपरए ।

एगतदुक्ख भवमज्जणित्ता,

वेदति दुषधी तमणुतदुषध ॥ ११ ॥

धाया - यस्याद्यश पूवमशार्थीम् कर्म,

तदेयागच्छति स्वपराये ।

एषा तदुषध मय मज्जयित्वा,

वेदयति तदुग्निं स्तवम तदुग्निम् ॥ ११ ॥

अ-यथा-र्था-हे इ-भूति । (ज) आ (दम्) दम्
(जाति) अये (पुर्व) पूव भव मे आद न (अशानि)
किय है (तमेव) वेधे ही, उषके फल (अयाए) अया
ये (आगच्छति) प्राप्त होता है । (एषादुषध) केवल दुषध
दे अिधमें ऐसे नारकीय (मय) अ म को (मज्जयित्वा)
अपारन करके (दुषधी) वे दुषधी जीव (त) उष (अणुत
दुषध) अणुत दुषध का (वेदति) भोगते है ।

मायार्थ - हे गौतम । इग आरमा ने जैसे पुण्य पाप
दिय है उषी क अणुतार आम अमातर रूप अणुतार में उषे
सुध दुषध मिलते रहते है । यदि उषी विशेष पाप दिये है
तो अही पीर कष्ट होते है ऐसे नारकीय अम अयादन करके
बह उष नरक में आ पकता है और अनन्त दुखों को अहता
रहती है ।

मूलः-जे पावकम्मेदि धण मणुसा,

समाययती अमद् गहाय ।

पहाय ते पासपयट्टिए नरे,

वेराणुबद्धा नरय उर्विति ॥१२॥

छाया - ये पापकर्म भिर्धन मनुष्या ।

समार्जयति अमतिं गृहीत्वा ।

प्रदाय ते पाशप्रवृत्ता नराः,

वैरानुबद्धा नरकमुपयाति ॥१२॥

अन्वयार्थ इ इन्द्रभूति ! (जे) जो (मणुष्या) मनुष्य (अमद्) कुपति को (गृहाय) ग्रहण करके (पावकम्भेदि) पाप कर्म के द्वारा (धन) धन को (समाययती) उपार्जन करते हैं, (ते) वे (नरे) मनुष्य (पाशप्रवृत्ति) कुट्टु भियों के मोह में फँसे हुए होते हैं, वे (प्रदाय) उन्हें छोड़ कर (वेराणुबद्धा) पाप के अनुबंध करने वाले (नरय) नरक में जा कर (उर्विति) उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! जो मनुष्य पाप बुद्धि से कुट्टु भियों के भरण पोषण रूप मोह पाश में फँसता हुआ, गराम लोगों को ठग कर अन्याय से धन पैदा करता है, वह मनुष्य धन और कुट्टुभ को यही छोड़ कर और जा पाप किये हैं उनको अपना साथी बना कर नरक में उत्पन्न होता है ।

मूलः—एशाणि सोच्चा शुराणाणि धीरे,

न हिंसए किंचण स्वलोए ।

एगतदिष्टी अपरिभगहे उ,

बुजिभज्ज लोयस्स वम न गच्छे ॥१३॥

दाया -पतान् ध्रुवा नरकान् घोर,

नदिस्यात् कञ्चन सघलोके ।

एका त दृष्टिरपरिमदस्तु,

सुध्या लोकस्य घश ७ गच्छेत् ॥३॥

अ-घयाथ -हे इन्द्रभूति । (एतदिदं) केवल
सम्यक्त्व का है दृष्टि भिन्की भार (अपरिमदस्तु) समत्व
भाव रहित एष जो (घोर) बुद्धिमान् मनुष्य है ये (एयाणि)
इन (एषाणि) नरक के दुखों को (सोच्या) सुन कर
(सम्बलाए) सम्पूर्ण लोक में (किंचित्) किसी भी प्रकार
के जीवों का (न) नहीं (विमद) हिंसा करे (लोयस्य) कर्म
स्व लोक को (सुजिह्वत्र) जान कर (वग) उलकी आ
र्थात्ता में (७) नहीं (गच्छ) भाव ।

भाषाथ -ह मातम । जितने सम्यक्त्व को प्राप्त कर
लिया है और समत्व से विमुक्त हो रहा है ऐसा बुद्धिमान्
तो इन प्रकार के नारकाय दुखों को एक मात्र सुन कर किसी
भी प्रकार की कोई हिंसा नहीं करेगा । यही नहीं वह कोष
मान, माया, लोभ तथा अहंकार इन लोक के स्वल्प को
समग कर और उसके अधान हो कर कभी भी कर्मों के
बन्धनों को प्राप्त न करेगा । यह स्वर्ग में जाकर देवता हागा ।
देवता चार प्रकार के हैं । वे या है —

मूल* - देवा चतविन्हा सुता,

ते मे किधयश्चो सुथ ।

भोमेउज वाणम तर,

जोइस वेमाणिया तहा ॥१४॥

आषा - देवाश्चतुर्विधा उक्ता ,

ताम्भे कीर्तयत शृणु ।

भोमेयः व्यन्तरा

ज्योतिष्का वमानिकास्तथा ॥१५॥

अन्वयार्थ हे इन्द्रभूति । (देवा) देवता (चतुर्विधा) चार प्रकार के (युता) बद्ध ह । (त) वे (मे) मेरे द्वारा (विचारयथा) कहे हुए तू (शृणु) श्रवण कर (भोमेउज वाणमतर) भवनपति, वाणम्यन्तर (तहा) तथा (जोइस वेमाणिया) ज्योतिषी और वैमानिक देव ।

भाषार्थ - हे शैतम ! दस चार प्रकार के दात ह । उन्हें तू सुन । (१) भवनपति (२) वाणम्यन्तर (३) ज्योतिषी और (४) वैमानिक । भवनपति इस पृथ्वी से १०० योजन नीचे की ओर रहते ह । वाणम्यन्तर १० योजन नीचे रहते हैं । ज्योतिषी देव ७६० योजन इस पृथ्वी से ऊपर की ओर रहते हैं । परन्तु वैमानिक देव तो इन ज्योतिषी देवों से भी अधिक योजन ऊपर रहते हैं ।

मूलः - सहा उ भवणवासी,

अट्टहा वणचारिणो ।

पञ्चविंश जोइसिया,
दुविंश वैमाणिया तदा ॥१५॥

पञ्चा - दशधा तु भवनवासिना,
अष्टधा वन चारिण ।

सञ्चविंश ज्योतिषा,
द्विविधा वैमानिकास्तथा ॥१६॥

अ वयाथ दे दशभूति ! (भवणवती) भवनपति
देव (दण्डा) दश प्रकार के होते हैं । और (कणचारिण)
वाणप्यतर (अट्टहा) आठ प्रकार के हैं । (जाइसिया)
ज्योतिषी (पञ्चविंश) पाँच प्रकार के होते हैं । (तदा)
वसे ही (वैमाणिया) वैमानिक (दुविंश) दो प्रकार के हैं ।

भावार्थः-दे गौतम ! भवनपति देव दश प्रकार के हैं ।
वाणप्यतर आठ प्रकार के हैं और ज्योतिषी पाँच प्रकार के
हैं । वैसे ही वैमानिक देव भी दो प्रकार के हैं । अब भवनपति
के दश भेद कहत है ।

मूल - असुरा नामपुवण्णा,
विज्जू अग्गी वियादिया ।

दीवोददि दिसा वाया,
थणिया भवणवासियो ॥ १६ ॥

दाया - असुरा नामः सुवर्णा

विद्युतोऽपयो व्याख्याता ।

द्वीपा उदधयो दिशो यापय ,

स्तनिता भवतघासिन ॥ १६ ॥

अन्वयार्थं हे इन्द्रभूत ! (अमुरा) अमुर कुमार (तामसुरयणा) ताम कुमार, सुवर्ण कुमार (विज्जू) विद्युत कुमार (अग्ना) अमि कुमार (दावोदिदि) द्वीपकुमार उदधि कुमार (दिशा) दिक्कुमार (वाया) वायुकुमार तथा (यणिया) स्तनित कुमार । इम प्रकार (भवणवाशिरो) भवनवासी देव (रियाहिवा) कह गये हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! असुर कुमार, तामकुमार, सुवर्ण कुमार, विद्युत कुमार अमि कुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार दिक्कुमार, पवाकुमार आर स्तनितकुमार यो ज्ञानियों द्वारा दश प्रकार के भवनपति देव कहे गये हैं । अब आगे आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव यो है ।

मूलः-पिसाय मूय जवला य,

खलसा किलरा किंपुरिसा ।

महारगा य गधन्वा,

अद्धविदा वाणमन्तरा ॥ १७ ॥

ध्याय -पिशाचा भूता यज्ञाश्च,

राक्षसा, किलराः किं पुरुषाः ।

महोरगाथ ग-घथा ,

अष्टविधा वय तदा ॥ १७ ॥

अष्टविधा - हे दशभूते । (बाणमतग) बाणव्य तर
 वष (अष्टविहा) आठ प्रकार के हाते हैं । जैसे (विशाच)
 विशाच (भूय) भूत (जपसा) मघ (य) और (रक्सासा)
 राघस (य) और (किप्रगा) किप्र (किपुरसा) किपुर्य
 (महोरगा) महोरग (य) आर (गधवा) गधव ।

माघाथ - हे गौतम । बाणव्य तर ये आठ प्रकार के
 हैं । जैसे (१) विशाच (२) भूत (३) मघ (४)
 राघस (५) किप्र (६) किपुर्य (७) महोरग और
 (८) गधव । ज्योतिषी देवों के पाँच भेद यों हैं —

मूल-च दा सुरा य श्रवणा,

गदा तदा ।

ठिया विच

५

१८ ॥

देव (पचहा) पांच प्रकार के हैं । (चन्द्र) चन्द्र (सूर्य)
सूर्य (य) और (नक्षत्र) नक्षत्र (गदा) ग्रह (तदा)
तथा (तारागण) तारागण । जो (ठिया) डाईद्वीप के
बाहर स्थित हैं । (चन्द्र) और डाईद्वीप के भीतर (विचारिणो)
चलते फिरते हैं ।

भावार्थ - हे गौतम ! ज्योतिषी देव पांच प्रकार के हैं ।

(१) चन्द्र (२) सूर्य (३) ग्रह (४) नक्षत्र और
(५) तारागण । ये दस डाईद्वीप के बाहर तो स्थित रहने
वाले हैं और उस के भीतर चलते फिरते हैं । वैमानिक देवों
के भेद यों हैं —

मूलः-वैमाणिया उ जे देवा,

दुविहा ते वियाहिया ।

कप्पोवगा य बोद्धया,

कप्पाहिया तद्देव य ॥ १६ ॥

छा॥ वैमानिकास्तु ये देवा,

द्विविधान्ते व्याख्याता ।

कटपोपगाश्च बोद्धव्या,

कटपातीतास्तथैव च ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति ! (जे) जो (देवा) देव
(वैमाणिया उ) वैमानिक हैं । (ते) वे (दुविहा) दो प्रकार
के (वियाहिया) कहे गये हैं । एक तो (कप्पोवगा) कल्पो

रम्य (य) और (लक्ष्मण) मैं ही (कृष्णाद्या) कर्ता
तात (बोधया) अना ।

भावार्थ - हे गौतम ! धार्मिक देव दो प्रकार के हैं ।
एक तो कर्पोत्पन्न और दूसरे कर्त्तव्य । कर्त्तव्य से ऊपर
के देव कर्त्तव्यता से रहता है । और जो कर्त्तव्य है वे बारह
प्रकार के हैं । वे यों हैं —

मूनः-कर्पोवगा बारहदा, सोद्वन्मीसण्णया तदा ।

सण्णकुमारमादि दा, बम्मलोगा य लतगा ॥२०॥

महासुक्का सदस्सारा, आण्णया पाण्णया तदा ।

आरणा अच्चुया चेत्त, इह कर्पोवगा सुरा ॥२१॥

धारा - कर्पोवगा द्वादशधा, सौधर्मे शानतास्तथा ।

सण्णकुमारा मादिन्द्रा, महालोकान्णया तदा २०

महासुक्का सदस्साराः आनताः प्राणतास्तथा ।

आरणा अच्चुनार्थध, इति कर्पोवगा सुरा २१

भावार्थ - हे श्रुति ! (कर्पोवगा) कर्पोत्पन्न
देव (बारहदा) बारह प्रकार के हैं (सोद्वन्मीसण्णया)
सुधर्म, ईशान (तदा) तथा (सण्णकुमार) सनत्कुमार
(मादिन्द्रा) महाइन्द्र (बम्मलोगा) ब्रह्म (५) और (लतगा)
लोक (महासुक्का) महासुक (सदस्सारा) सदशर (आण्ण
या) आणत (पाण्णया) प्राणत (तदा) तथा (आरणा)

आरण (चव) और (अच्युता) अन्युत, देव लोक (इह) ये हैं । और इन्हों के नामों पर स (कपोवणा) कपोवण (सुरा) देवों के नाम भा ह ।

भावार्थ - हे गौतम ! कटपोत्वज देवों के बारह भेद हैं और वे यों हैं - (१) सुधर्म (२) इशान (३) सनत कुमार (४) महेंद्र (५) ब्रह्म (६) लातक (७) महा शुक्र (८) सहस्रार (९) आणत (१०) प्राणत (११) आरण और (१२) अच्युत ये देवलोक हैं । इन स्वर्गों के नामों पर से ही इन में रहने वाले इन्द्रों के भी नाम हैं । ब्रह्मसात देवों के नाम यों हैं :-

मूल - कर्पाईया उ जे दया, दुविहा ने वियाहिया ।

गोवेज्जाणुतरा नेव, गोविज्जानवविहा तहिं । २२ ।

छाया कटपातीनास्तु य देवा द्विविध्नास्तेव्याख्याता
प्रेयका अनुत्तराश्चैव, प्रैयका नवविधास्तत्र २२

अर्थ - हे इन्द्रभूति ! (जे) जा (कर्पाद्याउ) ब्रह्मसात देव ह (त) व (दुविहा) दो प्रकार क (वियाहिया) कह गये ह । (गोविज्ज) गोवेयक (नेव) और (अणुतरा) अनुत्तर (तहिं) उष में (गोविज्ज) गोवेयक (नवविहा) नव प्रकार के ह ।

भावार्थ - हे गौतम ! कटपातीत देव दो प्रकार के ह । एक तो गोवेयक और दूसरे अणुत्तर विमानिक । उन में भी

मन्यन्ते नो प्रचारं चैव अगुत्तरं पांच प्रचारं चैव ।

मूल - हेट्टिमा हेट्टिमा चैव,

हेट्टिमा मज्झिमा तदा ।

हेट्टिमा उवरिमा चैव,

मज्झिमा हेट्टिमा तदा ॥२३॥

मज्झिमा मज्झिमा चैव,

मज्झिमा उवरिमा तदा ।

उवरिमा हेट्टिमा चैव,

उवरिमा मज्झिमा तदा ॥२४॥

उवरिमा उवग्निमा चैव,

इयं गोविज्जगा सुम ।

विज्जया वेत्तयता य,

जयता अणराजिया ॥२५॥

सव्यत्थसिद्धगा चैव,

एवशाणुतरा सुम ।

इह वेमाणिया,

एवण्णो गहा एवमायञ्चो ॥ २६ ॥

दाया अधस्तनाधस्तनाश्चैव,

अधस्तनामभ्यमास्तथा ।

अधस्तनोपरितनाश्चैव,

मध्यमाऽधस्तनास्तथा ॥ २३ ॥

मध्यमामध्यमाश्चैव,

मध्यमोपरितनास्तथा ।

उपरितनाऽधस्तनाश्चैव,

उपरितनमध्यमास्तथा ॥ २४ ॥

उपरितनोपरितनाश्चैव,

इति प्रवेयका सुरा ।

विजया वीजयन्ताश्च

जयन्ता अपराजिता ॥ २५ ॥

सवाथसिद्धकाश्चैव,

पचधाऽनुत्तरा सुरा ।

इति वैमानिका एते,

ओकघा पचमादय ॥ २६ ॥

अथ उपार्थ - दे ह द्रभूति ! (हेट्टिमा हेट्टिमा) नीचे
की त्रिक का नीचे वाला (चैव) और (हेट्टिमा मज्जिमा)
नीचे का त्रिक का नीचे वाला । (तद्वा) तथा (हेट्टिमाउव
रिमा) नीचे की त्रिक का ऊपर वाला (चैव) और (मज्जिमा
हेट्टिमा) बीच की त्रिक का नीचे वाला (तद्वा) तथा
(मज्जिमा मज्जिमा) बीच का त्रिक का बीचवाला (चैव)
और (मज्जिमा उवारमा) बीच की त्रिक का ऊपर वाला
(तद्वा) तथा उपरिमाहेट्टिमा) ऊपर की त्रिक का नीचे

पाना (चव) और (उवरीमामज्जिमा) ऊपर की त्रिक का बीच वाला (तदा) तथा (उवरिमा उवरिमा) ऊपर की त्रिक का ऊपर वाला (इइ) इस प्रकार नौ भेदों से (गोविज्जमा) वैजयक के (सुरा) देवता हैं । (विज्जया) विजय (वज्जयता) वैजयत (य) ऊपर (ज्जयता) ज्वत (अपरात्रिगा) अपरात्रित (चव) और (सव्वत्थासिद्धमा) सर्वार्थसिद्ध से (पवहा) पांच प्रकार के (अणुत्ता) अनुत्तर विमान के (सुरा) देवता कहे गये हैं । (इइ) इस प्रकार (एए) ये मुख्य मुख्य (वमाणिया) वैमानिक देवों के भेद कहे गये हैं । और प्रभेद तो (एरमायघो) ये आदि में (अणुत्ता) अनेक प्रकार के हैं ।

भाष्यार्थ - हे गौतम ! बारह देवलोह से ऊपर नौ वैजयक जो हैं उन के नाम यों हैं । (१) भरे (२) सुभरे (३) सुजाय (४) सुमाण्णे (५) सुराने (६) त्रियदरान (७) अमोहे (८) सुवदिभर और (९) यरोधर और पांच अनुत्तर विमान यों हैं — (१) विजय (२) वैजयत (३) ज्वत (४) अपरात्रित (५) सर्वार्थसिद्ध, ये सब वैमानिक देवों के भेद बताए गये हैं ।

मूल - जेसिं तु विउला सिक्खा,

* मूलिय ते अइत्थिया ।

(*) किसी एक साहूकार ने अपने तीन लड़कों को एक एक हजार रुपया दे कर ब्यापार करने के लिए इतर देश

सौलवता सवीसेमा,

अदीणा जति देवय ॥ २७ ॥

थावा -येपा तु पिपुला शिदा,

मूलक तेऽतिफान्ता ।

को भेजा । उनमें से एक ने तो यह विचार किया कि अपन घर में खूब धन है । त्रिजूल ही व्यापार कर कौन क्या उठावे, अतः एशो आराम करके उसने मूल पूजा को भी खो दिया । दूसरे ने विचार किया कि व्यापार करके मूल पूजा तो उषों की खो कायम रखनी चाहिए । परन्तु तो लाभ हो उसे एशो आराम में खूब कर लेना चाहिए । और तीसरे ने विचार किया, कि मूल पूजा को खूब ही बढ़ाकर घर चलना चाहिए । इसी तरह वे तीनों नियत समय पर घर आये । एक मूल पूजा को खोकर दूसरा मूल पूजा लेकर, और तीसरा मूल पूजा को खूब ही बढ़ा का घर आया । इसी तरह आत्माओं को मनुष्य भव रूप मूल धन प्राप्त हुआ है । जो आत्माएँ मनुष्य भव रूप मूल धन की अपेक्षा करके खूब पापाचरण करती हैं वे मनुष्य भव को खो कर नरक आर तिर्यच लोकियों में जाकर जन्म धारण करती हैं । और जो आत्माएँ पाप करने से पीछे हटती हैं वे अपनी मूल पूजा रूप मनुष्य जन्म ही को प्राप्त होती हैं । परन्तु जो आत्मा अपना घर चलते सम्पूर्ण हिंसा, मूर्ख चोरी दुराचार, ममत्व आदि का परित्याग करके अपने त्याग धर्म में युद्धि करती जाती हैं । वे सांसारिक सुख की दृष्टि से मनुष्य भव रूपी मूल पूजा से भी दूर कर देव-योगि को प्राप्त होती हैं । अर्थात् स्वर्ग में जाकर वे आत्माएँ जन्म धारण करती हैं और वहाँ नाना भांति के सुखों को भोगती हैं ।

शाश्वन्त सविशेषा,

अदाना यानि देयत्वम् ॥२७॥

अथवाच - इ इन्द्रभृति । (जमि) जिह्वीन (गडला)
अस्य त (गिरया) शिवा का सेवन किया है । (त) वे
(माण्डिता) सन्तान (तथापि) उत्तराग गुणों को
वृद्धि करने काल (अशुभा) अर्द्धन वृत्तन ल (मूलन)
मूल धन हय मनुष्य भव को (अशुभिया) उल्लेखन कर
(देवय) देव लोक का (जति) जात है ।

भाषा - हे गौतम । इस प्रकार के देव लोकों में वे
हा मनुष्य होते हैं जो गदाना कर जिह्वाओं का अस्य त
सेवन करत हैं । और त्याग धर्म में जिन का िष्टा दिनों निग
बढ़ती ही जाती हैं । वे मनुष्य मनुष्य भव को त्यागकर त्याग
में जात हैं ।

मूल - विसालिभेदि सीर्नेदि, जनसा उत्तरउत्तरा ।

भद्रासुखा वदिपता, मण्यता अपुण्यचववा ॥२८॥

अपिया देवकामाण, कामरूवावेठविणो ।

उद्ध कटे सु विद्वति, पुठ्ठा वाममया वृष्टा ॥२९॥

ध्याया - विसदृशै शीलै,

यत्ता उत्तरोत्तरा ।

मद्य शुक्ला इव दीप्त्वमाना,

मन्यमाना अपुनर्धेयम् ॥२८॥

अर्पिता देयकामान् ,
कामरुपवक्रैपिण ।

ऊर्ध्वं कटपपु तिष्ठति,
पूर्वाणि घप शतानि वहानि ॥२६॥

अ उयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (विमालिसेहिं) निभदश
अर्थात् भिन्न भिन्न (सीलहिं) सत्तचारी स (उत्तरउतरा)
प्रधान से प्रधान (महासुका) महाशुद्ध अथान् विलक्षण
सपेद चन्द्रमा की (व) तरह (निष्पता) नेदीप्यमान्
(अणुणचवव) फिर चवना नहीं एमा (मणुता) मानते
हुए (कामरुवावेडव्विणो) इच्छित रूप के बनान वाले
(वह)बहुत (पुवावाधसया) संकरों पूव वप पर्यंत (उड्ड)
ऊंचे (कपपु) दवनोक में (देयकमाण) देवताओं के
सुख प्राप्त करने लिए (अणिया) अणु कर दिये हैं सदाचार
रूप वन जिने ऐसा आत्माएँ (अक्या) देवता बन कर
(तिष्ठति) रहती हैं ।

भावार्थ हे गीतम ! आत्मा अनेक प्रकार क सदा
चारों का सेवन कर स्वयं में जाती है तब वह वहाँ एक से
एक ददाप्यमान् शरीरों के धारण करती है । और वहा दश
हजार वष मे लेकर कइ सागरोपम तत्र रहती है । यहाँ ऐसी
आत्माएँ देव लोक के सुखों में ऐसी लीन हो जाती हैं, कि
वहाँ से अब मानो वे कभी मरेगी ही नहीं, इस तरह स वे
मान बैठती हैं ।

मूल - जहा कुसगो उदग, समुद्रेण सम भिण्णे ।

एव माणुस्समा कामा, देवकामाण्ण अतिपादे०॥

दाया - यथा कुशापे उदक, समुद्रेण सम भिज्जयात् ।

एव मानुष्यहा कामा देवकामानामन्तिके०॥

अ-वयाध - हे इ-भूति । (जहा) जैसे (कुसगो)
पास के समभाग पर की (उदग) जल की बूँद का (समु-
द्रेण) समुद्र के (सम) साथ (भिण्णे) मिलान किया जाय
तो क्या वह उसके बराबर हो सकती है । नहीं (एव) एसे
ही (माणुस्समा) मनुष्य सवधी (कामा) काम भोगों के
(अतिए) समीप (देवकामाण्ण) देव सवधी काम भोगों
को समझना चाहिए ।

भाषार्थः हे गौतम ! त्रिषु प्रकार पास के समभाग
पर की जल की बूँद में और समुद्र की जलराशि में भारी
अंतर है । अर्थात् कहीं तो पानी का बूँद और कहीं समुद्र
की जल राशि । इसी प्रकार मनुष्य सवधी काम भोगों के
सामन देव सवधी काम भोगों को समझना चाहिए । सांसा-
रिक सुख का परम प्रहर्ष बताने के लिए यह कथन किया
गया है । आत्मिक विकास की दृष्टि से मनुष्य भव देवभव
से भ्रष्ट है ।

मूल - तथ ठिच्चा जहाठाण,

जक्खा भाउवत्तए जुया ।

उर्वेति माणुसं जोणिं,

से दसगोऽभिजा * यद् ॥ ३१ ॥

छाया - तत्र स्थित्वा यथास्था -

यत्ता शायु क्षये च्युता ।

उपपान्ति मानुषी योनिं,

स दशागोऽभिजायते ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थ - इ इन्द्रमूर्ति । (तत्र) यहाँ देव लोक में (जगया) देवता (जहाटाण) यथास्थान (ठिन्वा) रह कर (आउकसए) आयुष्य के क्षय होने पर वहाँ से (चुया) चव कर (माणुस) मनुष्य (जाणि) यानि को (उर्वेति) प्राप्त होती है । और जहाँ जाती है वहाँ (से) वह (दसगो) दस अश्वत्था अर्थात् समृद्धिशाली (अभिजायद्) होता है ।

भावार्थ - हे गौतम । यहाँ जो आत्माएँ शुभ कर्म करके स्वर्ग में जाती है वहाँ वे अपनी आयुष्य को पूरा कर अवशेष पुण्यों से फिर वे मनुष्य योनि को प्राप्त करती हैं । जिस में भी यह समृद्धिशाली होती है ।

इस कथन का यह आशय नहीं समझना चाहिए कि देव

(*) एक वचन होने से इसका आशय यह है, कि समृद्धि के दस अङ्ग अथवा कहे हुए हैं । उनमें से देव लोक से चव कर मृत्यु-लोक में आने वाली कितनीक आत्माओं को तो समृद्धि के नौ ही अंग प्राप्त होते हैं । और किसी को आठ । इसी लिए एक वचन दिया है ।

गति के बाद मनुष्य ही होता है । इस स्थिति में भा हो सकता है और मनुष्य भी, परन्तु मही नष्ट हो जानेवालों का प्रकरण है इसी कारण मनुष्य गति का प्राप्ति वही मद् है ।

मूलाः-सिद्ध वत्यु हिरण्य च,
 पशवो दासपौरुष ।
 चत्वारि कामरुपाणि,
 तस्य से उरवज्जडे ॥ ३२ ॥

श्याम - क्षेत्र वास्तु हिरण्यम्,
 पशवो दासपौरुषम् ।
 चत्वारि कामरुपाणि,
 तस्य से उरवज्जडे ॥ ३२ ॥

अथ यथाथ - देह भूति । (शिरः) क्षेत्र प्रमान (वत्यु) पर चत्वारि (च) और सोना चाँदी (पशवो) गाय भैंस बगैरह (दम) नौकर (पौटय) कुटुम्बा जन, इस तरह से (चत्वारि) ये चार (कामरुपाणि) काम भोगों का समूह बहुतायत से है, (तस्य) मही पर (से) वह (उरवज्जडे) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः-देह गानम । अथ यथा मृदस्य का यथास्तस्य धम तथा साधुप्रवृत्त परत कर स्वयं में जाती है वह वही से चर कर एते मृदस्य के घर में म लेता है, कि जहाँ (१) पृथ्वी जमीन अथवा काम बगैरह, स्वतः बगैरह (२) वही

जमीन अर्थात् मकानात् वगरह (१) पशु-भी बहुत हैं । (४) और नौकर चाकर एव कुटुम्बी जन भी बहुत हैं, इस प्रकार जो यह चार प्रकार के काम लोगों की सामग्री है उसे समृद्धि का प्रथम अङ्ग कहते हैं । इस अंग की वहां प्रचुरता होती है वहां स्वर्ग से आने वाली आत्मा ज म लेती है । और साथ ही में जो आगे नौ अंग कहेंगे वे भी उसे वहां मिलते हैं ।

मूलः—मित्रव नाइव होइ, उच्चगोए य वरणव ।

अप्यायके महापण्ये, अभिजाए जसोबले ॥३३॥

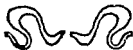
छाया -मित्रवान् क्षातिवान् भवति, उच्चगोत्रो वीर्यवान्
अत्पातङ्को महापण्ये, अभिजानो यशस्वी बली ३३

अत्रार्थ -२ इद्रभूति ' स्वर्ग से आने वाला जीव (मित्रव) मित्र वाला (नाइव) कुटुम्ब वाला (उच्चगोए) उच्च गोत्र वाला (वरणव) शांति वाला (अप्यायके) अन्न व्याधि वाला (महापण्ये) महान बुद्धिशाला (अभिजाए) विनय वाला (जसो) यशवाला (य) और (बले) बल वाला (हाइ) होता है ।

भाषायाः—दे गौत्रम । स्वर्ग से आये हुए जीव को समृद्धि का अंग मिलने के साथ ही साथ (१) वह अनेकों मित्रों वाला होता है (२) इसा तरह कुटुम्बी जन भी उसके बहुत होते हैं (३) इसा तरह वह उच्च गोत्र वाला होता है ।

- (४) अहं व्यापिशला (५) ह्राषन् (६) विनयवान्
 (७) यशस्वी (८) मुदितालो एव (९) बली, बहू
 होता है ।

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥



निर्ग्रन्थ-प्रवचन

(अध्याय अठारहवा)

मोक्ष स्वरूप

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः—आणाधिदेशकरे, गुरुणमुक्त्वायकारण ।

इगियागारसपत्ने, से विणीए ति बुच्चई ॥१॥

ध्याया—आज्ञानिर्देशकर, गुरुणामुपपातकारक ।

इगिताकारसम्पन्न, स विनीत इत्युच्यते ॥१॥

अन्वयार्थ—हे इन्द्रभूते ! (आणाधिदेशकरे) जो गुरु जन एव षडे युद्धों की न्याययुक्त बातों का पालन करने वाला हो, और (गुरुण) गुरु जनों के (उक्त्वायकारण) समीप रहने वाला हो, और उन की (इगियागारसपत्ने) कुल्लेक सृष्टी आदि चेटाँएँ एव आकार को जानने में सम्पन्न हो (से) बही (विणीए) विनीत है (ति) ऐसा (बुच्चई) कहा है ।

भाषार्थः—हे गौतम ! मोक्ष के साधन रूप विनम्र भावों

को धारण करने वाला विनीत है जो कि अपने बड़े बूढ़े गुरु
जनों तथा आत्त पुरुष की आज्ञा का यथायोग्य हर स पालन
करता हो, उनकी सेवा में रत कर अपना अधोभक्ति सम
जता हो, और उनका प्रवृत्ति निश्चिन्ते, एवक मृदुती आदि
चेष्टाओं तथा सुख-वृत्ति को मानने में या कुशल हो, वह
विनीत है। और इन के विपरीत जो अपना बर्ताव रखने
वाला हो, अर्थात् बड़े बूढ़े गुरु जनों की आज्ञा का उल्लंघन
करता हो, तथा उन की सेवा की या उमेछा करे, वह अपे
नीत है या पृष्ट है।

मूलः-अणुशासितो न कुपिज्जा,

। एति सेविज्ज पट्टि ।

सुद्धिं सह ससर्गि,

। हास कीड च वज्जए ॥२॥

श्या अनुशासितो न कुप्येत्,

। एन्ति सेवेत पट्टित ।

सुद्धेः सह ससर्ग,

। हास्य कीडा च वर्जयेत् ॥२॥

॥ वैयार्थः हे हृद्भूर्ति ! (पट्टि) पट्टिन धरो ह,
जो ('अणुशासितो') शिष्या देवे पर न) नहीं (कुपिज्जा)
क्रोध करे, और (एति) एतः को (सेविज्ज) सेवन करता
रह । (सुद्धिं) बाल अज्ञानियों के (सह) साथ (ससर्गि)

सर्ग' (हास') हास्य (च) और (कीट) कीड़ा को (वज्रए) त्यागें ।

भावार्थ - हे गौतम ! पंडित बड़ा है, जो कि शिष्या देने पर क्रोध न करे । और क्षमा को अनाश्रय बनाह । तथा दुराचारी और अज्ञानियों के साथ कमा भी हँसी ठट्ठा न करे, ऐसा ज्ञानियों ने बड़ा है ।

मूल - आसणगघो ण पुच्छेज्जा,

एव सेज्जागघो कयाइवि ।

आगम्मुक्कडुडुओ सतो,

पुच्छेज्जा पजलीउडो ॥१॥

छाया - आसनगतो न पृच्छेत्,

नैव शय्यागत कदापि च ।

आगम्य उत्कुटुकं सूनु,

पृच्छेत् प्राञ्जलिपुट ॥३॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति गुरुजनों से (आसणगघो) आसन पर बैठे हुए कोई भा प्रश्न (ण) नहीं (पुच्छेज्जा) पूछना और (कयाइवि) कदापि (सेज्जागघा) शय्या पर बैठे हुए भी (ए) नहीं पूछना, हाँ (आगम्मुक्कडुडुओ) गुरुजनों के पास आकर उकड़ आसन से (सतो) बैठकर (पजलीउडो) हाथ जोड़ कर (पुच्छेज्जा) पूछना चाहिए ।

माध्यायः—हे गौतम ! अपने बड़े पुत्र गुरु जनों को कोई भी बात पूङ्गना हो तो आसन पर बैठे हुए या शयन करने के बिछौने पर बैठे ही बैठ कभी नहीं पूङ्गना चाहिए । क्योंकि इस तरह पूङ्गने से गुरु जनों का अपमान होता है । और ज्ञान की प्राप्ति भी नहीं होता है । अतः उनके पास जा कर उकई आसन* से बैठ कर हाथ चाद कर प्रत्येक बात को गुरु से पूछे ।

मूनः—ज मे बुद्धाणुसासित,
सीरण फरसेण वा ।
मम लाभो ति वेदाए,
पयभो त पडिस्सुये ॥४॥

छाया -य मा पुत्रा अनुशासन्ति,
शीलेन परुपेण वा ।
मम लाभ इति मेवप,
प्रयतस्तत् प्रतिभृणुयात् ॥५॥

अ-चयाय -हे इन्द्रभूति ! (बुद्धा) बड़े पुत्रे गुरु जन (व) को शिष्टा दें, सब समय यों विचार करना चाहिए, कि (मे) मुझे (सीरण) शीलन (व) अथवा (फडडण) कठोर शर्तों से (अणुसासति) शिष्टा देत हैं । यह (मम)

मेरा (लाभो) लाभ है (ति) ऐसा (पेहाए) समझ कर
पद कार्यों की रक्षा के लिए (पयआ) प्रयत्न करनेवाला
महानुभाव (त) उस बात को (पडिस्त्रुणे) भवण करे ।

भावार्थ -हे गौतम ! बड़े बुद्धे व गुरु जन मधुर या
कठोर शब्दों में शिक्षा दें, उस समय अपने को यों विचार
करना चाहिए, कि जो यह शिक्षा दी जा रही है, वह मेरे
लौकिक और पारलौकिक सुख के लिए है। अतः उन की
अमून्य शिक्षाओं को प्रसन्न चित्त से भवण करते हुए अपना
अहोभाव्य समझना चाहिए ।

मूल -दिय विगतभया बुद्धा,
फरुस पि अणुसासण ।

वेस र्त्त होइ मूढाण,
खतिसोहिकर पय ॥ ५ ॥

छाया द्विम विगतभया बुद्धा,
परुपमप्यनु शासनम् ।

द्वेष भवति मूढाना,
क्षान्ति शुद्धिकर पदम् ॥५॥

अन्वयार्थ -हे इन्द्रभूति ! (विगतभया) चला गया
हो भय निश्चये ऐसा (बुद्धा) तत्वर, विनयशील अपने
पदे बुद्धे गुरु जनों की (परुष) कठोर (

शिष्टाओं (भे) जी (हिय,) दित्तकारी समयका दे, और
 (मूढगु) मूर्ख, "अविनात" (अतिसोद्विग्न) धमा दास्य
 करन वाला, तथा आत्म पुष्टि करन व ता, ऐसा ओ (पय)
 ज्ञान रूप पद (त) उक्तो धवण कर (वग) रूप गुण
 (होइ) हो ज दे ।

भावार्थः दे गौतम [शिष्टाओं विधी प्रकार की विन्ता
 मय नहीं दे, एता ओ तावह, विनयवान्, महाभुभाव अपने
 बिक पुत्र गुण शरी की अणु-य शिष्टाओं को बहोत शरों में
 भी धवण करके उ-दे ज्ञान। परम दित्तकारी समयका दे ।
 और जो अविनात मूर्ख होते हैं, ये उनकी दित्तकारी और
 धवणपुस्तक शिष्टाओं को पुनः कर देवाना में ज्ञान भरते हैं ।

मूलः—अभिव्यवण कोही दधइ,

पयध च पकुवई ।

मेत्तिज्जभाणो वमइ,

सुय लयण मज्जइ ॥६॥

अवि पायपरिक्खेवी,

अधि मित्तेसु कुणई ।

सुप्पियस्सवि मिचस्स,

रहे भासइ पावग ॥७॥

पइरणवार्हं दुदिले,

थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।

असविभागी अवियत्ते,

अविणीए तिवुच्चई ॥ ८ ॥

ध्याया - अमीएण क्रोधो भवति,

प्रथ ध च पक्करोति ।

भेत्तीयमाणो वमति

धुत लब्ध्या माद्यति ॥६॥

अपि पापपरिक्षेपी,

अपि मित्रभ्य कुप्यति ।

सुप्रियस्यापि मित्रस्य

रदसि भापते पापकम् ॥७॥

प्रकीणयादी द्रोहशील

स्तब्धो लुब्धोऽनिग्रह ।

असविभाग्यप्रतिहर,

अयितयीतस्युच्छते ॥८॥

अन्वयार्थ - ह इ दभूति । (अभिकरण) व र वार
 (कोटी) काथ युन (तवइ) दाता हा (च) और तदैव
 (पबव) व नदोःस्तोदक ही कथा (वकुव्वइ) करता हो
 (मत्तिज्जमाण) मैत्रीभाव को (वमइ) वमन करे (सुव)
 सुत ज्ञान को (लब्धुण) पाकर (मज्जइ) मर करे, पाप
 रिशयरी) बर बुइ व गुरु ननों की न कुइ पून को भी

निदा ह्य मे वान (आवि) ही रहे (वितेगु) शिरो पर
 (आवि) भा (कुन्द) कष करता रह (बुणियम्भ)
 गुणेष (मितस्त्र) मित क (आवि) भी (रहे) पशय
 म्य मे उषके (पावग) पाव देव (भावइ) कहता हो ।
 (पश्यणवाइ) मखर रदित बहुत बोलने बापा हो, (दुहिते)
 दोही हा (पदे) पमएही हा । (लुह) रगदिह हाइ मे
 लिय हो (अणियगदे) अनेपहीत इरेवें काना हो (अय
 विनामी) किनी को कुह नहीं दगा हो (अनेरने) पुत्रने
 पर भी अष्टाष्ट बोलता हो, वइ (आवणीए) आवेनीत हे ।
 (ति) ऐना (पुच्यइ) सनी अन कहते हैं ।

भावार्थः—देव तम । जो एवैय केष करता है, जो
 अनहोरादक बातें ही नयी नयी पद कर सग कहता रहता
 है, मित का हृदय मैत्री भाशें व विद्वान हा, ज्ञान समादन
 करके ओ उष के गङ्ग में पूर रहता हो, अने वके मूइ व
 गुरु अनो की न कुत्र सी भुजों का भी भवकर ह्य ओ दता
 हो, अने प्रगाइ शिरो पर भी केष करने से ओ कमान
 घूहता ही, अनेष्ट शिरो का भी उनके परोष्ठ में दोष प्रकट
 करता रहता हो, वाक्य या कथा का सव्यम मिलने पर भी ओ
 पात्र ल भी भांति बहुत अधिक बोलता हो, प्रदेह के साथ
 दोह क्रिये विना त्रिष चैन ही नहीं पकता हा, गत्र करने में
 भी ओ कुह और कसर नहीं रखता हो रसादिह पद्यों के
 स्वाद में सदैव आसक्त रहता हो, इंदियों के द्वारा ओ परा-
 जित होता रहता हो, ओ स्वय पेद्र हा, और दुगरो को एक

कौर मा कभी नहीं देता हो और पूछने पर भी जो सदा अनजान की ही भांति बोलता हो, ऐसा जो पुरुष है, वह फिर चाहे जिस जाति, कुल व कौम का क्यों न हो, अविनीत है, अर्थात् अविनय शील है, उसकी इस लोक में तो प्रशंसा होगी ही क्यों ? परन्तु परलोक में भी वह अपोमायी बनेगा ।

मूल - अह परणरसहिं ठाणोहिं, सुविणीए ति वुचचई ।
नीयाविती अचवले, अमाई अकुऊले ॥६॥

व्याख्या - अथ पञ्चदशवि स्थानै, सुविनीत इत्युच्यते ।
नीचवृत्त्यचपल, अमाप्यकुतूहल ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ - हे इन्द्रभूति । (अह) अह (परणरसहिं) पदह (ठाणोहिं) म्यानों (सुविणीए) बातों से अच्छा विनीत है (ति) ऐसा (वुचचई) ज्ञानी जन कहते हैं । और वे पदह स्थान यों है । (नीयाविती) नम्र हो, बड़े बड़े व गुरुजनों के आसन से नीचे बैठने वाला हो, (अचवले) चपलता रहित हो (अमाई) निष्कपट हो (अकुऊले) कुतूहल रहित हो ।

भाषार्थ - हे गौतम । पदह कारणों से मनुष्य विनम्र शीलवान् या विनीत कहलाता है - वे पदह कारण यों हैं (१) अपने बड़े बड़े व गुरु जनों के साथ नम्रता से जो बोलता हो, (२) उनके नीचे आसन पर बैठना हो, पूछने

पर हय भव कर केजगा हा; वरुणे पत्रने पैडा कदि मे
 खो बरनगा त दितागा हा (१) यदेव रिपदा भव मे
 भा वगाइ वरगा हा (४) एव, तमागे, यदेव ईतुधे के
 देखेने मे उरगुच न हो ।

गूत - सप्य चाटिकेनवई,
 पवध च त कुवई ।
 भेतिञ्जमाणो मवई,
 मुख लदु त मज्जई ॥१०॥
 त य पावपरिवभेवी,
 त य भित्तिसु कुपई ।
 अप्पियस्तावि भिचस्म,
 रदे कलाण भासई ॥११॥
 कनहडमरयज्जए,
 बुद्धे अभिजाइए ।
 दिरिम पडिसलीणे,
 सुवणीए ति युच्चई ॥१२॥

घाया - अल्प च अधिक्षिपति,
 प्रव ध च न करोति ।
 मैत्रीपमाणो भजते,

श्रुत लब्ध्या न माद्यति ॥१०॥

न च पापपरिक्षेपी,

न च मित्रेषु कुप्यति ।

अप्रियस्यापि मित्रस्य,

रहसि कत्याणु भाषते ॥११॥

कलहद्वारमयजह,

बुद्धाऽभिजातह ।

हामान् प्रतिवर्त्तान्,

सृचिर्नान इत्युच्यते ॥१२॥

अवयाध - ह इन्द्रभूत । (अग्निस्त्वर्) बड़े बूढ़ तथा गृह जन अग्नि किसी का भा जो तिरस्कार न करता हो (न) और (पश्य) कनदात्तादिक क्या (न) नहीं (पुश्य) करता हा, (मतिउज्जपाणो) मित्रता का (भयइ) निभाता हा, (सुय) श्रुत गत वा (लटु) वा करक जा (न) नहीं (मज्जइ) मद करता हा (य) और न) नहीं करता हो (पापपरिक्षेत्री) बड़े बूढ़ तथा गृह जनो की कु छेद भूल को (य) आर (मित्रेषु) मित्रों पर (न) नहीं (कुप्य) काय करता हो (अपिदस्य) अप्रिय (मित्रस्य) मित्र से (रहे) पोगु मे (अग्नि) भी, उष के (कलह) गुणागुवाद (भाषइ) बोलता हो (कत्याणुभाषण) वास्तुद्व और काश बुद्ध दोनों से अनप्य रहता हो, (बुद्धे)

यद्दत्तवसुधिर (कर्मिण इव) कुर्वन्ता के गुणो मे सुक
 दा, (दिविम) सज्जन २ हो, (पाठे १ सो ३) इन्द्रियों पर
 विजय पाया हुआ हो, वर (पुत्रेण २) विनाश दे । (ति)
 ऐसा शत्रु जन (सुचरै) करते दे ।

मायार्थ - हे गोपन । फिर त वसुध महानुभाव (५)
 अपने बड़े बूढ़ तथा गुरु जनों का कभी भी तिरस्कार नहीं
 करता हो (६) दण्डे पशुद की बात न करता हो (७)
 उपकार करो बाल मित्र के साथ बन वृत्त तक पीढ़ा उपकार
 ही करता हो, यदि उपकार करने की शक्ति न हो तो उपकार
 से तो शत्रु उपदेश दूर ही रहना हो (८) जन या वर पमण्ड
 ७ करता हो (९) अपने बड़े बूढ़ तथा गुरु जनों की कुण्ड
 मूल को भयकर रूप न देना हो (१०) अपने मित्र पर
 कभी भी श्रेय न करता हो (११) परोप में भी अपि
 मित्र का व्यवहार के बजाय गुणगान ही करता हो (१२)
 वात् सुद्ध और काया सुद्ध दानों से जो कतई दूर रहना हो,
 (१३) कुर्वन्ता के गुणों से सम्पन्न हो (१४) सज्जन
 अर्थात् अपने बड़े बूढ़ तथा गुरु जनों के समस्त नेत्रों में सरम
 रखने वाला हो (१५) और अपने इन्द्रियों पर पूर्ण या
 प्रायः प्राप्त कर लिया हो, वर विनाश दे । ऐसे ही की इस
 श्लोक में प्रशंसा होती है । और परलोक में उन्हें शुभ गति
 मिलती है ।

मूल.-जहा दिव्यगी जनण नमसे,

नाणाहुई मतपयाभिसत्त ।
 एवायरिय उवचिट्टुइज्जा,
 अणतनाणोवगओ वि सतो ॥१३॥

॥ ध्याया - यथाहितमिउरंजन नमस्यति,
 नानाऽऽहुतिमत्रपदाभिपिक्तम् ।
 एवमाचार्यमुपतिष्ठेत्,
 अतज्ञानोपगतोऽपि सन् ॥१३॥

अन्ययार्थ हे इन्द्रभूते ! (जहा) जैसे (आग्नि-
 अरणा) अग्नि होत्री ब्रह्मण (जलण) अग्नि को (नमसे)
 नमस्कार करते हैं । तथा (नाणाहुईमतपयाभिसत्त) नाना
 प्रकार से या प्रक्षेप रूप आहुति और मंत्र पदों से उधे सिंचित
 करते हैं (एवायरिय) इसी तरह से भवे यूहे व गुरु जन
 और आचार्य की (अणतनाणोवगओमतो) अनत ज्ञान
 युक्त होने पर (वि) भी (उवचिट्टुइज्जा) सेवा करनी ही
 चाहिए ।

भाष्यार्थ-हे गौतम ! जिस प्रकार अग्निहोत्री ब्रह्मण
 अग्नि को नमस्कार करते हैं, और उस को अनेक प्रकार से
 या प्रक्षेप रूप आहुति एवं मंत्र पदों से सिंचित करते हैं इसी
 तरह पुत्र और शिष्यों का कर्तव्य और धर्म है कि चाहे वे
 अनत ज्ञानी भी क्यों न हो उन को अपने भवे यूहे और गुरु
 जनों एवं आचार्य की सेवा शुभ्र्या करनी ही चाहिए । जो

एना काल है व ही लचमुच में विनात है ।

मूल - आचार्य कृषिय गुच्छा,
परिणत पसायण ।

विउम्भेज न पञ्जीडडो,
वृज्ज रु पुगुत्ति य ॥१४॥

दाया - आचार्य कृषि-दाया,
मात्या प्रमादयत् ।
विध्यापयत् मान्जलिपुट,
वदन पुररिति च ॥१४॥

अ प्रथम - हे इ प्रभूति (आचार्य) आचार्य को (कृषिय) काल (गुच्छा) जान कर (परिणत) प्रीति कारक शब्दों से फिर (पसायण) प्रपन्न करे (पञ्जीडडा) दाया जोष कर (विउम्भेज) शांत करे (य) और (पुगुत्ति) फिर एका अविनय नहीं करेगा ऐसा (वृज्ज) बोले ।

भाषार्थ हे गौतम ! वह बुद्ध बुद्ध जन एवं आचार्य

(*) कई जगह 'शुद्धा' की जगह (नद्या) भी मूल पाठ में आता है । ये देना शुद्ध है । क्योंकि प्राकृत में नियम है कि 'नौ श' नकार का शकार होता है । पर शब्द के आदि में हो तो वहाँ 'वा यादा' इस सूत्र से नकार का शकार विकल्प नहीं जाता है । अर्थात् नकार या शकार दोनों में से कोई भी एक हो ।

अपने पुत्र शिष्यादि के अविनय से क्रुपित हो उठें तो त्रीति कारक शब्दों के द्वारा पुन उन्हें प्रसन्न वित्त करे, हाथ जोड़ जोड़ कर उनके क्रोध को शान्त करे, और यों कह कर कि "इम प्रकार" का अविनय या अपराध आगे से मैं कभी नहीं करूँगा, अपने अपराध की क्षमा याचना करे ।

मूल. - एचचा एमइ मेहावी,

लोए किची से जायइ ।

हवइ किचचाण सरण,

भूयाण जगई जहा ॥ १५ ॥

छाया - छात्या नमति मेघावी,

लोके कीर्त्तिस्तस्य जायते ।

भवति कृत्याना शरण,

भूताना जगती यथा ॥ १५ ॥

अ रयार्थ - हे हृद्रभूति ! इस प्रकार विनय की महत्ता को (एचचा) जान कर (मेहावी) बुद्धिमान् मनुष्य (एमइ) विनयशील हो, जिस से (चे) वह (लोए) इस लोक में (किचा) कीर्ति का पात्र (जायइ) होता है (जहा) जैसे (भूयाण) प्राणियों को (जगई) पृथ्वी आश्रय भूत है, ऐसे ही विनीत महानुभाव (किचचाण) पुण्य क्रियाओं का (सरण) आश्रय रूप (हवइ) होता है ।

भाषार्थ - हे गौतम ! इस प्रकार विनय की महत्ता को

समझ कर बुद्धिमान् मनुष्य को चादिए कि इस विनय को
 अपना परम धर्म्यर सखा बनाले । जिसे यह दृष्ट सखार में
 प्रशंसा का पात्र हो जाय । जिस प्रकार यह पृथ्वी सभी प्रा
 णियों को आश्रय कर दे, ऐसे ही विनयशील मानव भी
 सदाशर हर अज्ञान का आश्रय कर दे । अर्थात् इत कमों
 के लिए स्थान कर है ।

मूल - स देवगध्वमगुप्तपुष्टि,

चइत्तु देह मनपकपुष्पय ।

सिद्धे वा दवद सासए,

देवे वा अप्परए महिइदिए ॥ १६ ॥

श्लोक - स देवग ध्व मनुष्य पूजिता,

त्यक्तवा देह मतापक पुष्पम् ।

सिद्धो भवति शाश्वत

देवो वापि महिइदि ॥ १६ ॥

अ अथाथा - दे इद्रभूति (देवगध्वमगुप्तपुष्टि)
 दध, गधर्व और मनुष्य से पूजित (स) यह विनय शील
 मनुष्य (मलपकपुष्पय) रुधिर और वीर्य से बनने वाले
 (दह) मानव शरीर को (चइत्तु) छोड़ करके (सासए)
 शश्वत (सिद्धे) सिद्ध (दवद) होता है (वा) अथवा
 (अप्परए) अला कम वाला (महिइदिए) महा श्रेष्ठता
 (देवे) देवता होता है ।

भात्रार्थ हे गौतम ! देव, गधर्व, और मनुष्यों के द्वारा जेत ऐसा वह विनीत मनुष्य रुधिर और वीर्य से बने हुए प शरार को छोड़ कर शास्वत सुखों को सम्पादन करता है । अथवा अल्प कर्म याने महा ऋद्धिवता देवों की शक्ति में ज म धारण करता है । ऐसा ज्ञानी जनों म कहा है ।

पुल*—अतिथि एग ध्रुव ठाण,

लोगगाम्मि दुरारुहं ।

जस्थ नस्थि जरा मच्चू ,

वादिणो वेषणा तथा ॥ १७ ॥

घाया -अस्त्येक ध्रुव स्थान,

लोकामे दुरारोहम् ।

यत्र नास्ति जरामृत्यु,

व्याधयो वेदनास्तथा । १७ ॥

अत्रार्थ -हे इन्द्रभूति ! (लोगगाम्मि) लोक के अग्र भाग पर (दुरारुह) कठिनता से चढ़ सके ऐसा (एग) एक (ध्रुव) निश्चल (ठाण) स्थान (अतिथि) है । (जस्थ) जहाँ पर (जरामच्चू) जरामृत्यु (वादिणो) व्याधियों (तथा) तथा (वेषणा) वेदना (नस्थि) नहीं है ।

भात्रार्थ-हे गौतम ! कठिनता से जा सके, ऐसा एक निश्चल, लोक के अग्र भाग पर, स्थान है । जहाँ पर न वृद्धा वस्था क' दुख है और न व्याधियों ही की लेश देन है । तथा

शारीरिक व भागावक वेदनाओं का भाषा नाम नहीं है ।

मूल - निष्वाण वि अबाह ति,
सिद्धी लोकागमेव च ।

स्त्रेम शिवमया वाह,
ज चरति महेशिणो ॥ १८ ॥

द्वाराः निर्वाणमित्यवाधामिति,
सिद्धिलोकाममेव च ।

स्त्रेम शिवमयावाध,
यश्चरति महर्षयः ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः-हे इ दभूति ! वह स्थान (निष्वाणति) निष्वाण (अबाह ति) अबाध (सिद्धी) सिद्धि (च) और (एव) ऐसे ही (लोकाग) लोकाम (स्त्रेम) स्त्रेम शिव शिव (अणावाह) अणावाध, इन शब्दों से भी पुकारा जाता है । ऐसे (च) उक्त स्थान को (महेशिणो) महर्षि लोग (चरति) जाते हैं ।

भावार्थः हे गौतम ! उक्त स्थान को निर्वाण भाषा कहते हैं क्योंकि वहाँ आत्मा ने सर्व प्रकार के सत्ताप का एकदम अभाव रहता है । अबाधा भी उक्त स्थान का नाम है, क्योंकि वहाँ आत्मा को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती है । उसको सिद्धि भाषा कहते हैं, क्योंकि आत्मा ने अपना इच्छित

काय सिद्ध कर लिया ह । आर लोक के अग्र भाग पर होने से लोकाग्र भी उसी स्थान को कहत है । फिर उसका नाम ज्ञेय भी है, क्योंकि वहा आत्मा को शाश्वत सुख मिलता है । उसा को शिव भी कहत है क्योंकि आत्मा निरुपद्रव होकर सुख भोगता रहती है । इसी तरह उसका अनायाध ३० भी कहत है क्योंकि वही मयी हुई आत्मा स्वाभाविक सुखों का उपभोग करती रहती है, किसी भी तरह का बाधा उसे वहां नहीं होती । इस प्रकार के उस स्थान की समयी जावन के बिताने वाली आत्माएँ शंघातिश प्र प्राप्त करता है ।

मूलः—नाण च दसण चैव,
चरित्त च नवा तथा ।

एय मग्गमणुप्पत्ता,
जीवा गच्छति सोमइ ॥ १६ ॥

छाया -ज्ञान च दर्शन चैव
चरित्र च तपस्तथा ।

एतन्मार्गमनुयाता,
जीवा गच्छन्ति सुगतिम् ॥ १६ ॥

अवयवार्थ -दे इन्द्रभूति । (नाण) ज्ञान (च) और
(दसण) भजान (चैव) और इसी तरह (चरित्त) चारित्र

(च) और (तद्वा) वसे ही (तयो) तर (एय) न चार प्रकार के (म ग) माग को (अरुणता) प्राप्त होने पर (अर्वा) जाय (सोमद्) मुक्ति गति को (गरुडति) प्राप्त होते ह ।

भाषाया-हे गान्ध ! इस प्रकार के मोक्ष स्थान में पहुँचा जाय पहुँच पाता है, जिसे अम्यक् ज्ञान है बीतरागों के वचनों पर जिसे धडा है, जो चारित्रवान् है और तर में जिसकी प्रवृत्ति है । इस तरह इन चारों मार्गों को यथा विधि जो पालन करता रहता है । फिर उसके लिए मुक्ति कुछ भी पूरा नहीं है । ध्योति —

मूलः—नाणेण जाणई भावे, दसणेण य सददे ।

चरित्तेण निगिएइइ, तवेण परिमुउम्हइ ॥२०॥

ध्याया—ज्ञानेन जानाति भावान् दर्शनेन च धदघत्ते ।

चरित्रेण निगृह्णानि, तपसा परि शुद्धयति ॥२०॥

अम्ययार्थ - हे इन्द्रभूति ! (नणेण) ज्ञान से (भावे) अर्वादिक तरों का (जाणइ) जानता है (य) और (दसणेण) दशन से उन तत्वों को (सददे) धडता है । (चरित्तेण) चारित्र से नवीन पाप (निगिएइ) रफना है । और (तवेण) तपस्या करके (परिमुउम्हइ) पूरा सचित ब्रह्मों को छय कर डलता है ।

भाषाया - हे गौतम ! अम्यक् ज्ञान के द्वारा जीव ता

त्विक्त पदार्थों को भली भाँति जान लेता है । दर्शन के द्वारा
दृष्टकी उन में मद्धा हो जाती है । चारित्र्य अर्थात् सदाचार
से भावी नवीन कर्मों को बढ़ रोक लेता है । और तपस्या के
द्वारा करोड़ों भ्रमों के पापों को बढ़ छत्र कर डालता है ।

मूल - नाणस्स सव्वस्स पणासणाए,
अण्णाण मोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य सखएण,
एगतमोक्ख समुवेइ मोक्ख ॥२१॥

छाया - ज्ञानस्य सचस्य प्रकाशनया,
अज्ञानमोहस्य विवजनया ।
रागस्य द्वेषस्य च सत्तयेण,
एकान्तसौख्य समुपैति मोक्षम् ॥२१॥

अर्थ - हे इन्द्रभूति ! आत्मा (सव्वस्स) सब
(नाणस्स) ज्ञान के (पणासणाए) प्रकाशित होने से
(अण्णाणमोहस्स) अज्ञान और मोह के (विवज्जणाए)
छूट जाने से (य) और (रागस्स) राग (दोसस्स) द्वेष
के (सखएण) छत्र हो जाने से (एगतमोक्खं) एकान्त
सुख रूप (मोक्ख) मोक्ष की (समुवेइ) प्राप्ति करता है ।

भावार्थ - हे गौतम ! सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाशन से,
अज्ञान, अधज्ञान के छूट जाने से और राग द्वेष के समूल

गम हो जाने से एक त गुण का जो मोड़ है, उबड़ी जाती होती है ।

मूल -सर्व तथो जाणइ पासए य,
अमोहणे होइ निरतराय ।

अण्णसवे ऋणसमाहिजुत्ते,
आउरसए मोक्खमुत्तेइ सुद्ध ॥२२॥

व्याख -सर्व तता जानानि पश्यति य,
अमोहनो भवति निरतरायः ।

अनासुरो ष्यानसमाधियुक्त
आयुःसय मोक्षपुरेति शुद्ध ॥२२॥

अ वचार्थ -हे इन्द्रमूर्ति । (तथो) सम्पूर्ण ज्ञान के हो जाने के पक्ष से (सर्व) सब जगत् का (जाणइ) ज्ञान लेता है । (य) और (पावए) देख लेता है । फिर (अमो हणे) मोह रहित और (अण्णसवे) आश्रय रहित (होइ) होता है । (ऋणसमाहिजुत्ते) शुद्ध ध्यान रूप समाधि से युक्त होने पर वह (आउरसए) आशुभ छय होने पर (सुद्ध) निर्मल (मोक्ख) मोक्ष को (उवेइ) प्राप्त होता है ।

अ वार्थ -हे भौतम ! शुद्ध ध्यान रूप समाधि के युक्त होने पर वह जब मोह और अंतराय रहित हो जाता है । तथा वह सर्व लोच को जान लेता है और देख लेता है ।

घर्षात् शुक्र घ्यात् के द्वारा जब चार घनघातिया कर्मों का नाश करके इन चार गुणों को पाता है। तदनन्तर आयु आदि चार अघातिया कर्मों का नाश हो जान पर वह निर्मल मोक्ष स्थाप को पा लेता है।

मूलः-सुखमूने जहा स्खे,
सिच्यमाणे ण रोहति ।
एव कम्मा ण रोहति,
मोहणिये सयगए ॥ २३ ॥

ध्याया -शुक्रमूलो यथा वृक्ष,
सिञ्चमानो न राहति ।
एव कर्माणि न रोहन्ति,
मोहनीये सयगते ॥ २३ ॥

अ-वयवार्थ -दे इन्द्रधृति । (जहा) जमे (सुखमूने) सुख गया है मूल जिसका ऐसा (स्खे) पृष्ठ, (सिच्यमाणे) सींचने पर (ण) नहीं (रोहति) सहलदाता है (एव) उगी प्रकार (मोहणिये) मोहनीय कर्म (सयगए) क्षय हो जाने पर पुन (कम्मा) कर्म (ण) नहीं (रोहति) उत्पन्न होता है।

भा-वार्थ -दे मोक्षम । जिस वृक्ष की जड़ सूख गई हो उसे पानी से सींचने पर भी वह सहलदाता नहीं है, उगी प्रकार मोहनीय कर्म के क्षय हो जाने पर पुन कर्म उत्पन्न

नहीं होते हैं। यथोक्ति अब कारण ही नष्ट हो गया, तो फिर कार्य को हो सकता है ?

मूल - जहा दद्यात् बीयाण,
 ण जायति पुण्डुरा ।
 कम्म बीणसु दहेदसु,
 न जायति भवपुरा ॥ २४ ॥

दाया - यथा दग्धानामद्राणाम् ,
 न जायते पुण्डुरा ।
 कम्म बीजेषु दग्धेषु,
 न जायते भवपुरा ॥ २४ ॥

अन्वयात् - हे दग्धभूति । (जहा) जैसे (दद्यात्) दग्ध (बीयाण) बीजों के (पुण्डुरा) फिर अत्र (ण) नहीं (जायति) उत्पन्न होता है । उन्ही प्रकार (दहेदसु) दग्ध (कम्मबीणसु) कर्म बीजों में से (भवपुरा) भव रूपी अत्र (न) नहीं (जायति) उत्पन्न होता है ।

भाषायाः - हे गौतम । जिस प्रकार जले में बीजों को बोने से अत्र उत्पन्न नहीं होना है, उसी प्रकार जिसके कर्म रूपी बीज नष्ट हो गये हैं, सम्पूर्ण क्षय हो गये हैं, उस अवस्था में उस के भव रूपी अत्र पुन उत्पन्न नहीं होते हैं । यही कारण है कि मुक्तात्मा फिर कभी मुक्ति से लौटकर

उत्तर म नहै श्यते ।

॥ श्रीगौतमउवाच ॥

मूलः—कहिं पडिहया सिद्धा,
 कहिं सिद्धा पाइहिया ।
 कहिं बोदि चइत्ता गु*,
 कथ गतुण सिज्झई ॥ २५ ॥

उत्तर -क्य प्रतिहनाः सिद्धाः,
 क्य सिद्धा प्रतिष्ठिनाः ।
 क्य शरीर त्यक्त्वा,
 कुत्र गत्वा निज्झयति ॥२५॥

अ-व्याख्य -हे प्रभो ! (सिद्धा) सिद्ध जीव (कहिं)
 कहां पर (पडिहया) प्रतिहत हुए हैं ? (कहिं) कहां पर
 (सिद्धा) सिद्ध जाव (पइहिया) रहे हुए हैं ? (कहिं)
 कहां पर (बोदि) शरीर छोड़ कर (चइत्ता) छोड़ कर (कथ)
 कहां पर (गतुण) जाकर (सिज्झई) सिद्ध होते हैं ?

भावार्थ -हे प्रभो ! जो आत्माएँ, मुक्ति में गया है, वे
 कहां तो प्रतिहत हुए हैं ? कहां ठहरी हुई है ? मानव शरीर
 कहां पर छोड़ा है ? और कहां जा कर वे आत्माएँ सिद्ध
 होती हैं ?

(*) गु वाक्यालंकार ।

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मूलः-अलोए पडिहया सिद्धा,

लोयगो अ पडुडिया ।

इह बोदि चरता यद्,

तथ गतूण सिग्मई ॥२६॥

प्राया -अलोके प्रतिहता सिद्धा ,

लोकामे च मतिष्ठिता ।

इह शरीर त्यक्त्वा,

तथ गता सिद्धवति ॥ ६॥

अ वषाथ -हे इ श्रुति । (सिद्धा) सिद्ध अ लोके
(अलोए) अलाक में लो (पडिहया) प्रतिहत हुए है ।
(अ) और (लायग) लोकाम पर (पडुडिया) ठहरी हुए
है । (इह) इस लोक में (बोदि) शरीर छो (चरता)
छोड़ कर (तथ) लोक क अग्रम ग पर (गतूण) जाकर
(सिग्मई) सिद्ध हुए हैं ।

भावार्थ -हे गौतम । जो अस्माए श्रुतुं शुभाशुभ
कर्मों से मुक्त होती है, वे फिर नीच ही स्वाभाविकता से
कल्प लोक को गमन कर अलक से प्रतिहत होती है । अथात्

अनोरु में समा करने में सहायक वस्तु धमास्त्रिकाय के होने से लोकाग्र में हो जाने रुक जाता है । तब वे विद्ध आत्माएँ लोक के अग्रभाग पर ठहर रहती हैं । व अत्माएँ इस मानव शरीर से यहीं उड़ कर लोकाग्र पर विद्ध मा होती हैं ।

मूल - अरुविणो जीवघणा,
नाणदसणसन्निया ।

अउल सुद्धमपज्जा,
उपमा अस्स नत्थि उ ॥ २७ ॥

धारा - अरुपिणो जीवघना,
छानदशनसद्धिता ।

अतुल सुण सम्पन्ना
उपमा यस्य नास्ति तु ॥ २७ ॥

अ वयाव - हे मौलन ! (अरुविणो) विद्धत्मा अत्मी है । और (जीवघणा) वे जाव धन रूप है । (नाणदसणसन्निया) जिन की केवल ज्ञान दर्शन रूप ही मत्ता है । (अउल) अतुल (सुद्धमपज्जा) सुखों से युक्त है (अस्स उ) जिस की तो (उपमा) उपमा भी (नत्थि) नहीं है ।

* A substance which is the medium of motion to soul and matter and which contains innumerable atoms of space, pervades the whole universe and has no fulcrum of motion.

मायाशयः हे गतम । जा आत्मा मित्रा वा के रूप में
होती है, व अस्ती इ, उन क आराम प्र, रा वन रूप में हान
ह । १११ प्रश्न रूप ही जिन की कवन सत्ता हारी ह और
वे गिद्ध तम हैं अतुन मुन मे युक्त रहती हैं । उन के सुखों
की उपवा भी नहीं दी जा सकते ह ।

॥ श्री सुधर्मोवाच ॥

मूल.-एव मे उदाहृ अणुत्तरनाथी,
अणुत्तरदसी अणुत्तरनाणदसणुधरे ।

अरहा णायपुत्त भवम,
वेसालिए विश्राहिए सि नेमि ॥२८॥

छाया -एव स उदाहृवान् अणुत्तरनाथपुत्तदर्शो,
अणुत्तर नादशतधरः ।

अर्हन् दातपुत्र भगवान्,
वैशालिको विषयात् ॥ २८ ॥

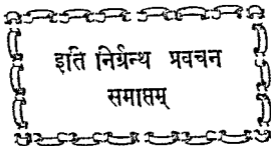
अथयार्थः हे जम्भू ! (अणुत्तरनाथी) प्रधान सा
(अणुत्तरदसी) प्रधान दशन अथवा (अणुत्तरनाणदस-
णुधरे) प्रधान ज्ञान और दर्शन उसके धारक और (विश्रा-
हिए) सखीपदेशक (से) उन निधाय (णायपुत्त) सिद्धाय
के पुत्र (वेसालिए) विशाला के भगवन् (अरहा) अरिहन्त
(गयन) भगवान् ने (एव) इस प्रकार (उदाहृ) कहा

ह । (ति वेमि) इस प्रकार सुधम स्वामी ने जम्बू स्वामी
 प्रात कहा है ।

भावार्थ - हे जम्बू । प्रधान ज्ञान आर प्रधान दर्शन के
 धारी, सल्लोपदेश करने वाल, प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल के सिद्धाध
 राजा के पुत्र और त्रिशला गनी के अग्रज निर्ग्रन्थ, अरिहत
 भगवान् महाशार ७ इस प्रकार कहा ह, एषा सुधम स्वामी
 ने जम्बू स्वामी के प्रति निर्ग्रन्थ के प्रवचन को समझाया है ।

॥ इति अष्टादशोऽध्यायः ॥

नोट - पृष्ठ नम्बर ३१७ म ३६४ को ३-६ से ३-० समझें ।



बढ़िया काम सस्ते दाम

यदि आपको किसी भी तरह का छपाई का काम जैसे हुडी, कुकुमपात्रका, लेटर पेपर पुस्तकें आदि छपवाना हो तो सीधे—

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,
रतलाम

से पत्र व्यवहार कीजिये। इस प्रेस में हिंदी अंग्रेजी संस्कृत मराठी का काम बहुत अच्छा और स्वच्छ तथा सुन्दर छाप का ठीक समय पर दिया जाता है छपाई के चार्ज भी निकायत से लिये जाते हैं एक चार छपाई का आर्डर भज कर परीक्षा कीजिये।

पता—

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,
रतलाम (मारवा)

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

पर

प्रमुख विद्वानों की सम्मतियों

(१)

श्रीमान् ला० फत्तेमलजी एम० ए० सेशन
जज घौलपुर ।

अथ बड़े महत्व का है । साधु तथा गृहस्थ दोनों के
काम की चीज है । इसका स्थान सभी के घरों में होना
चाहिए । विशेषतः पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में इसका प्रवेश
अत्यन्त आवश्यक है ।

(२)

श्रीयुक्त प० रामप्रतापजी शास्त्री,
भू० पू० प्रोफेसर, पाली संस्कृत मोरिस कालेज,
नागपुर (सी. पी.)

इस के द्वारा जैन साहित्य में एक मूल्यवान सफलन हुआ
है । यह केवल जैन दर्शन के इच्छुक विद्वानों को ही नहीं
बल्कि जैन साहित्य में रुचि रखने वाले सभी सज्जनों के लिए
अति उपयोगी वस्तु है ।

(२)

निष्पन्न-प्रवचन पर सम्मतिपत्र

(३)

श्रीमान् प्रो. सरस्वती प्रसादजी चतुर्वेदी एम. ए.,
व्याकरणान्तर्गते काव्यतीर्थ मोरिस कालेज
नागपुर (सी. पी.)

इस प्रवचन का सूत्रियों का मनन समस्त मानव-
गण के लिए हितकर है। क्योंकि ये सूत्रियाँ हिन्दी एक
मत या सम्प्रदाय विशेष की न होकर विश्वजनीन हैं।

(४)

श्रीमान् प्रो. श्यामसुन्दरलालजी चौरडिया एम. ए.,
मोरिस कालेज, (नागपुर)

श्री मुनि महाराज जी का किया हुआ अनुवाद अत्यंत
सरल, स्पष्ट और प्रभावोत्पादक है।

(५)

श्रीयुक्ती. वी. मिश्री, प्राफेसर सस्ट्रेन विभाग,
मोरिस कालेज, (नागपुर)

यह पुस्तिका जेठ साहित्य की धार्मिक और दार्शनिक
सर्वोत्तम गायकों का समूह है।

(६)

श्रीमान् गोपाल केशव गर्दे एम. ए.
मृतपूर्व प्रो० नागपुर

इसी प्रकार से सात आठ अर्धभागधो के मय छपवाए जाय तो इस भाषा (प्राकृत) का भा परिवय सरल सरल की नाई बहुजन समुदाय को अवश्य हो जायगा ।

(७)

श्रीमान् प्रो० दीरानालजी जैन एम ए, एल एन, बी,
किङ्ग एडवर्ड कॉलेज, अमरावती (वरार)

“ इस पुस्तक का अवलोकन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । पुस्तक प्रायः शुद्धता पूर्वक छपी है । और चित्ताकर्षक है । × × × साहित्य और इतिहास प्रेमियों को इस से बड़ी सुविधा और सहायता मिलेगी । ”

(८)

श्रीमान् महामहोपाध्याय रावबहादुर प० गौरीशंकर
दीराचंदजी ओम्ना, अजमेर,

यह पुस्तक केवल जैनों के लिए ही नहीं किन्तु जैनतर गृहस्थों के लिए भी परमोपयोगी है ।

(९)

श्रीमान् ला० बनारसीशंकरजी एम, ए, पी, एच, डी,
ओरियन्टल कॉलेज, लाहौर,

स्वामी चौधमलजी महाराज ने निर्मय प्रवचन रच कर न केवल जैन समाज पर किन्तु समस्त हिन्दी उच्चार पर उन्नत किया है । ऐसे मय की अत्यंत आवश्यकता थी ।

(१०)

श्रीयुत् मो. के. एन. मन्वकर एम. ए.

गुजरात कॉलेज, अहमदाबाद ।

विश्वविद्यालयों में विद्वानों और विद्यार्थियों के हाथों में रखनी जान योग्य है । विश्वविद्यालय के पाठ्य प्रयोगों में चुनाव के समय में इस प्रयोग के लिये अपनी और वे भिन्न विरा बहेंगे । ”

(११)

श्रीमान् अक्षरसेनजी जी सत्यादक “देशभक्त” मेरठ

मह पुस्तक प्रत्येक जैन मठान में पढ़ी जाने योग्य है ।

(१२)

श्रीमान् मोफेवर हीगलानजी रामिकदासजी कागड़ेवा

एम. ए. मन्वई

अधु सर्वोपयोगी पुस्तक दशवक्ता बदन धमादक जो मह लक्ष ने अगिन-दन पठ ले ।

(१३)

श्रीमान् प. लालचंदजी मगनादासजी गांधी

गायकवाड़ लायब्रेरी, पड़ोदा ।

प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री श्रीमलजी महाराज का यह प्रवचन प्रशंसनीय है ।

(१४)

श्रीमान् नदलालजी केदारनाथजी दिक्षित बी. ए
एम. सी. पी. भूतपूर्व विद्याधिकारी, बड़ोदा

निर्ग्रन्थप्रवचन का रठन पाठन से जनता भारा लाभ उठा
सकती है । ऐसा सुन्दर ग्रन्थ प्रकाशित कर के आपने जन
और जेनेतर मनुष्यों पर भारी उपकार किया है ।

(१५)

श्रीयुत गोविंदनाथ भट्ट एम. सी. प्रोफेसर सस्कृत
बड़ोदा कॉलेज, बड़ोदा ।

यह समग्र अत्यन्त उपयोगी और कठस्थ करने योग्य है ।

(१६)

श्रीयुत प्रोफेसर भावे, बड़ोदा कॉलेज, बड़ोदा ।

यह पुस्तक जैन धर्म का अध्ययन करने वाले अथवा
इसके रखने वाले महाशुभावों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी ।

(१७)

श्रीमान् प० जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा ।

आगम ग्रन्थों पर से अच्छे उपयोगी पद्यों को चुन कर
ऐसे समग्रों के तैयार करने की निःसन्देह अस्मत्त है इष्ट के
लिये मुनिश्री चौधमलश्री का यह उद्योग और परिश्रम प्रश
सनाय है ।

(१८)

श्रीमान् प० प्यारोकिसनजी साहेब कोल भूतपूर्व दीवान
मैलाना स्टेट एव भूतपूर्व एडवाइजर, म्फानुआ स्टेट
वर्तमान् (Member Council) उदयपुर मेवाड़

इस पुस्तक के भारी प्रचार से अवरुध ही उत्तम परि
णाम निकलना और इस का प्रचार रूब हो ऐसा मेरी
भवना है ।

(१९)

श्रीमान् अमृतलालजी सवचदजी गोपाणी एम. ए.
बड़ौदा कॉलेज, बड़ौदा ।

अपने समाज की कतिपय पुस्तकों की अवेज्ञा यह पुस्तक
बिलकुल उत्तम है इस में शक नहीं ।

(२०)

श्रीमान् प्रो. घासीरामजी जैन M Sc, F P S
(London)

विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर ।

इस पुस्तक के अविश्लेष्ट स्वाभ्यास का मुमुक्षु का आराम
का सच्चा शान्ति प्राप्त होगी ।

(२१)

श्रीमान् प्रो वूलच दजी एम. ए. इतिहास और

राजनीति के प्रोफेसर, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली ।

“आपने इस पुस्तक के प्रकाशन द्वारा एक बड़ी श्राव्यकता की पूर्ति की है ।

(२२)

श्रीमान् रामस्वरूपजी एम ए शास्त्री सम्प्रदाय के
प्रो० मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।

यह पुस्तक पानी और प्राकृत भाषाओं की कक्षाओं के
लिए वाद्य प्रयोग रखने योग्य है ।

(२३)

श्रीमान् डाक्टर पी. एल वैद्य एम. ए (कलकत्ता)
डी. लिट् (पेरिस)

प्रोफेसर संस्कृत और प्राकृत, वाडिया कालेज, पूना

निर्ग्रन्थ प्रवचन इस तरह जैनियों के धर्म शास्त्रा के
उपदेश का सार है । मैं चाहता हूँ कि हर एक जैन यह
अन्यम करले कि उस का कम से कम एक अध्याय रोज पढ़े
और मनन करे ।

(२४)

महामहोपाध्याय डा० गगानाथ झा, एम० ए०

डी० लिट् व्हाइस चांसलर,
अलाहाबाद यूनिवर्सिटी ।

यह समान जैन विश्वविद्यालयों के लिए बहुत उपयोगी प्रमाणित होगी ।

(२५)

प्रोफेसर केशवलाल हिमतराम एम० ए०

बड़ौदा, कालेज ।

जैन शास्त्रों में से समझ कर ऐदिक और पारलौकिक ज्ञान का सार बहुत ही स्पष्ट और विद्वत्ता के साथ समझ किया गया है ।

+ + +

धर्म के प्रति धृष्टा रखने वाले समाज को इसे पढ़ने के लिए मैं अनुरोध करता हूँ ।

(२६)

प्रो. शम्भुदयाल यज्ञधारी एम० ए०

महाराणा कालेज, उदयपुर ।

निर्मल ध-प्रवचन पुस्तक की रचना कर जैन साहित्य की वास्तविक सेवा की है ।

(२७)

श्रीमान् के. जे. मशरूवाला, अहमदाबाद ।

पुस्तक जनता के लिए अति उपयोगी है ।

(२८)

श्रीमान् बाबू कामता प्रसादजी जैन एम. आर. एस.

‘वीर’ सम्पादक अलीगज, जिला एटा ।

“यह पुस्तक सार्थक नाम है । श्वेताम्बरीय अग प्रभों से निर्भय महा प्रभुओं के धार्मिक प्रवचनों का समूह इस में किया गया है और यह सब के लिए उपादेय है ।”

(२६)

श्रीमान् धीरजलालजी के० तुर्खिया, आँ, अधिष्ठाता
श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर ।

जैन धर्म के अभ्यासियों को और विद्यार्थियों को पाठ करने योग्य है । जैन सस्थाओं के पाठ्यक्रम में भी रखने योग्य है ।

(३०)

श्रीमान् ज्योतिषसादजी जैन यू. पु. सम्पादक,
‘जैन मदीप’ (प्रेममवन) देववन्द (यू पी.) ।

ये इस छोटे से समूह ग्रन्थ को यदि जैन गीता कह दू तो कुछ अनुचित न होगा । इससे प्राणी मात्र लाभ ले सकते हैं ।

(३१)

श्रीमान् प० शोभाचन्दजी भारिल्लि, न्यायतीर्थ,
सम्पादक ‘वीर’ श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर ।

यह समूह पाठशालाओं में पढ़ाने योग्य है । जैन गुरुकुल में इसे पाठ्यक्रम में नियत किया गया है ।

(३२)

श्री परमानन्दजी बी. ए., गुरुकुल विद्यालय सोनगढ़
साहित्य में ऐसे ही प्रयोगों की महती आवश्यकता है।
आपने सब साधारण को ऐसे अवसर से लाभ उठाने का
अवसर देकर अशकनीय एवं सृष्टणीय कार्य किया है।

(३३)

श्री प. भगवतीलालजी 'विद्याभूषण' राजकीय
पुस्तक प्रकाशकाध्यक्ष, जोधपुर।

"यह पुस्तक हरेक धार्मिक पुरुष अपने पास रखें और
मनन करके अपने लाभ उठावें इसमें अतुल्य धर्म का सार
दिया गया है।"

(३४)

श्रीमान् सूरजभानुजी वकील शाहपुर तहसील
बुरहानपुर जि नीमाड़ (वरार)

जैनियों को प्रारम्भ में यह पुस्तक जरूर पढ़नी चाहिए

(३५)

श्रीयुक्त कीर्तिप्रसादजी जैन बी. ए., एलएल, बी.
वकील हाईकोर्ट, बिनौली (मेरठ)।

सब धर्म प्रेमी बंधु और खास कर जैन भाई व बहन
इस पुस्तक से पूरा लाभ उठावेंगे।

(३६)

श्रीमान् मूषेद्रसूरिजी महाराज, भीनमाल ।

आपका साशय पूर्ण उद्योग सफल है । जैन सभ में अत्युपयोगी है ।

(३७)

प्रवर्तक श्रीमान् कान्तिविजयजी महाराज, पाटण ।

समाहक महात्माजी नो परिमम छारो थयो छे ।

(३८)

मुनि श्री पुमतिविजयजी गुजरानवाना (पजाब)

आपकी महन्त प्रशसनाय है ।

(३९)

जैनाचार्य पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज,

शास्त्र प्रेमी और व्याख्यान दाताओं को तो अवरग पढ़ने योग्य है ।

(४०)

कविवर्य परिहृत मुनि श्री नानचन्द्रजी महाराज

उत्तम रत्नों चूटी काठी जिज्ञासु वग ऊपर भौर उपकार कर्यो छे एकदर चूषी बहु सुन्दर छे ।

(४१)

शतावधानी ५० मुनि श्री सौभाग्यचन्द्रजी महाराज

प्रस्तुत प्र य ना समझने वाचक को अवरय आमार मानवो घटे छे ।

(४२)

योगिनिष्ठ प० मुनि श्री त्रिलोकचन्द्रजी महाराज

आवधारदायक छे हूँ जेने सरधारू हु आवा "प्रवचनों" एकम भाग यी अटकी न रहे के खास सूच्यु छे ।

(४३)

उपाध्याय मुनि श्री आत्मारामजी महाराज

मुमुक्षु जनो को अवरय पठनीय है ।

(४४)

वक्ता श्रीमान सौभाग्यमलजी महाराज

जो प्राकृत का ज्ञान नहीं रखते हैं उन जीवों के लिये भारी उपकार किया है ।

(४५)

"जैन महिलादर्श" सूरत वर्ष १२ अंक ८ में
लिखता है कि—

पुस्तक में गायी परल अच्छ हैं । मनन करने योग्य है

(४६)

'दिगम्बर जैन' सूरत वर्ष २६ अंक १२ धीर

स० २४५६ पृष्ठ ३६१

जैनों को ही नहीं किन्तु मानव मात्र के लिए हितकारी है
पुस्तक का नाति पूण गाथाएँ उपद्र करन योग्य हैं । पुस्तक
उपदृणाय व उपयोगी है ।

(४७)

‘जैन मित्र’ ता० १६-११-३३ में लिखता है ।

कुल गाथाएँ ३५७ हैं । वे सब कण्ठ करन योग्य हैं ।
दिगम्बर भाई भी अवश्य पढ़ ।

(४८)

‘जैन जगत्’ अजमेर अक्टूम्बर सन् ३३ के अंक
में लिखता है—

जैन सूत्र ग्रन्थों के नाति पूण उपदेश प्रद पद्यों का यह
सुन्दर उपद्र है ।

(४९)

‘वीर’ मल्हीपुर ता० १६-११ ३३ में लिखता है—

उपद्र परिधम पुवक किया गया है । वे० पाठशाळाओं
के पाठ्यक्रम में रखने योग्य है ।

(५०)

‘अर्जुन’ देहली ता० ६ ११ ३३ में लिखता है—

जैन धर्म सम्बन्धी पाठ्य ग्रन्थों में इस पुस्तक का स्थान
ऊँचा समझा जावेगा ।

(५१)

“वैकुण्ठेश्वर समाचार” बम्बई ता० १५ १२ ३३ में
लिखता है—

यह एक सम्मादरणीय ग्रंथ है पर ज्ञानामृत की व्याप्त
रखने वाले सभी मदानुभाव इस से लाभ उठा सकते हैं ।

(५२)

“कर्मवीर” सख्या ५० ता० १७ मार्च १९३४
में लिखता है—

महिं ज्ञान वैराग्यमय गीता के समान इस पुस्तक का
उपदेश ग्रंथ का रूप देने के लिए समाह्वक महोदय प्रशंसा
के पात्र हैं ।

(५३)

“बम्बई समाचार” ता० २२ वीं जुलाई १९३३
में लिखता है कि—

जनों तम जैनेतरो माट पण एक सरसु उपयोगी के

(५४)

श्री “जैन पथ प्रदर्शक” आगरा ता० ६
सितम्बर ३३ में लिखता है कि—

प्रत्येक जैनी को पढ़कर क मनन करना चाहिए और
जैनेतर जनता में इसका यथेष्ट प्रचार होना चाहिए । प्रत्येक

पुस्तकालय में इषका होना जरूरी है ।

(५५)

‘जैन प्रकाश’ अक्टूबर वर्ष २० अंक ४३ ता० १०
सेप्टेम्बर १९३३ में लिखता है कि—

मुनिधरी जे आगम साहित्य का नवनीत निकाल कर
गौता के समान १० अध्यायों में विभक्त करके पाठकों के
सामने रक्खा है ।

+

+

+

बहुत उपयोगी समझ हुआ है ।

(५६)

‘जैन ज्योति’ अहमदाबाद वर्ष ३ अंक ३ में लिखता है—
आ चूटणी नित्य पाठ मांटे एव उपयोगी छे अेमा
भाष्यज शक्ये ।

(५७)

करांची (सिंध) से प्रकाशित रान् १९३४ के २२ वीं
दिसम्बर का ‘पारसी सप्ताह और लोकमत’
लिखता है कि—

हिंदी भाषा जात्रनेकाली प्रथा के लिए यह पुस्तक
अत्यन्त उपयोगी है और प्रत्येक हिन्दी भाषी को अपने
घर में भजन करने के लिए रखने योग्य है ।

(५१)

“ वैद्येश्वर समाचार ” मम्बई ता० १५ १२ ३३ में
लिखता है—

यह एक सम्मादरणीय ग्रन्थ है पर ज्ञानागृत को प्याछ
हउने वाले सभी महापुभाव इस से लाभ उठा सकत है ।

(५२)

“ कर्मवीर ” सख्या ५० ता० १७ मार्च १९३४
में लिखता है—

महि-ज्ञान वैशम्पय गीता के समान इन पुस्तक का
उपदेश ग्रन्थ का रूप देने के लए रुमादक महोदय प्रशसा
के पात्र हैं ।

(५३)

“ मम्बई समाचार ” ता० २२ वीं जुलाई १९३३
में लिखता है कि—

जनो तेम जेनेतरो माट पण एक सरसु उपयोगी के

(५४)

श्री “ जैन पथ प्रदर्शक ” आगरा ता० ६
सितम्बर ३३ में लिखता है कि—

प्रत्येक जैनी को पढ़कर क मनन करना चाहिए और
जैनेतर जनता में इसका यथेष्ट प्रचार होना चाहिए । प्रत्येक

पुस्तकालय में इसका होना जरूरी है ।

(५५)

'जैन प्रकाश' दसम्बर वर्ष २० अङ्क ४३ ता० १०
सेप्टेम्बर १९३३ में लिखता है कि—

मुनिश्री ने आभम साहित्य का नवनीत निकाल कर
गीता के समान १८ अध्यायों में विभक्त करके पाठकों के
सामने रखा है ।

+ + +

बहुत उपयोगी समझ हुआ है ।

(५६)

'जैन ज्योति' अहमदाबाद वर्ष ३ अङ्क ३ में लिखता है—
आ चूटणी नित्य पाठ माटे खूब उपयोगी छे अमो
भाष्यज शका ५ ।

(५७)

कराची (सिंध) से प्रकाशित सन् १९३४ के २२ वीं
दिसम्बर का 'पारसी सप्ताह और लोकमत'
लिखता है कि—

हिंदी भाषा जाननेवाली प्रजा के लिए यह पुस्तक
अत्यंत उपयोगी है और प्रत्येक हिन्दी भाषी को अपने
पर में मनन करने के लिए रमन योग्य है ।

(५८)

सैलागा से प्रकाशित सन् १९३४ के जुलाई के
'जीवन ज्योति' ने लिखा है कि—

निर्मम्य प्रवचन आध्यात्मिक ज्ञान का अमूल्य मय
है। इन उपदेशों से क्या जन और क्या अत्रैत सभी समाज
रूप से लाभ उठा सकते हैं।

(५९)

कलकत्ते से प्रकाशित 'विश्वमित्र' अप्रैल सन् १९३४
के पृष्ठ ११३५ पर लिखता है कि—

जैन धर्म के प्रवक्तक महामा महावीर के प्रवचनों का
सानुवाद सम्पन्न किया गया है।

x

x

x

अनुवाद की भाषा सरल है।



